शरत्चन्द्र

कमला

कमला

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

प्रकाशक :
महामाया पब्लिकेशन्स
चौक अड्डा टांडा, जालंधर (पंजाब)

कमला

उस दिन चूड़ामणि योग में गंगा-स्नान करने का फल मैत्र महाश्य को हाथों-हाथ मिल गया। इस योग में गंगा-स्नान ऐसा अनिष्ट कारक फल देने वाला है, इसे प्रत्यक्ष देखकर हरनाथ मैत्र दोनों हाथों से छाती और सिर पीटते हुए कलकत्ता से अपने गांव लौट आए।

बात कोई इतनी असामान्य नहीं थी। सामान्य रूप से ऐसे अवसरों पर अकसर जो कुछ हुआ करता है, वही हुआ था। अर्थात् उस दिन चूड़ामणि योग में गंगा-स्नान करने के लिए जाकर हरनाथ अपनी विवाहिता, जवान और सुन्दर पुत्री कमला को कलकत्ते में ही खो आए। हरनाथ की पत्नी के साथ इस सुयोग में कुछ पुण्य संचय कर लेने के लिए उनके गांव की और भी अनेक स्त्रियां आई थीं। नहाने के बाद आपस में एक-दूसरे के आंचल में गांठ बांध कर, एक जंजीर-सी बना कर, चलते-चलते उन ग्रामीण स्त्रियों को एक स्थान पर आकर रुक जाना पड़ा।

वह एक चौराहा था। वहां पर अपार भीड़ थी। उस स्थान पर एक अंग्रेज पादरी अपने कई सहयोगी देशी ईसाइयों के साथ बंगला भाषा में भाषण दे रहा था। वह कह रहा था—"हे बंगाल के रहने वाले बंगाली भाइयो! तुम कैसे आदमी हो ? क्या तुम में सामान्य बुद्धि भी नहीं है ? अगर गंगा में डुबकी लगा लेने से ही मनुष्य स्वर्ग में जा पाता, तब तो गंगा के भीतर हर समय रहने वाले सब मगरमच्छ और मछलियां निश्चित रूप से स्वर्ग चली जातीं, और उनके अत्याचार से देवता लोग स्वर्ग छोड़कर भाग जाने के लिए विवश हो जाते। तुम्हारे सोचने-समझने की शक्ति क्या शैतान ने हर ली है ? जिस गंगा में धुला हुआ कपड़ा तक मैला हो जाता है उसमें नहाने से मन का मैल कैसे दूर हो सकता है...?—इत्यादि, इत्यादि।"

साहब को घेरे इतने लोग खड़े थे कि उनके बीच से राह निकाल लेना एक तरह से असम्भव ही था। सभी लोग खड़े तमाशा देख रहे थे। कोई साहब के मुंह से बंगला का उच्चारण सुनकर दंग हो रहा था और कोई साहब की युक्ति तथा तर्क सुनकर उनकी प्रशंसा कर रहा था।

मैत्र महाश्य स्त्रियों के आगे-आगे रास्ता बनाते हुए चल रहे थे और बीच-बीच

में घूमकर स्त्रियों को सावधान करते जाते थे। इस स्थान पर आकर वे घूमकर खड़े हो गए और चिल्लाकर स्त्रियों से कह दिया, "खूब सावधानी से एक दूसरे का हाथ पकड़े रहना।"

ठीक उसी समय अचानक एक आदमी ने पादरी के ऊपर हाथ चला दिया। साहब की टोपी सिर से उतर कर अलग जा पड़ी। साथ ही कई छोकरे साहब के साथियों पर टूट पड़े। इसके बाद दोनों दलों में हाथापाई और मारपीट होने लगी। भीड़ तितर-बितर होने लगी। लोगों के धक्के से कौन कहां, किधर गया, किसी को कुछ पता न रहा। बेचारे हरनाथ धक्के-पर-धक्का खाते संभलते-संभलते लगभग एक फर्लांग तक चले गए। पास ही घुड़सवार पुलिस का आदमी सड़क पर मूर्तिवत् खड़ा सब कुछ देख रहा था। मारपीट होते देखकर वह घोड़े समेत भीड़ के अन्दर घुस गया। घोड़े से कुचलने के भय से लोग सिर पर पांव रखकर गिरते-पड़ते भागने लगे। भीड़ काई की तरह फट गयी। पांच-सात मिनट के भीतर वह चौरहा बिल्कुल साफ हो गया।

मैत्र महाशय ने किसी तरह सब स्त्रियों को एक स्थान पर इकट्ठा करके कहा, 'इधर चलो।'

उसी समय मैत्र महाशय की पत्नी ने स्वामी को पास बुलाकर धीमे स्वर में कहा, "अजी ! कमला कहां है ? वह दिखाई नहीं पड़ रही।"

हरनाथ ने कहा, "कैसी आफत है, वह गयी कहां ? सभी से बराबर कह रहा हूँ कि सब सावधान होकर चलो। कोई छूट न जाए।"

हरनाथ प्राणपण से पूरी शक्ति लगाकर चिल्लाकर पुकारने लगे—"कमला ! ओ कमला !"

लेकिन कमला कहां ! अब सब स्त्रियों को स्थान पर खड़ा करके हरनाथ कलकत्ता महानगर के उस विशाल जन-सागर में कमला को इधर-उधर खोजने लगे। सिर पर गांधी टोपी और खद्दर का कुर्ता पहन स्वयं सेवक लोग स्त्रियों के लिए गाड़ी आदि का प्रबन्ध कर रहे थे। हरनाथ ने उनसे जाकर विपत्ति का हाल कहा। एक स्वयं-सेवक उनके साथ हो लिया। स्वयं-सेवक को साथ लेकर हरनाथ फिर सड़क की भीड़ में कमला की खोज करने लगे। लेकिन दो घंटे के लगभग गला फाड़-फाड़ कर कमला को पुकारने और दौड़-धूप करने पर भी कुछ फल नहीं मिला। अब हरनाथ लाचार होकर स्त्रियों को लेकर डेरे पर आ गए उन्हें वहां छोड़कर पुलिस में रिपोर्ट करने चले गए।

लगभग एक महीने तक पुलिस, हरनाथ और स्वयं-सेवकों ने मिलकर कलकत्ता शहर को छान डाला, लेकिन कमला का पता नहीं लगा। तात्पर्य यह था कि लड़की

के कलकत्ते की भीड़ में इस प्रकार गायब हो जाने पर एक पिता जो कुछ कर सकता था, सो उसने किया, लेकिन सारे प्रयत्न बेकार गए। हरनाथ के साथ जो स्त्रियां पुण्य-संचय करने गयी थीं उन्हें लेकर वह अपने गांव लौट गए।

बर्दवान जिले के किसी एक गांव में हरनाथ का घर था। अपने गांव में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा और नाम था। वह आदमी तो सीधे-सादे थे, लेकिन क्रोधी बहुत थे। मन में जो बात आती थी, उसे कह डालने की उन्हें बहुत ही बुरी आदत थी। वह बातें बनाना जानते ही नहीं थे। उनके कई धनी यजमान थे। यजमानी न करने पर भी उनकी जीविका चलने के और भी साधन थे।

हरनाथ के बाप-दादा आदि पुरोहिताई करके अच्छा धन कमा कर छोड़ गए थे। नगद रुपयों के अतिरिक्त उनके पास काफी जमीन थी। उसी की उपज और आमदनी से उनका निर्वाह मजे में हो जाता था। शास्त्रों के अध्ययन और पूजा-पाठ में हरनाथ की विशेष निष्ठा थी। सवेरे से शाम तक यजमानी का काम करने से उनके पूजा-पाठ और शास्त्र चर्चा में बाधा पड़ती थी।

इसीलिए उन्होंने कुछ चुने हुए घर अपने लिए रखकर बाकी घरों की पुरोहिताई गांव के अन्य ब्राह्मणों को बांट दी थी।

उनके गांव मे ब्राह्मणों के और भी घर थे, लेकिन उनमें से किसी की भी आर्थिक स्थिति हरनाथ के समान अच्छी नहीं थी। आपत्ति-विपत्ति के समय हरनाथ ही सबके काम आते थे। सबको उनसे सहायता मिलती थी। इसी कारण से उनके अनुगत और अनुकूल व्यक्तियों की कमी नहीं थी।

गांव के लोगों की सांझ की बैठक नित्य पूर्वक हरनाथ के ही दरवाज़े के चबूतरे पर हुआ करती थी। रोते-रोते, सीधे-सादे हरनाथ ने कलकत्ता में कमला के खो जाने का हाल सब लोगों के सामने कह सुनाया, लेकिन उन्होंने देखा, कमला का हाल वहां कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। क्योंकि यह बात गांव के सभी लोग पहले से ही जानते थे। केवल इतना ही नहीं, हरनाथ जो जानते थे उससे कहीं अधिक उन लोगों को मालूम था।

घर के भीतर आकर हरनाथ ने अपनी पत्नी को पास बुलाकर कहा, "अगर कमला मर गई होती तो इससे कहीं अच्छा होता।"

पत्नी के मुख से कोई शब्द नहीं निकल सका। पास ही पड़े हुए दो मरणासन्न रोगियों में से एक के मृत्यु की यन्त्रणा से आर्तनाद कर उठने पर दूसरा रोगी जिस दृष्टि से उसकी ओर देखता है, उसी प्रकार की दृष्टि से पत्नी ने एक बार अपने पति के चेहरे की ओर देखा, और फिर दूसरी ओर मुंह फेर लिया। स्वामी की इस मानसिक यन्त्रणा में सहानुभूति का एक भी शब्द उसके मुख से नहीं निकला। किस तरह क्या

हो गया ? यह उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। कई वर्ष पहले विवाह के बाद विदा होते समय कमला ने कहा था, "मैया री, मैं तुम्हें छोड़कर न रह सकूंगी।"—उसके वे ही शब्द इस समय माता के कानों में गूंज रहे थे।

नौ-दस वर्ष पहले इस गांव के एक गृहस्थ के घर में किसी स्त्री के कलंक की बात प्रकट हुई थी, उसी को लेकर गांव भर में बहुत दिनों तक खूब चर्चा चली थी, दलबन्दी भी हो गई थी। यहां तक कि मामला अदालत तक जाने की नौबत आ गई थी। उसके बाद इधर कई वर्षों से ऐसी कोई घटना नहीं हुई थी। जिससे गांव में कोई उत्तेजना पैदा होती अथवा पर निन्दा का अवसर लोगों के हाथ लगता। गांव के सरपंच और निन्दा के प्रेमी मन मारे दिन बिता रहे थे। इसी बीच कलकत्ते में कमला खो गई। पूर्वोक्त प्रकार के लोग फिर अचानक सजग हो उठे। उनकी निर्जीव-सी हो रही जीभ बहुत दिनों बाद अवसर पाकर जैसे सजीव हो उठी। हरनाथ के दरवाजे की शाम की बैठक धीरे-धीरे उखड़ने लगी। कमला के सम्बन्ध में नित्य नई-नई बातों का आविष्कार होने लगा। अन्त में एक दिन मालूम हुआ कि उसी गांव के योगेन्द्र मित्र के पुत्र हरेनद्र भैया ने कमला को खिसका दिया है। हरेन्द्र कलकत्ता में ही रहकर कॉलेज में पढ़ रहा था। पहले से ही उसके साथ कमला का ठीठ-ठाक हो गया था। छिपकर दोनों सलाह-मशवरा करते रहते थे। इस बार मौका पाकर दोनों चम्पत हो गए। बहुत दिन पहले से ही कमला के साथ हरेन्द्र का प्रेम था। दोनों छिपकर मिलते और भागने की सलाह किया करते थे, और इस बात के कई साक्षी भी निकल आए।

लेकिन जमींदार योगेन्द्र नाथ मित्र के भय से कोई उनके पुत्र के सम्बन्ध में अब तक इस बात को प्रकट करने का साहस नहीं कर सका था। फिर किसी ने यह भी सोचा था कि मामला यहां तक पहुंचने की नौबत आ जाएगी। लेकिन जब यहां तक नौबत आ ही गई, तब चुप रहना अच्छा नहीं। इसीलिए शशि मुखर्जी ने एक दिन शाम को पन्द्रह-सोलह आदमियों के सामने सबसे यह भी कह दिया कि—"देखो भाई, बात किसी तरह फैलने न पाए, नहीं तो योगेन्द्र मित्र मेरी जान नहीं बख्शेगा। तुम लोग जानते ही हो कि मैं उसके यहां नौकरी करता हूं।"

शशि मुखर्जी गांव के जमींदार योगेन्द्र मित्र के यहां खाता-पत्र लिखने का काम करता था। कुछ दिन पहले गांव की एक अधेड़ कैबर्त जाति की विधवा के साथ शशि मुखर्जी के अनुचित सम्बन्ध की बात प्रकट हो गई थी। हरनाथ मैत्र ने शशि के विरुद्ध घोर अन्दोलन खड़ा कर दिया था। केवल इतना ही नहीं, ब्राह्मण होकर कैबर्त विधवा के साथ अनुचित सम्बन्ध जोड़ने के अपराध के लिए उन्होंने शशि को सामाज़िक दण्ड देने का भी प्रयत्न किया था। इसी कारण से हरनाथ के ऊपर शशि बहुत ही चिढ़ा

हुआ था। बहुत दिनों से हरनाथ को नीचा दिखाकर अपने अपमान का बदला लेने का सुअवसर खोज रहा था। अब इतने दिनों के बाद यह अवसर उसके हाथ लग गया था।

हरनाथ के उस व्यवहार का बदला लेने के उद्देश्य से उस दिन सांझ की बैठक में शशि ने कमला और हरेन्द्र का सम्बन्ध जोड़कर जो बात कही थी, वह उसकी एकदम कोरी कल्पना नहीं थी।

हरेन्द्र और कमला, दोनों के घर पास-पास थे। लड़कपन से ही दोनों में मेल था। एक ही गांव के दोनों बच्चे थे, पड़ोसी थे। बचपन से ही दोनों साथ-साथ खेले-कूदे, साथ ही रहे सहे। हरेन्द्र के साथ गांव की और लड़कियों का भी मेल-जोल था, लेकिन घर से घर मिला रहने के कारण कमला के साथ उसकी घनिष्ठता अधिक हो गई थी।

कमला के खो जाने की घटना घट जाने के कई वर्ष पहले एक दिन कोई बहाना करके हरेन्द्र स्कूल नहीं गया था। दोपहर के समय उससे घर में बैठा नहीं रहा गया। वह उठकर हरनाथ मैत्र के बाग में जो उनके घर से जुड़ा हुआ था, चला गया और अमरूद में एक पेड़ पर चढ़ कर बड़े मजे से अमरूद खाने लगा।

उसी समय बाग के एक कोने में अकेली खड़ी कमला उसे देखकर एक पत्र पढ़ रही थी। कमला का विवाह हो चुका था। वह अभी-अभी ससुराल से लौटकर आई थी। हरेन्द्र तुरन्त ताड़ गया कि उसे यह पत्र किसने भेजा होगा, यह अनुमान लगाते उसे देर नहीं लगी। और अमरूद खाते-खाते उसे शैतानी सूझ गयी।

वह चुपचाप पेड़ से उतरा और दबे पांव चलता हुआ कमला के पीछे पहुंच गया। फिर उसने झपट्टा मार कर कमला के हाथ से पत्र छीन लिया, और पत्र हाथ में आते ही दौड़कर दूर जा खड़ा हुआ। कमला इस चील-झपट्टे के लिए मुस्तैद नहीं थी। उसने घूमकर देखा, हरेन्द्र उसका पत्र छीनकर भागा चला जा रहा था।

पहले तो कमला सिटपिटा गयी, लज्जा के मारे उसके मुंह से आवाज नहीं निकली। फिर उसने संभल कर हलके से क्रोध के साथ कहा, "हरेन्द्र दादा, चिट्ठी दे दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा, कहे देती हूं, हां।"

लेकिन हरेन्द्र पर उसकी डपट का बिल्कुल असर नहीं पड़ा। वह निर्विकार भाव से अमरूद खाते-खाते पत्र पढ़कर कमला को सुनाने लगा–

"प्रिय कमला !"

अब प्रिय कमला से नहीं रहा गया। वह पत्र लेने के लिए तेजी से बढ़ी और हरेन्द्र से लिपट गई। हरेन्द्र पत्र देना नहीं चाहता था और कमला पत्र लेना चाहती थी। दोनों आपस में गुंथ गए। उसी समय उन्होंने देखा, कि कमरे के बाहरी दरवाजे पर

खड़ा शशि यह तमाशा देख रहा था। शशि को देखते ही हरेन्द्र ने चिट्ठी फेंक दी और एकदम वहां से दौड़ लगा दी। कमला चिट्ठी उठाकर धीरे-धीरे घर के भीतर चली गयी।

उस दिन हरेन्द्र का सारा दिन डरते-डरते ही बीता। वह बार-बार यही सोचता रहा कि अपनी धुन में उसने यह अच्छा काम नहीं किया। उसके पिता बहुत ही कठोर मिजाज के व्यक्ति हैं। अगर किसी प्रकार उन्हें यह मालूम हो गया कि हरेन्द्र कमला से पत्र के लिए हाथापाई कर रहा था, तो वे उसे मार-मार कर अधमरा कर डालेंगे।

कमला से मेल करके, उसका क्रोध शान्त करने के लिए हरेन्द्र उसी दिन सांझ के समय उसके घर गया और अकेले में उससे बोला, "कमला, किसी से कहना मत भई।"

कमला का क्रोध अभी तक शान्त नहीं हुआ था। उसने क्रोध भरे स्वर में कहा, "नहीं किसी से नहीं कहूंगी। ठहरो, मैं कल ही जाकर काकी को बता दूंगी।"

हरेन्द्र ने विनती भरे स्वर में कहा, "तेरे पांव पड़ता हूं—अब कभी तेरा पत्र नहीं पढ़ूंगा।"

बड़ी कठिनाई से कमला के क्रोध को शान्त करके हरेन्द्र अपने घर लौट आया, लेकिन उसे शशि की ओर से खटका लगा हुआ था।

शशि का चेहरा बहुत ही बदसूरत था। उस पर तुर्रा रहा था कि उसकी एक आंख में फूला भी था। गांव के सीधे-सादे लड़के आड़ में और शैतान लड़के उसके मुंह पर ही उसे काना शशि कहते थे। हरेन्द्र ने भी दो-एक बार उसे काना शशि कहकर पुकारा था। हरेन्द्र जानता था कि अब उसे अपनी मुट्ठी में पाकर शशि कहकर पुकारा था। हरेन्द्र जानता था कि अब उसे अपनी मुट्ठी में पाकर शशि सहज ही उसे नहीं छोड़ेग, और पिता से कहकर उसे अवश्य पिटवाएगा। लेकिन कई दिन इसी दुश्चिन्ता में विताने के बाद भी कोई घटना नहीं हुई तो हरेन्द्र समझ गया कि शशि उस बात को हज्म कर गया है। वह उसकी ओर से निश्चिन्त हो गया।

लेकिन शशि ने उस दिन जो कुछ देखा था उसे वह भूला नहीं। हरनाथ के ऊपर वह वैसे ही चिढ़ा हुआ था। वह तो उसी दिन कमला को बदनाम कर डालता। लेकिन कठिनाई यह थी कि इस मामले में उसके मलिक का लड़का भी शामिल था इसलिए उसका इरादा मिट्टी में मिल गया। शशि उसी दिन से मौके की ताक में था। अचानक उस दिन कमला के खो जाने से शशि को मौका मिल गया। उसने उस पुरानी घटना के आधार पर हरेन्द्र के साथ कमला के भाग जाने की कहानी गढ़ कर गांव वालों को सुना दी।

2

योगेन्द्र मित्र उस गांव के जमींदार थे। आधुनिक युग की शिक्षा पाने के बाद भी वे इस आधुनिक शिक्षा के बहुत ही अप्रसन्न थे। वे स्वयं सारी जमींदारी का काम-काज देखते थे और अपनी बुद्धि को ही सर्वोपरि मानते थे। कोई भी उनकी बात की उपेक्षा नहीं कर सकता था। अपने इस स्वभाव के कारण योगेन्द्र बाबू को अपने जीवन में अनेक बार हानि उठानी पड़ी थी। फिर भी उनके स्वभाव में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हुआ था।

गांव में उनका बड़ा मान-सम्मान था। गांव के लोग उन्हें बहुत मानते थे। उनसे डरते-दबते थे। संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उनके भय से बाघ और गाय एक ही घाट पर पानी पीते थे।

बचपन में, जब उनके पिता जीवित थे, योगेन्द्र बाबू कलकत्ता में रहकर पढ़ रहे थे। अचानक किसी कारण पढ़ाई छोड़कर वे गांव चले आए और पिता को बता दिया कि अब वे पढ़ेंगे-लिखेंगे नहीं, अपनी जमींदारी की देखभाल करेंगे। योगेन्द्र बाबू के पिता पुराने जमाने के आदमी थे। लड़के की यह मति-गति देखकर अप्रसन्न नहीं हुए बल्कि उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसी समय पुत्र का जमींदारी की देखभाल का काम सौंप दिया।

तभी से योगेन्द्र बाबू अपनी जमीदारी का काम-काज स्वयं संभालते चले आ रहे हैं। पिता के न रहने के बाद उन्होंने अपनी जायदाद को बढ़ाया ही है, घटाया नहीं है। वे कलकत्ते के ऊपर विशेष रूप से रुष्ट थे। कलकत्ते के नाम से ही उन्हें चिढ़ थी। कलकत्ते का नाम सुनते ही वे ऐसी बातें करने लगते जिन्हें सुनकर अत्यधिक सीधे-सादे कलकत्ता निवासी को अपने धैर्य को बनाए रखना कठिन हो जाता था। अपने गांव में उनकी प्रतिष्ठा और दबदबे की सीमा नहीं थी। उनकी पीठ पीछे अपने घर में बैठकर भी उनकी बुराई करने का साहस कोई नहीं कर पाता था।

हरेन्द्र जब स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर चुका, तब योगेन्द्र ने अपनी ही तरह उसे भी जमींदारी के काम में लगाने का बहुत प्रयत्न किया। लेकिन न जाने क्यों, क्या सोचकर अपनी पत्नी के अनुरोध को उन्होंने मान लिया और हरेन्द्र को कॉलेज में पढ़ने के लिए भेज दिया।

हरेन्द्र की इच्छा थी कि वह कलकत्ता जाकर कॉलेज में एडमीशन ले ले, लेकिन परीक्षा-फल प्रकाशित होने पर उसके पिता ने कहा—"अब तुम जमींदारी का काम-काज सीखना आरम्भ करो।" लेकिन पिता के मुंह पर उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कहने

का साहस हरेन्द्र तो क्या, उस घर के किसी भी व्यक्ति में नहीं था। फिर भी उसने एक बार अपने मन की इच्छा मां के मुख से पिता को बता ही दी।

योगेन्द्र का ऐसा स्वभाव क्यों था, यह तो उनकी पत्नी भी आज तक समझ नहीं पाई थी। इसलिए एक प्रकार से निराश होकर ही उन्होंने अपने पति से यह अनुरोध किया था। लड़के को कलकत्ता पढ़ने के लिए भेजने की सिफारिश की थी। लेकिन प्रार्थना करते ही स्वीकार कर ली गई। यह देखकर योगेन्द्र बाबू की पत्नी को कुछ कम आश्चर्य नहीं हुआ। उनके मातृ-हृदय की गहराइयों में से जैसे कोई कहने लगा—उनका हरेन्द्र निश्चय ही भविष्य में एक बड़ा आदमी बनेगा। इसीलिए भगवान ने दया करके उनके पति को इस समय ऐसी सुबुद्धि प्रदान कर दी है।

कमला के गायब हो जाने की बात गांव के भले आदमियों से लेकर किसानों और मजदूरों तक में फैल जाने पर भी गांव के जमींदार योगेन्द्र बाबू के कानों तक नहीं पहुंची। योगेन्द्र बाबू बहुत ही कठोर स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी प्रखर और सतर्क दृष्टि से मामूली-से-मामूली बात भी छिपी नहीं रह सकती थी, लेकिन पता नहीं किस तरह ये बात उनके कानों को लांघकर सीधी अन्त—पुर में पहुंच गई। जमींदार के घर की गृहिणी होते हुए भी योगेन्द्र बाबू की पत्नी उमासुन्दरी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं था। योगेन्द्र बाबू के सख्त मिजाज और कठोर शासन के वातावरण में रहकर उस घर में किसी के भी व्यक्तित्व को स्वतन्त्र रूप से सिर उठा पाने का अवसर नहीं मिल पाता था—जैसे किसी विशाल वृक्ष की छाया में छोटे वृक्ष पनप नहीं पाते, वे उस घर के भीतर और बाहर के ऐसे स्वामी थे कि वहां उमासुन्दरी जैसे सीधी-सादी स्त्री को स्वयं सोच-समझ कर अपनी बुद्धि के अनुसार कोई काम करने का सामर्थ्य नहीं था।

उमासुन्दरी को जब यह समाचार मिला कि उनका लड़का उस घर की बेटी कमला को लेकर भाग गया है तो उनके हृदय पर गहरा आघात पहुंचा। एक जोरदार धक्का लगा। वह यह बात अपने पति को नहीं बता सकती थीं। पति को यह समाचार देना अपने हाथों अपना सर्वनाश करने या अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारने के समान था। क्योंकि योगेन्द्र बाबू तो पहले ही लड़के को पढ़ने के लिए कलकत्ता भेजने पर सहमत नहीं थे। केवल उमासुन्दरी के अनुरोध के कारण ही सहमत हो गए थे। अब यह समाचार पाकर हरेन्द्र के लिए कितने कठोर दण्ड की व्यवस्था करेंगे, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। हो सकता है, क्रोध में आकर लड़के को अपनी समस्त सम्पत्ति के उत्तराधिकार से ही वंचित कर दें। अपना कोई व्यक्तिगत स्वतन्त्र मत न दिखाई देने पर भी वह मां होकर पुत्र के लिए ऐसे कठोर दण्ड की व्यवस्था का किस प्रकार सहन कर पाएंगी ?

कभी उनके जी में आता था कि वह चोरी-चोरी हरेन्द्र को पत्र लिखकर यह पता लगाएं कि अफवाह कहां तक सच है, क्योंकि उनका मन किसी भी प्रकार यह विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था कि उनका बेटा हरेन्द्र घृणित काम कर सकता है। जिस व्यक्ति ने यह समाचार उमासुन्दरी को दिया था, उसने यह भी बताया था कि कमला और हरेन्द्र में पहले से ही प्रेम था। लेकिन मां होकर भी वह आज तक इस गुप्त प्रेम का आभास तक नहीं पा सकी थीं। यह सोचकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा, सम्भव है यह बात सच हो। कौन मां अपने बेटे के चाल-चलन के सम्बन्धं में ऐसा संदेह कर सकती है।

हरेन्द्र को पत्र लिखने की बात में आते ही एक और समस्या उठ खड़ी हुई—हरेन्द्र को पत्र लिखेगा कौन, उमासुन्दरी स्वयं तो पढ़ी-लिखी थीं नहीं, अगर कोई ऐसा भरोसे क़ा आदमी मिल भी जाए, तो एक कठिनाई थी—जब तक योगेन्द्र बाबू उस पत्र को पढ़ नहीं लेंगे और उसे भेजने की आज्ञा नहीं दे देंगे, वह पत्र ड्योढ़ी के बाहर नहीं जा सकेगा।

सच-झूठ और आशा-निराशा के इस दारुण अन्तर्द्वन्द्व के बीच उमासुन्दरी बड़ी बेचैनी से दिन बिताने लगीं। जमींदार योगेन्द्र बाबू के घर में अनेक रिश्ते-नाते की बहुत-सी स्त्रियां थीं, लेकिन उनके साथ अपने बेटे के सम्बन्ध में इस विषय को लेकर सलाह-मशवरा उमासुन्दरी कर नहीं सकती थीं। इस चिन्ता की व्यथा और उसके कारण उत्पन्न मातृ-हृदय की असह्य पीड़ा उन्हें अकेले ही सहनी पड़ रही थी।

उधर हरनाथ मैत्र की पत्नी अर्थात् कमला की मां को जो मानसिक दुःख था, उससे कम दुःख उमासुन्दरी नहीं भोग रही थीं। उमासुन्दरी का जी चाहता था कि एक बार कमला की मां के पास जाकर इस रहस्य को अच्छी तरह समझा जाए। वे दोनों बहुएं बहुत ही छोटी उम्र में ही ब्याह कर ससुराल आई थीं। नई-बहुओं की उस असहाय अवस्था से लेकर आज तक वे सुख-दुःख से दोनों पड़ोसिनों का स्नेह निरन्तर बढ़ता ही चला जा रहा था। अचानक इस घटना के हो जाने से उमासुन्दरी को हरनाथ की पत्नी के सामने जाते, उसे मुंह दिखाते लज्जा का अनुभव होने लगा।

हरनाथ की पत्नी पहले प्रायः नित्य ही दोपहर को घर के काम-काज से छुट्टी पाकर पास-पड़ोस के घरों चक्कर लगा आया करती थी, लेकिन तीर्थ-स्नान से लज्जा का इतना बड़ा भार लादकर गांव मे आने के बाद उसने घर से निकलना बंद कर दिया था।

गांव में कमला को लेकर जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, वह दिन बीतने के साथ-साथ धीरे-धीरे धीमा पड़ने लगा। गांव के बड़े-बूढ़ों ने पहले तो इस मामले को लेकर खूब ऊधम मचाया, लेकिन जब इस घटना के साथ योगेन्द्र मित्र के बेटे का नाम

जुड़ा सुना तो एकदम चुप्पी साध ली। बूढ़ों से जवानों तक यह बात पहुंची और फिर गांव के नौजवान लड़के आपस में ही इसकी चर्चा करने लगे।

कमला का एक छोटा भाई था। उसका नाम अरुण था। अरुण हरेन्द्र के छोटे भाई नरेन्द्र के साथ गांव के स्कूल में पढ़ता था। दोनों सहपाठी थे। बहिन के कलकत्ते में खो जाने के सम्बन्ध में घर में और गांव में जो चर्चा चल रही थी, उसे समझ पाने की बुद्धि अरुण में थी। वह इतना सयाना हो चुका था कि इस घटना के कारण उसके माता-पिता और परिवार को कितनी लज्जा, कितनी अपयश और कितनी ही सामाजिक लांछना भोगनी पड़ रही है; और उसमें उसका कितना भाग है, उसका रोम-रोम इस बात का अनुभव कर रहा था।

स्कूल के अध्यापक पढ़ाते-पढ़ाते तिरछी नजरों से या कभी-कभी नजरें टिका कर अरुण के चेहरे की ओर देखने लगते थे, या उसके सहपाठी लड़के उसकी ओर देखकर या उसकी ओर संकेत करके आपस में बातें करने लगते थे, तब उन बातों को अपने कानों से न सुन पाने पर भी अरुण के हृदय में पीड़ा से वह बेचारा छटपटा उठता था। लज्जा और अपमान का पीड़ाजनक भार उसे अकेले ही सहन करना पड़ता था, क्योंकि उसकी जैसी स्थिति और जैसी कम उम्र थी, उसमें किसी ऐसे अन्तरंग मित्र का मिलना कठिन ही था, जो उसके दुःख बंटाता या सहानुभूति प्रकट करके उसके आकुल हृदय को शान्त कर पाता। उसके माता-पिता जो अकथनीय मानसिक कष्ट भोग रहे थे, उसे वह स्वयं अपनी आंखों से देख रहा था। इसलिए वह अपनी बहिन के सम्बन्ध में उनसे कुछ पूछ भी नहीं सकता था। वह इतना समझता था कि अगर मैं उसके सम्बंध में उनसे कुछ पूछूंगा, तो उन्हें और अधिक कष्ट होगा। यही सोचकर वह चुप रह जाता था।

अरुण की बहन और नरेन्द्र के बड़े भाई का नाम लेकर लोग जो निन्दा करते थे, उससे अरुण की और नरेन्द्र की एक जैसी हालत होनी चाहिए थी। पहले-पहले यह बात गांव में फैली थी, तब नरेन्द्र को भी अरुण की देखा-देखी लज्जा मालूम होती थी, लेकिन कुछ दिन बीतने के बाद कक्षा देखा-देखी लज्जा मालूम होती थी, लेकिन कुछ दिन बीतने के बाद कक्षा के अन्य लड़कों ने नरेन्द्र को यह समझाया कि इस बात में उसके लज्जित होने की तो कोई बात ही नहीं है, क्योंकि लज्जा की बात तो स्त्री के घर वालों के लिए होती है। पुरुष के लिए तो लज्जा की कोई बात ही नहीं होती।

फिर धीरे-धीरे ऐसा दिन भी आ गया जब कक्षा के छात्र नरेन्द्र के दादा की वीरता की प्रशंसा करने लगे। स्कूल लगने से पहले लड़के इकट्ठे होकर जब आपस में इसी बात की चर्चा करने लगते थे और हरेन्द्र की वीरता की प्रशंसा के पुल बांधते थे, तब स्वयं को ऐसे दादा का भाई समझ कर नरेन्द्र भी मन-ही-मन एक प्रकार के

गर्व का अनुभव करने लगता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि कक्षा के लड़के इकट्ठे होकर कमला के बारे में बातें करने लगते। बीच में कोई लड़का गन्दी दिल्लगी करके कोई बात कह उठता, तो अन्य सब लड़के एकदम कह-कहे लगा उठते। कोई-कोई हंसते-हंसते जमीन पर लोट-पोट हो जाता।

ठीक ऐसे ही समय में उदास और दुःखी चेहरा लिए अरुण ने कक्षा में पांव रखा। हंसी का वेग एकाएक थम गया। कोई शैतान लड़का अपनी हंसी नहीं रोक पाया और मुंह में कपड़ा देकर तिरछी नजर से अरुण की ओर ताक कर कब भी हंसता ही रहा। क्या बातचीत हो रही थी, सब लड़के बेदम होकर किस बात पर हंस रहे हैं, यह न जानने पर भी अरुण को बात समझते देर नहीं लगी।

कभी-कभी ऐसा भी होता था कि लड़के और किसी बात पर हंस रहे हैं, लेकिन अरुण यही समझता था कि उसकी बहिन की ही चर्चा चल रही है। इस प्रकार अपमान और लज्जाजनक जीवन बिताना धीरे-धीरे उस बेचारे के लिए असह्य और असम्भव हो उठा। अरुण ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अब वह स्कूल नहीं जाएगा। किसी को कुछ न कह कर अकेले ही कलकत्ता जाकर बहिन का पता लगाने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया।

3

एक दिन सवेरे स्कूल जाने के समय अरुण ने अपनी मां से स्पष्ट कह दिया कि अब वह स्कूल नहीं जाएगा। पढ़ने-लिखने में उसका खूब मन लगता था। अन्य लड़कों की तरह उसने स्कूल जाने में कभी आपत्ति भी नहीं की थी। उसके मुंह से स्कूल छोड़ने की बात सुनकर मां ने पूछा, "स्कूल क्यों नहीं जाएगा रे ? क्या हुआ है ?".

अरुण के पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। क्या हुआ है ? यह बात सभी लोग जानते हैं। लेकिन वह बात अरुण अपनी मां से तो कह नहीं सकता। इसीलिए कोई उत्तर न देकर वह चुप ही रहा।

मां ने बेटे के सिर पर हाथ फेरते हुए अपने आंसुओं से रुंधे स्वर में फिर पूछा, "स्कूल क्यों नहीं जाओगे बेटे ? क्या हुआ है ?"

अरुण एकदम रो पड़ा। बोला, "तुम्हारें पैरों पड़ता हूं मां, मुझसे तुम स्कूल जाने के लिए मत कहना।"

इतने दिनों से उसके ऊपर जो अपराध हो·रहा था, अपमान और लज्जा का उसे जो कष्ट उठाना पड़ रहा था, वह सब आज जोश में आकर मां को सुना डाला।

बेटे के मुंह से सारी बात सुनकर मां भी रोने लगी। मैत्र महाशय बाहर चबूतरे पर बैठे कुछ कह रहे थे। अचानक लड़के का जोर से रोना सुनकर वे भी भीतर दौड़े चले आए। पत्नी के मुख से सारी बात सुनकर वे एकदम सन्नाटे में आ गए। उसके बाद धीरे-धीरे घर से बाहर निकलकर चल दिए।

4

योगेन्द्र मित्र अभी-अभी अपने दफ्तर में आकर बैठे थे। फर्श के एक ओर ऊंचे स्थान पर गाव-तकिए के सहारे बैठे तम्बाकू पी रहे थे, सामने ही कुछ दूर पर फर्शी हुक्का रखा था। उसके चारों ओर आठ-दस कर्मचारी थोड़ी-थोड़ी दूर पर बैठे अपना-अपना काम कर रहे थे। उन कर्मचारियों के आस-पास छोटे-बड़े, पतले-मोटे, तरह-तरह के रजिस्टर और बही खाते आदि खुले रखे थे। काम हो रहा था।

दफ्तर में गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। उसी समय आंधी की तरह हरनाथ मैत्र ने तेजी से दफ्तर में प्रवेश किया। उनकी उग्र मूर्ति देखकर दफ्तर के सभी आदमी भयभीत हो उठे।

दाहिने हाथ मे जनेऊ लपेटकर हरनाथ ने दूर से ही चिल्लाकर योगेन्द्र बाबू ने कहा, "योगेन्द्र बाबू, इसका कुछ प्रतिकार कीजिए। आप गांव के जमींदार हैं। हम सबके रक्षक हैं। मैंने क्या किया है जो मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार हो रहा है, मुझ पर ऐसा अत्याचार क्यों किया जा रहा है, मैं यह जानना चाहता हूं ?"

हरनाथ की बातचीत का ढंग और उनकी उग्र मूर्ति देखकर दफ्तर के सभी कर्मचारी उनके आने का कारण समझ गए थे। केवल नहीं समझे थे तो योगेन्द्र बाबू। उन्होंने समझा, शायद जमीन-जायदाद के लिए किसी के साथ ब्राह्मण का झगड़ा हो गया है। उन्होंने हरनाथ से कहा, "आइए, बैठिए। इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हैं ? बात क्या है ? जरा खोलकर बताइए।"

हरनाथ की आंखों से उस समय जैसे आग बरस रही थी। उन्होंने चिल्लाकर कहा, "खोलकर बताना होगा ? क्या हुआ है, यह बात गांव का कौन आदमी नहीं जानता ?"

योगेन्द्र बाबू का स्वभाव था कि वे किसी भी बात को तूल देकर कहना पसन्द नहीं करते थे। लम्बी भूमिका सुनकर वे चिढ़ जाते थे। खींझकर अपने कर्मचारियों की ओर देखकर उन्होंने पूछा, "मैत्र महाशय को किसने सताया है ? तुम लोगों को इस मामले में कुछ मालूम है ?"

शशि मुकर्जी भी वहां मौजूद था। वह मालिक के सामने कभी नहीं बैठता था।

वह ऐसे स्थान पर बैठता था जहां योगेन्द्र बाबू की नजर उस पर नहीं पड़ती थी। हरनाथ के इस प्रकार आने से उसका कलेजा धड़कने लगा। उसे लगा, आज उसकी कुशल नहीं है। शायद सात पीढ़ियों को पुराना मकान छोड़कर उसे अब इस गांव से भागना पड़ेगा। मन-ही-मन बारम्बार देवताओं को स्मरण करते हुए वह एकदम खाते पर झुककर अपना काम करने लगा।

अधिकांश कर्मचारी एकदम धरती में सिर गड़ा कर खाता-पत्र लिखने में लग गए, जैसे उन्हें सांस लेने की भी फुर्सत न हो। दो-एक आदमियों ने योगेन्द्र बाबू का प्रश्न सुनकर ऐसा मुंह बनाया जैसे वे बेचारे इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते।

योगेन्द्र बाबू और भी खींझ उठे। उन्होंने हरनाथ से कहा, "मैत्र महाशय, इनमें से तो कोई भी कुछ नहीं कहता। आप साफ-साफ बता दीजिए न।"

हरनाथ ने कहा, "कमला का पता नहीं है, यह तो आप जानते हैं ?"

योगेन्द्र बाबू को अब तक इस बात मालूम नहीं थी। उन्होंने अवाक् होकर कहा, "ऐं कमला ? क्यों, कहा गयी ?"

हरनाथ—"कहां गई ? आपके ही सुपुत्र उसे लेकर कहीं भाग गए।"

इसके बाद हरनाथ ने कमला के गुम होने की सारी कहानी आरम्भ से अन्त तक सुना दी।

जीवन भर में योगेन्द्र बाबू को इतना आश्चर्य कभी नहीं हुआ था। सबसे अधिक आश्चर्य उन्हें इसलिए हुआ कि जिस बात को गांव के बूढ़े, बच्चे सभी जानते हें, उस बात को वे नहीं जानते। इस पर दिलचस्प बात यह है कि इस निन्दनीय कार्य से उनके लड़के का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, योगेन्द्र बाबू को लगा, शायद और भी ऐसी कितनी बातें इस गांव में और विरोष रूप से उन्हीं के घर भी होती रहती हैं लेकिन वे उन्हें जान नहीं पाते।

उन्होंने फर्शी हुक्के की नली से मुंह हटाकर, धरती पर जोर से पांव पटककर ऊंची आवाज में पुकारा, "शशि बाबू !"

शशि बाबू उस समय कान पकड़कर अपनी मूर्खता के लिए मुंह पर थप्पड़ मार रहे थे और सत्यनारायण स्वामी से प्रार्थना कर रहे थे कि—भगवान, अब की बार प्राण बचा ले। मैं नकद पांच आने खर्च करके कल ही कथा सुनूंगा।

मालिक के मुख से अपना नाम सुनकर वह उठ खड़े हुए और हाथ जोड़े बलि के बकरे की भांति कांपते-कांपते योगेन्द्र बाबू के सामने आ खड़े हुए।

योगेन्द्र बाबू ने कहा, "इस सम्बन्ध में तुम जो कुछ भी जानते हो, विस्तार से बताओ। कोई भी बात छिपाई तो तुमको गांव से निकाल बाहर करूंगा। जानते हो, मेरा नाम योगेन्द्र मित्र है ?"

दफ्तर के सभी लोगों ने समझा कि शायद आज उनकी आंखों के आगे ही ब्रह्म-हत्या होना चाहती है। वे सब चुपचाप इस समय गरूड़ की मूर्ति के समान बनी हुई शशि की मुद्रा को देखने लगे।

सांझ की बैठक में उस दिन अब लोगों के सामने शशि ने गोपनीय ढंग से इस सम्बन्ध में जो कुछ बताया था इतने दिनों के बाद वे सारी बातें अब उसे अच्छी तरह याद भी नहीं रही थीं। उसने कांपते-कांपते लड़खड़ाती हुई आवाज से कमला और हरेन्द्र के सम्बन्ध में तत्काल एक नया ही इतिहास गढ़कर सुना डाला।

उसने कहा, "हरनाथ जब गांव लौटे आए, उसके बाद ही उसके ममेरे भाई का साला पश्चिम की ओर जा रहा था। उसी गाड़ी में उसने हरेन्द्र और कमला को साथ-साथ जाते देखा था। और फिर पत्र द्वारा उसे इस बात की सूचना उन्होंने दे दी थी।"

योगेन्द्र बाबू एकदम आग बबूला हो उठे। तख्त के ऊपर एक घूंसा जोर से मारकर गरजते हुए कहा, "उल्लू ! यह बात आज तक तूने मुझे क्यों नहीं कही ?"

शशि गिरते-गिरते बचा। उसने संभल कर चार-पांच कदम पीछे हटकर कहा, "हूजूर, डर के मारे।"

योगेन्द्र बाबू उठ खड़े हुए और किसी से कुछ न कहकर घर के भीतर चले गए

5

उमासुन्दरी अभी-अभी नहा-धोकर पूजा करने बैठी थीं। एक ओर महरी सौदे की लम्बी लिस्ट लिए बैठी थी। हिसाब नहीं मिल रहा था। दो पैसे घट रहे थे। वह बेचारी परेशान हो रही थी।

उमासुन्दरी का ध्यान उस ओर नहीं था। वह एकाग्र मन से गुरु-मन्त्र का जाप कर रही थीं।

खूब ध्यान से हिसाब करते-करते महरी एकदम घबराकर उठ खड़ी हुई और सिर पर आंचल खींचकर जल्दी से बोल उठी, "मां जी, बड़े बाबू...!

इतना कहकर रुपए में से बचे हुए बाकी पैसे आंचल के खूंट में बांधती हुई महरी वहां से खिसक गई।

योगेन्द्र मित्र ठाकुरद्वारे के दरवाजे के पास आकर खड़े हो गए।

इस समय योगेन्द्र मित्र को वहां देखकर उमासुन्दरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। मामला क्या है ? उन्होंने घबरा कर पति के चेहरे की ओर देखा। क्रोध के मारे उस समय योगेन्द्र मित्र का समूचा बदन थर-थर कांप रहा था।

पति की यह मूर्ति देखकर उमासुन्दरी जप करना भूल गयीं। पूछा, "क्या हुआ ?"

योगेन्द्र—"तुम्हारे बेटे हरेन्द्र की कीर्ति—जिसे तुमने खूब विद्या सीखने के लिए कलकत्ता भेजा था।"

उमासुन्दरी इस इशारे का अर्थ स्पष्ट रूप से समझ गईं। वह मन-ही-मन सोचने लगीं कि यह बात उसके पति के कानों तक किसने पहुंचाई ?

वह भय से कांप उठीं। यह बात जब स्वामी के कानों तक पहुंच गई है तो कुछ-न-कुछ अनर्थ अवश्य ही होकर रहेगा। वास्तव में बात यह थी कि इस अपघात पर उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं हुआ था। अपने लड़के के सम्बन्ध में ऐसे कलंक की बात पर भला कौन मां विश्वास करेगी ? उसका बेटा तो अभी तक वही बच्चा बना हुआ है। उसका हृदय अब भी वैसा ही सरल और निर्मल है। उसके द्वारा इतना बड़ा अनर्थ, ऐसा निन्दनीय कार्य किस भी दशा में हो ही नहीं सकता। लोग कहते हैं, कमला के साथ उसकी साठ-गांठ पहले से ही थी। दोनों में प्रेम था। पागल, कहते क्या हैं ? उमासुन्दरी का मन जोर देकर कहने लगा—"नहीं, नहीं, यह झूठ है—सरासर झूठ है।"

जैसे कुछ जानती ही न हो, ऐसा भाव दिखाते हुए उमासुन्दरी ने कहा, "तुम किस की बात कह रहे हो ? हरेन्द्र की ? उसने ऐसा कौन-सा काम किया है ?"

योगेन्द्र मित्र ने कहा, "अपने पड़ोसी मैत्र महाशय अपनी बेटी और बहुत-सी अन्य स्त्रियों को लेकर गंगा स्नान करने कलकत्ता गए थे। उनकी पत्नी भी साथ गई थीं। वहां से और सब लोग तो लौटे आए, लेकिन कमला नहीं लौटी। मालूम हुआ है कि हरेन्द्र उसे फुसलाकर कहीं ले गया है और कहीं छिपा रखा है।"

यह सुनकर उमासुन्दरी के बदन में जैसे आग लग गई। उन्होंने झनक कर कहा, "हरेन्द्र उसे ले गया है ?"

उमासुन्दरी आसन छोड़कर उठ खड़ी हुईं और एकदम गरजकर कह उठीं, "झूठ, बिल्कुल झूठ, किसने कही है यह बात ?"

योगेन्द्र मित्र कुछ सिटपिटाकर चुप हो गए। क्योंकि उन्होंने उमा की ऐसी उग्र मूर्ति आज से पहले कभी नहीं देखी थी। पल भर में ही उनका क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने शान्त भाव से कहा, "शशि का कोई रिश्तेदार ट्रेन में बैठकर कहीं जा रहा था। उसने उसी ट्रेन में हरेन्द्र तथा कमला को बैठे देखा था।"

उमासुन्दरी ने कहा, "शशि कहता है ? वही बदमाश, शराबी शशि न ?"

योगेन्द्र बाबू ने कहा, "लेकिन झूठ कहने में उसका अपना तो कोई स्वार्थ है नहीं। फिर वह क्यों ऐसी बात बनाकर कहेगा ?"

उमासुन्दरी सोचने लगीं—यह तो ठीक है। शशि उनका नौकर है। उनके बेटे क झूठा आरोप लगाकर उसे बदनाम करने में उसकी हानि ही है, लाभ तो कुछ है नहीं फिर उसके अतिरिक्त गांव के अन्य दस आदमी यही बात क्यों कहते फिरते ? गां में हरेन्द्र के अतिरिक्त और भी तो बहुत से आदमी हैं। कलकत्ते में भी तो आदमिय की कमी नहीं है। फिर और सबको छोड़कर हरेन्द्र को ही केन्द्र बनाकर यह निन्दा क चक्र क्यों चल रहा है। इस क्यों का समाधान क्यों नहीं होता ?

उमासुन्दरी ने कहा, "तो फिर अब तुम क्या करोगे ?"

योगेन्द्र मित्र ने कहा, "क्या करूंगा, यह मैंने निश्चय कर लिया है। मैं अभी हरेन्द्र को पत्र लिख रहा हूं। वह यहां आ जाए और मेरे सामने खड़े होकर इस बात का उत्तर दे कि इतने लोगों के होते हुए उसी का नाम क्यों लिया जा रहा है ? इसके बाद ही मैं इसका यथेचित न्याय करूंगा।"

उमासुन्दरी ने कहा, "लेकिन सुनो, केवल लोगों के मुंह से उड़ती हुई अफवाह सुनकर, पहले से ही लड़के के साथ कठोर व्यवहार मत कर बैठना। हजार हो, अब सयाना हो गया है। किसी भी तरह की थुक्का-फजीहत नहीं होनी चाहिए। देखो—मैंने तुम्हारी इच्छा या इरादे के विरुद्ध कुछ करने या कुछ कहने का साहस कभी नहीं किया, और न आज ही कुछ कर सकती हूं। अत्यन्त दुःखी होकर ही आज यह प्रार्थना कर रही हूं। कि पहले ठीक-ठीक पता लगा लो, सही बात जान लो, अगर उसके बाद लड़के को दोषी पाओ तो जो भी चाहे उसे दण्ड देना।"

योगेन्द्र मित्र ने कहा, "इसमें तो मुझे कुछ विशेष जांच-पड़ताल करने की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। कलकत्ता जैसे स्थान में जब लड़के को पढ़ने के लिए अकेला छोड़ दिया है तब अगर किसी दिन उससे ऐसी कोई बात हो जाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? खैर, मैं तुम्हें पहले से ही बता देता हूं—इसके बाद मेरे सामने रोने-धोने से कुछ नहीं होगा। मैं उस पर ध्यान भी नहीं दूंगा। मैं इस सम्बन्ध में हरेन्द्र से स्पष्ट उत्तर चाहता हूं। उसके बाद मुझे जो कुछ करना होगा करूंगा।"

इतना कहने के बाद योगेन्द्र मित्र वहां पल भर भी नहीं रुके। सीधे अपने दफ्तर में चले गए। हरेन्द्र को उसी समय पत्र लिखना था।

पति के चले जाने के बाद कुछ देर तक उमासुन्दरी पत्थर की मूर्ति के समान पूजा के आसन पर खड़ी रहीं। लगा, जैसे उन्हें काठ मार गया हो। फिर देव-मूर्ति के सामने धरती पर सिर टिकाकरप्रणाम करने के बाद उन्होंने कहा, "भगवान ! अबकी बार इस आपत्ति से रक्षा करो। मां की बात, मां का सम्मान रख लो। मां की इतनी बड़ी आशा धूल में न मिलने पाए।"

उनकी दोनों आंखों की कोरों में आंसू मोतियों के समान चमक उठे।

6

क्षितीशचन्द्र चौधरी कपिल डांगा के जमींदार का इकलौता पुत्र था। कलकत्ते में रहकर शिक्षा प्राप्त कर रहा था। पटल डांगा की एक गली में मध्यम श्रेणी के एक सजे-सजाए मकान में, किराए पर रहता था। उसने उस मकान को अंग्रेजी ढंग करीने से सजा रखा था। वह प्रेसीडेन्सी कॉलेज में बी. ए. में पढ़ रहा था। घर में एक नौकर और एक गुमाश्ता, बस यही दो आदमी उसके साथ रहते थे। लेकिन घर में बाहरी लोगों अर्थात् यार दोस्तों का ऐसा जमघट लगा रहता था, और उनका शोर-गुल, हल्ला-गुल्ला तथा ऊधम इतना हुआ करता था कि अगर बाहर से कोई अजनबी आदमी उसे सुनता तो यही समझता कि इस घर में निश्चय ही कोई शादी-ब्याह होने वाला है। उसी के कारण यह धूम मची हुई है।

क्षितीश की अवस्था लगभग 23-24 वर्ष की थी, खूब शौकीन नौजवान है। चेहरा भी सुन्दर है। क्लीन शेव्ड रहता है। आंखों पर मूल्यवान चश्मा लगा रहता है। वह हारमोनियम बजाना जानता है, गाना भी गा सकता है। चित्रकला का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान है। बहुत बड़े जमींदार घराने का दुलारा होने पर भी वह सीमा से अधिक नाजुक या परिश्रम करने में असमर्थ कोरा गोबर-गणेश नहीं है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें किसी प्रकार की दुर्बलता है ही नहीं। चार समवयस्क यार-दोस्तों के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनना उसे बहुत अच्छा लगता है। सीधे-सादे शब्दों में जिसे मुसाहबत कहते हैं, उसके मोह को जाने या अनचाहे बिल्कुल नहीं छोड़ पाता। इष्ट मित्रों तथा मुसाहिबों के बीच वह एक बहुत बड़े कलाकार के नाम से विख्यात है। उसके मित्र कहते हैं, उसके सिर के बालों के कटाव में या गले में रेशमी चादर डालने के ढंग में, यहां तक कि उसके चलने-फिरने में भी एक प्रकर की विशेषता है। कैटलॉग देखकर क्षितीश ने बम्बई से इब्सन और बर्नार्ड शॉ की ग्रन्थावली जिस दिन मँगवा ली, इब्सन की एक पुस्तक खोलकर उसका पहला पृष्ठ पलटते ही ग्रन्थ और ग्रन्थकार का नाम देखकर उसका मित्र जगदीश एकाएक चिल्ला—उठा यही तो आर्टिस्ट का लक्षण है।

अथाह सम्पत्ति का अधिकारी होकर क्षितीश ने सम्पूर्ण विश्व को प्रथम यौवन के नशे में बहुत ही सुलभ दृष्टि से देखा। दिन-प्रतिदिन सुलभ को अपने हाथ में करने की इच्छा तो उसके मन से मिटती ही जा रही थी, इसके अतिरिक्त ऐसा हो गया कि जितनी भी सुलभ वस्तुएं हैं, उनको प्राप्त करने की उसमें इच्छा ही पैदा नहीं होती।

गांव वाले घर में उसकी विधवा मां और आयु में उससे बहुत छोटी एक बहिन

थी। क्षितीश का अभी तक विवाह नहीं हुआ था। विधवा माता ने जिस दिन देख-सुनकर एक सुन्दर कन्या के साथ उसके विवाह की बातचीत ठीक करनी चाही, उस दिन एक बड़े अंग्रेजी के उपन्यास को पूरा कर चुकने के बाद एक लम्बी सांस छोड़कर क्षितीश ने अपने मन में सोचा, "भला यह भी कोई विवाह है। न जान, न पहचान, एक बनारसी साड़ी की पोटली में बंधी हुई कोई लड़की न जाने कहां से लाकर खड़ी कर दी। उसे पीठ पर अक्षय बोझ की तरह बांधकर जिन्दगी की राह तय करो, मेरे साथ उसका मेल होने में भी सन्देह है। मैं शायद जिस समय टेनिसन की कविता पढ़ते-पढ़ते इस सीमाहीन नील गगन में उड़ान भर रहा होऊं उस समय वह देवी दोनों आंखों में आंसू भरी अपने मायके की पालतू बिल्ली पूसी के लिए बैठी रो रही होगी। वाह...ऐसे बे-मेल विवाह की ऐसी-तैसी।"

उसने जाकर मां से कहा, "विवाह की अभी कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती मां। जिस दिन आवश्यकता महसूस होगी, उस दिन कह दूंगा। आज मैं कलकत्ते जा रहा हूं। कल मेरा कॉलेज खुलेगा, पढ़ाई शुरू हो जाएगी।"

बेटे की बात सुनकर मां सन्नाटे में आ गईं। उन्होंने यही उचित समझा कि इस सम्बन्ध में जोर न दिया जाए। आकाश की ओर एक बार देखकर लम्बी सांस छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा। उसे इसी बात पर सन्तोष हो गया कि लड़के ने शादी करने से इन्कार नहीं किया।

कलकत्ते आकर क्षितीश ने अपनी मित्र-मंडली के बीच अपनी धारणा की घोषणा कर दी कि विवाह से पहले प्रेम किए बिना विवाह किया ही नहीं जा सकता। पुराने ढंग से विवाह करना तो झख मारने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

क्षितीश का मित्र गणेश उसके सारे मित्रों में सबसे अधिक समझदार और सबसे बढ़कर कट्टर भक्त तथा समर्थक था। इसका मुख्य कारण यह था कि गणेश निर्धन था। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। आवश्यकता होने पर या न होने पर भी अकसर क्षितीश उसकी आर्थिक सहायता करता रहता था।

घूमने जा रहे हैं—अचानक गणेश का जूता फट गया। गणेश ने फौरन क्षितीश का कोई भी कीमती जूता पहन लिया। और उसके बाद उस पर सदैव के लिए उसका अधिकार हो गया। बीच-बीच में पत्नी या बच्चों की तबियत खराब होने पर गणेश क्षितीश के पास दौड़ा चला जाता था। और अपने अभिन्न मित्र से डॉक्टर की फीस तथा दवा के दाम मांग लेने में कभी संकोच नहीं करता था। और न क्षितीज ही उससे कुछ पूछताछ ही किया करता था। बस चुपके से नोट निकालकर उसे दे दिया करता था। ऐसी स्थिति में यदि गणेश के मुख से क्षितीश की प्रशंसा की मात्रा अन्य मित्रों की अपेक्षा अधिक हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

क्षितीश के मुख से विवाह के सम्बन्ध में ऐसी धारणा सुनकर गणेश जल्दी से कह उठा, "निस्संदेह-निस्संदेह, ऐसा तो है ही।"

लेकिन गणेश का विवाह हो चुका था और वह पुरातन परम्परा के अनुसार ही हुआ था। विवाह से पहले पत्नी के साथ प्रेम की कौन कहे, कभी उससे भेंट तक नहीं हुई थी। क्योंकि गणेश की पत्नी का मायका बंगाल के एकदम काले कोसों पर था। विवाह से पहले उसने कभी सपने में भी उस ओर पांव नहीं रखा।

गणेश की बात सुनकर रमेश कह उठा, "तुम तो ऐसा मत कहो गणेश जी। तुम्हें ऐसा कहना शोभा नहीं देता। तुम्हें पहले पत्नी मिली थी। प्रेम भले ही बाद में हुआ हो। पत्नी प्राप्ति से पूर्व पत्नी से प्रेम का आनन्द भला तुम क्या जानो।"

क्षितीश ने हंसकर कहा, "तनिक-सा भी धीरज न रख सके गणेश।"

गणेश ने होंठों पर बहुत की करुण हंसी लाकर कहा, "बहुत बड़ी भूल हो गई भाई ! क्या करूं।"

मित्रों की महफिल में बैठकर क्षितीश का मन इसी प्रकार दुर्लभ वंस्तुओं की ओर दौड़ रहा था। उसी समय उसे एक नया शौक चर्राया। यह शौक था मोटर गाड़ी पर चढ़ने और उसे चलाने का।

पटेल डांगा की जिस गली में क्षितिज रहता था, उस गली के मोड़ पर रहने वाले एक बाबू साहब ने नई-नई कार खरीदी और उसके हॉर्न को आठों पहर बजाते हुए इधर-उधर उसे दौड़ाने लगे।

यह देखकर क्षितीश का एक मित्र एक दिन कह उठा—"यह तो असहनीय हो उठा है क्षितीश भाई। अब तुम्हें भी एक कार अवश्य खरीद लेनी चाहिए।"

क्षितीश ने कहा, "अच्छा !"

इसके बाद उसने जो कहा था, वही कर दिखाया। एक सप्ताह के भीतर ही स्टुअर्ट कम्पनी की दूकान में एक बहुत बड़ी कीमती कार खरीद ली गई।

इसके बाद तो क्षितीश को भी मोटर का ऐसा नशा सवार हुआ कि असके आगे गाने-बजाने, इब्सन और बर्नार्ड शॉ की पुस्तकों का अध्ययन, सब कुछ खो गया।

क्षितीश झक्की किस्म का था। जो भी चीज हाथ में लेता था, जो भी काम आरम्भ करता था, उसकी उस पर धुन-सी सवार हो जाती थी। कार खरीदते ही ड्राइविंग सीखकर, ड्राइविंग लाइसेन्स लेकर उसने स्वयं को कार चलाने का एक्सपार्ट या उस्ताद बनाकर ही चैन की सांस ली। जब देखो तब गैरेज से कार निकलवा लेता और उस पर सवार होकर कलकत्ते की सड़कों पर इधर-उधर दो-एक चक्कर लगा आने की उसे लत-सी पड़ गई। कॉलेज के लैक्चर अटेन्ड करने की ओर उसका ध्यान ही नहीं रहा।

और फिर इस कार ड्राइविंग में एक नवीन घटना हो गई।

उस दिन कोई बड़ा पर्व था। देश-विदेश के असंख्य यात्री उस अवसर पर कलकत्ते में गंगा-स्नान करने के लिए आए थे। सड़कों पर भारी भीड़ दिखाई देती थी। क्षितीश के सभी मित्रों ने स्वयं-सेवकों में अपने नाम लिखवा लिए थे। इसलिए उस दिन क्षितीश का डेरा सूना पड़ा था। गणेश बहुत चालाक छोकरा था। उसने स्वयं-सेवकों में अपना नाम नहीं लिखवाया था। कौन अकारण इतना परिश्रम करे ?

बातों-बातों में एक दिन क्षितीश ने कहा, "तो अब लोग स्वयं-सेवक बनकर मेले में काम करने जा रहे हैं। मैं अकेला घर में बैठा क्या करूंगा ?

सब मित्रों के इकट्ठे हो जाने पर कार की सवारी के आराम में बाधा पड़ती थी। इसलिए गणेश ने निश्चय कर रखा था कि इस योग के दिन क्षितीश के साथ मजे से मोटर में बैठकर मेले की सैर करेगा, लेकिन क्षितीश के मुंह से स्वयं-सेवकों में भर्ती होने की बात् निकलते ही गणेश का कलेजा धक् से रह गया। उसने जल्दी से कहा—"अब तो वह लोग और किसी को भर्ती नहीं कर रहे हैं। आवश्यकता से अधिक नाम आ चुके हैं। मैं स्वयं गया था, लेकिन मुझे भर्ती नहीं किया।

यदि उस समय कोई लड़का इस बात पर बहस करने लगता या यह बात आगे बढ़ती तो निश्चय ही गणेश को हार कर झेंपना पड़ता। लेकिन उस समय किसी के मन की अवस्था बहस करने की नहीं थी। इसलिए गणेश का मनोरथ बिना किसी विघ्न-बाधा के पूरा हो गया। अर्थात् क्षितीश ने स्वयं-सेवकों में नाम लिखवाने का विचार छोड़ दिया।

7

दोपहर तक लोगों की भीड़ में इधर-उधर और सड़कों पर कार चलाने की सुविधा नहीं थी। क्योंकि पुलिस का कड़ा प्रबन्ध था। विवश होकर क्षितीश को भीड़ से बचकर निकलने के लिए सड़क छोड़कर अहीरी टोले की एक गली में अपनी कार ले जानी पड़ी।

गली में कुछ देर आगे बढ़ते ही क्षितीश को एक दूकान के सामने लोगों की भीड़ लगी दिखी। क्षितीश ने अपने मन में सोचा, यह तो गंगा के किनारे की ओर जाने वाला रास्ता नहीं है। फिर यहां इतनी भीड़ क्यों है ? वह अपनी कार की स्पीड धीमी करके धीरे-धीरे आगे बढ़ाने लगा। कार पर उसका साथी केवल गणेश ही था। गणेश ने सोचा, कोई एक्सीडेन्ट तो नहीं हो गया ?

आगे बढ़ने पर क्षितीश ने देखा, दूकान के बरामदे में एक गुलाब जैसी सुन्दर,

सकुकुमार और युवा लड़की धरती पर बेहोश पड़ी है। उसके घने काले केश कमल के फूल पर भंवरों की भीड़ के समान चारों ओर फैले हुए हैं। और चारों ओर ऐसे रूपराशि का प्रकाश फैला हुआ है। युवती मूर्च्छित पड़ी है। चेहरे पर पानी के छींटे मारे जा रहे हैं।

क्षितीश ने कार रोकर नीचे उतरते ही भीड़ में से दो-एक आदमी एक साथ कह उठे, "लो, एक कार आ गई। इसी पर लिटाकर इसे अस्पताल पहुंचा देना ठीक होगा।"

किसी ने कहा, "देखो, शायद इन्हीं लोगों के घर की स्त्री हो।"

लेकिन क्षितीश की भाव-भंगिमा देखकर जब भीड़ में खड़े लोगों को आभास हो गया कि यह स्त्री इन लोगों के घर की नहीं है, तब चारों ओर से लोग अग्रह करने लगे—"कौन हैं ? जान पड़ता है यात्री हैं, क्यों न ?" कुछ लोग पूछने लगे—"क्यों साहब आपका घर कहां है ?"

इस प्रकार के प्रश्नों तथा भीड़ से तनिक भी विचलित न होकर भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़कर क्षितीश ने जो कुछ देखा उससे उसका शरीर रोमांचित हो उठा। मानव-शरीर में इतना सौन्दर्य हो सकता है ? उसने मन-ही-मन कहा। फिर बेहोश युवती की कलाई अपने हाथ में थाम कर उसकी नब्ज देखते हुए गम्भीर होकर कहा, "दिल की कमजोरी के कारण ऐसा हुआ है।"

भीड़ में से कई आदमी उठे, "डॉक्टर हैं...अच्छा हुआ।"

क्षितीश ने भीड़ की ओर देखकर प्रश्न किया—"इनका घर कहां है ?"

उत्तर मिला, "यह तो मालूम नहीं। हम लोग नहीं जानते बाबू।"

क्षितीश ने पूछा, "यहां इनका कोई आत्मीय है ? इनके साथ कोई था ?"

फिर उत्तर मिला, "कहीं कोई भी तो नहीं है।"

क्षितीश ने पूछा, "यह कितनी देर से इस हालत में पड़ी है।"

उत्तर मिला, "यह तो हम नहीं जानते। सड़क पर पड़ी थी। उठा कर बरामदे में लिटा दिया है। हम लोग पुलिस में सूचना देने का विचार कर रहे थे कि इसी समय...?"

एक कोने से किसी ने एक बेहूदा इशारा भी किया।

क्षितीश ने युवती के चेहरे की ओर फिर से देखा। कितना निर्मल चेहरा था ? उस पर बुरी भावना की झलक तक नहीं थी। क्षितीश का मन कहने लगा, जिसका चेहरा इतना सुन्दर और निर्मल है, उसका बांजारू स्त्री होना सर्वथा असम्भव है।

उसने पुकारा, "गणेश !"

गणेश ने आगे बढ़कर कहा "क्या है ?"

क्षितीश ने कहा, "चलो, कार से इन्हें अस्पताल ले चलें। नहीं तो बेचारी की जान भी आ बीतेगी।"

हां या ना, कुछ भी गणेश के मुंह से नहीं निकल सका। वह अवाक् होकर उस रूपराशि की ओर निहार रहा था। अचानक क्षितीश के शब्दों ने उसे चौंका दिया। फिर जल्दी से बोला, "हां, चलो।"

इसके बाद उस विस्मित, स्तंभित, क्षुब्ध जनता के बीच में पद्म-भवन के पद्म-पुष्प के समान उस सौन्दर्यमयी को दोनों मित्र उठाकर कार पर ले गए। क्षितीज ने कार स्टार्ट कर दी।

भीड़ में एक बार शोरगुल फिर होने लगा।

रास्ते भर क्षितीश के मन में एक प्रकार की हलचल मची रही। क्या किया जाए ?

हरिसन रोड के मोड़ पर क्षितीश की गाड़ी जब दाहिने ओर के रास्ते पर मुड़कर सीधी सियालदह की ओर चल पड़ी तो गणेश ने कहा, "यह क्या, केम्बेल अस्पाल चलोगे ? मेडिकल कॉलेज नहीं जाओगे ?"

क्षितीश को कुछ लज्जा-सी अनुभव होने लगी। पहले उसके मुंह से कोई शब्द ही नहीं निकल सका। किसी तरह जबर्दस्ती संकोच के भाव को हटाकर कहा, "किसी भले घर की स्त्री जान पड़ती है भाई...चट से अस्पताल ले जाना और वहां अकेली छोड़ आना क्या उचित होगा ? इससे तो डेरे पर ले चलना ही ठीक होगा। डॉक्टर को बुलाकर दवा और नर्स रखकर देखभाल की व्यवस्था कर दूंगा। इसके बाद कुछ आराम हो जाने पर पता पूछकर इसके घर वालों को सूचना दे दूंगा।"

डेरे पर आकर क्षितीश ने दवा और सेवा की पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी। घर की दूसरी मंजिल पर रोगी के रहने के कारण मित्रों का आना-जाना नीचे की मंजिल तक ही सीमित रह गया।

डॉक्टर ने आकर बताया, "किसी प्रकार के मानसिक आघात के कारण ऐसा हुआ है। यह एकदम बेहोश नहीं है। बीच-बीच में इन्हें होश आ जाता है।"

उस दिन क्षितीश ने नर्स के साथ उक्त युवती के सिरहाने बैठे-बैठे ही सारी रात बिता दी। गणेश का तो रात भर वहां रहना सम्भव नहीं था। क्योंकि प्रेम होने से पहले विवाह होने पर भी उसकी पत्नी जीवित थी। इसके अतिरिक्त विवाह हुए अभी अधिक दिन भी नहीं हुए थे।

युवती के सिरहाने बैठे क्षितीश के मन में अनेक विचार आ-जा रहे थे। उसने अपने मन को कल्पना के बैलून पर चढ़ाकर अपने भविष्य को सीमाहीन आकाश में छोड़ दिया था। उन दोनों मुंदी आंखों की गहराइयों में कौन-सा और क्या असीम रहस्य छिपा हुआ है ? वह रहस्य उसकी आंखों के आगे कब उजागर होगा ?

रात भर कल्पना उसे न जाने कितने चित्र दिखाती रही। उस प्राचीन युग में राजा-महाराजा शिकार खेलने के लिए वन में जाते थे। वहां उन्हें अगर कोई सुन्दर स्त्री मिल जाती थी तो वे अपने घर ले आते थे और उसके साथ विवाह करके उसे अपनी रानी बनाकर अपने पास रखते थे। यह भी ठीक उसी प्रकार की घटना है।

क्षितीश बार-बार पलंग पर पड़ी युवती की ओर आकुल दृष्टि से देखने लगता था।

जब उस युवती ने आंखें खोलीं, उस समय रात के दस बजे होंगे। नर्स ने आकर बेदाना अनार का थोड़ा-सा रस चम्मच से उसके मुंह में डाल दिया। युवती अपनी बड़ी-बड़ी निर्दोष आंखों, अत्यन्त कुंठित और कातर दृष्टि से उस नर्स के चेहरे की ओर देखने लगी।

कुछ देर तक नर्स की ओर एकटक ताकते रहने के बाद उसने नर्स से पूछा, "मैं कहां हूं ?"

नर्स ने उसे अधिक बोलने से रोकते हुए कहा, "आप सुरक्षित स्थान में ही हैं। किसी प्रकार की चिन्ता मत कीजिए।"

युवती ने पूछा, "मेरे माता-पिता कहां हैं ?"

नर्स ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। क्योंकि उस युवती के सम्बन्ध में उसे कुछ विशेष ज्ञान ही नहीं था। उस युवती को रास्ते में से उठाकर वहां लाया गया है और इस घर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह बात नर्स को मालूम नहीं थी।

थोड़ी ही दूर, एक आराम कुर्सी पर लेटा क्षितीश कोई पुस्तक पढ़ रहा था। नर्स ने मुड़कर क्षितीश की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा। क्षितीश उठकर पास आ खड़ा हुआ।

युवती ने पूछा, "यह घर आपका है ?"

क्षितीश ने कहा, "हां।"

युवती—"मेरे माता-पिता कहां गए ?"

क्षितीश—"मुझे मालूम नहीं। पता लगाकर, खोजकर आपको बता दूंगा। आप कोई चिन्ता न करें। बिल्कुल न घबराएं। यहां आपके लिए कोई भय नहीं है।"

युवती चुप होकर लेटी रही।

सामने वाले दरवाजे के पास की खिड़की खुली हुई थी। युवती अपनी अलसाई आंखों से खिड़की के पास दूर तक देखने लगी। सीमाहीन आकाश में छाई हुई धूप सामने वाले मकानों पर पड़ रही थी। उसी सुनहरी धूप की आग में चमकती हुई दो-एक चिड़िया इधर-उधर उड़ रही थीं।

आकाश की ओर ताकती हुई युवती जैसे कुछ सोचने लगी। शायद वह अपनी

स्थिति पर विचार करने लगी थी। उस दिन की बात सोचने लगी, जब वह अपने मां-बाप से बिछुड़ी थी। लेकिन उसे ठीक-ठीक कुछ याद नहीं आ रहा था। जो कुछ याद आ रहा था वह अस्पष्ट, धुंधला था। भारी भीड़ थी। खूब शोर-गुल हो रहा था और तभी सागर की क्रुद्ध लहर की भांति आदमियों की धक्का-मुक्का करती भीड़ उसके ऊपर आ पड़ी थी। उसी के धक्के से छिटक कर वह अपने साथियों से बहुत दूर चली गई थी। माता-पिता का साथ छूट गया था।

भीड़ हट जाने पर उसने आंख उठाकर देखा था। लेकिन एक भी परिचित चेहरा उसे दिखाई नहीं दिया था। भय से उसकी सम्पूर्ण देह कांप उठी थी, सिर जैसे चकराने लगा था। फिर संभलने से पहले ही उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया था।

चिन्ता के अंधेरे सागर पर किनारा न पाकर उसका मन इधर-उधर दूर-दूर तक चक्कर लगाकर बुरी तरह थक गया। फिर थकी हुई आंखें के आगे अंधेरा छा गया था।

चिन्ता के अंधेरे सागर का किनारा न पाकर मन इधर-उधर दूर-दूर तक चक्कर लगाकर बुरी तरह थक गया। फिर थकी हुई आंखें स्वतः ही बन्द हो गयीं।

उस युवती को शारीरिक रूप से स्वस्थ होने में एक सप्ताह लग गया। मनःस्थिति भी सहज हो गई। वह उठकर दूसरी मंजिल पर इधर-उधर थोड़ा-थोड़ा टहलने लगी।

कई दिन से क्षितीश ने अपने मित्रों से मिलना-जुलना लगभग छोड़-सा दिया था। वह रात-दिन दूसरी मंजिल के ही एक कमरे में, जो उस युवती के रहने के कमरे के पास ही था, पड़ा रहा था। कभी-कभी रोगिणी युवती के कमरे में जा बैठता था। जिस प्रकार पुष्प की गन्ध से आसक्त भंवरा उस पुष्प के आस-पास ही चक्कर काटता रहा है, उसी प्रकार उसका आसक्त मन भी उसी कमरे के चारों ओर मंडराता रहता था। पल भर के लिए भी दूसरी मंजिल को छोड़कर कहीं जाने की उसकी इच्छा ही नहीं होती थी।

दोपहर का समय था। वह युवती अपने बिछौने पर लेटी हुई थी तभी क्षितीश ने आकर पूछा, "अब आपकी तबियत अच्छी है न ?"

युवती हड़बड़ा कर एकदम उठ बैठी। फिर बोली, "जी हां, अब तो ठीक हूं।"

क्षितीश ने पूछा, "शरीर में कुछ शक्ति आई जान पड़ती है ?"

युवती ने कहा, "हां, मालूम होता है।"

क्षितीश ने पूछा, "आपका घर कहां है ? घर में कौन-कौन आत्मीय स्वजन हैं ? और रास्ते में उस दिन...।"

इस प्रसंग के छिड़ते ही युवती फूट-फूटकर रोने लगी। चारों ओर दीवारें खड़ी हैं। मार्ग कहां है, उसके लिए अपने घर जाने की राह कहां है ? आठों पहर एक अज्ञात अपरिचित स्थान में बन्दगी की भांति रहते-रहते उसका मन जैसे ऊब उठा था। उसके

अतिरिक्त उसके भविष्य का कुछ निश्चय भी नहीं था...उसकी आंखों से आंसू बह निकले।

क्षितीश ने कहा, "आप रोईए नहीं। अपना पूरा-पूरा परिचय स्पष्ट शब्दों में बता दीजिए। मैं इसी समय वहां समाचार पहुंचाने की व्यवस्था कर दूंगा। आवश्यकता हुई तो मैं स्वयं आपको आपके घर पहुंचा आऊंगा।"

युवती ने अपने सम्बन्ध में सब-कुछ बता दिया...कलकत्ता से थोड़ी ही दूर देहात में उसका घर है। वह चिन्तामणि योग के दिन अपने माता-पिता के साथ गंगा-स्नान करने कलकत्ता आई थी। एक चौराहे पर अत्यधिक भीड़ थी। वहीं पर धक्के खाकर भीड़ के रेले में फंसकर उनके साथ से छूट गई। पहले उसे साथ छूटने का पता ही नहीं था। जब वह बहुत दूर पहुंचकर भीड़ से निकल पाई तब उसने देखा...न तो उसके माता-पिता आगे-पीछे सारे अपरिचित चेहरे ही दिखाई दे रहे थे। कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ। बुरे इशारे भी हो रहे थे। डर के मारे उसका कलेजा कांप उठा। शायद सब साथी पीछे रह गए हैं, और वे इसी रास्ते से आते होंगे...यह सोचकर, उसके बाद उसकी आंखों के आगे घटाटोप अंधेरा छा गया। जैसे समूची पृथ्वी घूमने लगी। उसके बाद उसे कुछ होश नहीं रहा...और फिर जब उसने आंखे खोलीं तो अपने आप को इस घर में पाया। उसे पता नहीं, वह यहां कैसे आई ? कौन उसे यहां लेकर आया ?

क्षितीश ने पूछा, "आपके पिता का नाम क्या है ?"

युवती ने बताया, "श्रीयुत हरनाथ मैत्र।"

युवती ने बताया।

"अच्छा," कहकर क्षितीश वहां से उठकर अपने कमरे में आ गया। टेबल के ऊपर लेटर पैड रखा था। उसने पैड अपनी ओर खिसका लिया और पत्र लिखने लगा।

उसने लिखा...

"मान्यवर !"

फिर काटकर लिखा...

"महाशय।"

लेकिन इतना ही लिखकर वह रुक गया और सोचने लगा—यह मैं क्या कर रहा हूं ? इस पत्र के लिखने का अर्थ है अपने हाथों स्वयं को दुःखी करना। क्या वह अपने ही हाथों से विश्व से समस्त रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श की समस्त अनुभूतियों को दूर कर देना चाहता है ? क्या अपने ही हाथों से अपने आनन्द की ज्योति बुझा देना चाहता है ?...यह सोचते ही उसका हृदय बाण से बिंधे हुए घायल मृग की भांति छटपटाने लगा। नहीं, नहीं, यह पत्र तो उससे लिखा नहीं जाएगा। यह तो अपना मृग बाण स्वयं अपने ही हाथ से दूसरे के हाथ में सौंपने जा रहा है।

वह आकाश-पाताल की न जाने क्या-क्या सोचने लगा। यह युवती उसकी कोई नहीं, इसे किसी दिन पा सकेगा ? उसे अपनी बना सकेगा ? कोई पता नहीं। उसके साथ न किसी प्रकार की कोई बातचीत है न परिचय। अभी तक उसने किसी भी दिन अपने मन की कोई बात उससे नहीं कही। लेकिन फिर भी इस प्रकार केवल आंखों के आगे बने रहने में ही बड़ा सुख है। इस एक ही मकान में दोनों रह तो रहे हैं। वह जब भी चाहे उसे देख सकता है। उससे बातचीत कर सकता है। वह पास ही रहे, उस तक पहुंचा जा सके...यही बहुत है। इसी में बहुत सुख है। इस सुख का क्या त्याग किया जा सकता है ?

लेकिन पत्र नहीं लिखेगा तो क्या करेगा ? किसी परायी, अपरिचित भले घर की जवान लड़की को उसकी इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती, अपने घर में बन्दी बनाकर वह रख भी तो नहीं सकेगा। ऐसा करने का उसे अधिकार ही क्या है ? कानून और समाज की दृष्टि से यह काम बुरा समझा जाएगा, दण्डनीय माना जाएगा।

अच्छा, यदि वह इसके साथ विवाह कर ले तो ? यही ठीक रहेगा। लेकिन वह विवाहित है या कुंवारी, यह तो उससे कुछ पूछा ही नहीं। लगता है, अभी विवाह नहीं हुआ। विवाहिता होती तो उसकी मांग में सिन्दूर की लालिमा तो अवश्य ही दिखाई देती। लेकिन मांग में सिन्दूर तो दिखाई ही नहीं देता।

उसे लगा, तब तो उसकी यह आशा दुराशा नहीं हो सकती। आहा, क्या ऐसा होगा ! क्यों नहीं होगा ? शायद भगवान की यही इच्छा है। नहीं तो कहां वह अपने घर में बैठा था और कहां ठीक समय पर इतनी दूर, अहीरी टोले के उस छोर से, उस अज्ञात गली के भीतर पहुंच गया। इस गली को तो वह जानता भी नहीं था। उसका भाग्य जब उस दिन इस प्रकार अचानक ही उसे उस गली के भीतर ले गया तो क्या उसमें उसका कोई उद्देश्य नहीं था ? कोई अर्थ नहीं था ? था क्यों नहीं ? इसी को तो नियति कहते हैं...यही तो होनी कहलाती है। नियति की गति को, भाग्य के लिखे को, कौन टाल सकता है ? नियति, अदृष्ट या दैव के ऊपर उसे अटूट विश्वास हो गया है। वह सोचने लगा। अगर नियति शक्तिहीन है तो फिर किसने इस प्रकार घटनाचक्र घुमाया ?

आशा की उमंग में उन्मत्त होकर क्षितीश फिर उस युवती के पास पहुंचा। बोला, "देखिए, मैं एक बात सोच रहा था। आपका विवाह हो गया है न ? जैसा कि मेरा अनुमान है, अगर विवाह हो चुका है तो आपकी ससुराल भी कहीं आस-पास ही होगी। क्यों ठीक है न ? तो फिर आपके पति को ही...!"

ए शब्द उसने डरते-डरते कहे। उसे पूरा-पूरा विश्वास था कि इस प्रश्न के उत्तर में वह सुनेगा—"मेरा विवाह नहीं हुआ। इतनी सयानी लड़की से अचानक ही यह प्रश्न

करना कि उसका विवाह हुआ है या नहीं, भले आदमियों जैसी बात नहीं होगी, यह सोचकर ही उसने इस प्रकार घुमा-फिराकर यह प्रश्न किया था। लेकिन इसके उत्तर में जब उसने सुना कि उसका विवाह हो चुका है और उसका पति जीवित है तो उसकी दशा विचित्र-सी हो गई। उसकी कल्पना का बैलून कठोर सत्य के पहाड़ से टकराकर पलभर में ही चूर-चूर हो गया। हाय...! हाय !! उसकी आशा का दीप इस उत्तर की आंधी के एक ही झोंके से बुझ गया।

लेकिन उसने दूसरे ही पल स्वयं को संभालकर कहा, "देखिए, आप कई दिन से मेरे डेरे में हैं। उधर आपका पता न लगने के कारण चारों ओर खोजा जा रहा होगा। यह समाचार सभी लोगों के कानों तक पहुंच चुका होगा। छोटे-से गांव में तो जैसे ढिंढोरा ही पिट गया होगा। ऐसी स्थिति में आपके पिता को पत्र लिखने पर क्या समाज में झगड़ा नहीं उठ खड़ा होगा ? इसकी अपेक्षा मेरे विंचार से तो यह उचित होगा कि स्वयं ही वहां जाकर सारी बात शन्ति पूर्वक बता दीजिए। नहीं तो तरह-तरह की अफवाहें फैल जाएंगी। एक आन्दोलन उठ खड़ा होगा।" वह बस इतना ही कहकर चुप हो गया। फिर दोबारा खांसकर गला साफ करके क्षितीश ने फिर कहना आरम्भ किया, "आप समझीं या नहीं ? इसमें मेरी भी कुछ जिम्मेदारी है या नहीं। इतने दिन बीत गए, कोई समाचार नहीं दिया गया। फिर सहसा आज... अच्छा, कलकत्ते में क्या आपका कोई ऐसा आत्मीय-स्वजन नहीं है, जो...।"

युवती सोच में डूब गई। बहुत देर तक सोचती रही, और क्षितीश उसकी ओर प्यासी-प्यासी नजरों से देखता रहा। यह देखना कितने दिनों के लिए है ? यह रूप राशि उसके जीवन-पथ से शीघ्र ही सदैव के लिए अन्तर्ध्यान हो जाएगी। उसके बाद इससे कभी भेंट होने की, उसे कभी देख पाने की संभावना भी नहीं रह जाएगी।

अचानक युवती ने कहा, "देखिए यहां कलकत्ते में मेरे एक दादा रहते हैं। कॉलेज में पढ़ते हैं वे। अगर पता लगाकर उन्हें यहां ला सकें तो हो सकता है कि...।"

क्षितीश ने धड़कते हुए दिल से पूछा, "क्या नाम है उनका ?"

युवती—"श्री हरेन्द्र नाथ मित्र।"

क्षितीश, "मित्र ? आपके दादा हैं ? वह तो कायस्थ हैं और आप हैं ब्राह्मण ?"

युवती—"वे गांव के नाते मेरे भाई लगते हैं। उनके पिता गांव के जमींदार हैं। हमारे घर के पास ही उनका घर है। कायस्थ होने पर भी वे सगे भाई समान हैं।"

क्षितीश—"किसी कॉलेज में पढ़ते हैं ? कहां रहते हैं ?"

युवती—"सो तो मैं नहीं जानती।"

क्षितीश ने कहा, "अच्छी बात है। मैं अभी उनकी खोज में जाता हूं। जमींदार

का लड़का बताया न ? कॉलेज में पढ़ते हैं ? कॉलेज में ही उनका पता लगेगा। देखता हूं... अच्छी बात है। वह मिल जाएं तो कहूं क्या ? हरनाथ बाबू की लड़की—अच्छा आपका नाम क्या है।"

युवती—"मेरा नाम कमला है।"

क्षितीश उसी समय घर से चल दिया। कमला खिड़की के सामने जाकर खड़ी हुई और सूनी-उदास नजरों से बाहर की ओर ताकती हुई क्षितीश के सम्बन्ध में सोचने लगी—घर में कोई स्त्री नहीं है। लेकिन सारे काम कितने सुव्यवस्थित ढंग से हो रहे हैं। उसे क्षितीश दुर्ज्ञेय-सा प्रतीत होने लगा।

8

कमला का पति सतीश चन्द्र कलकत्ते के एक व्यापारिक संस्थान के कार्यालय में क्लर्क है। उनकी आर्थिक स्थिति कुछ ठीक नहीं है। वेतन भी कम ही मिलता है। इसीलिए वह बेचारा विवाह करने के लिए तैयार नहीं था। लेकिन सतीश की मां दुर्गा ने हठ ठान ली कि विवाह एक ऐसा आवश्यक काम है कि जो लोग भूखों मरते हैं, वे भी इस देश में वंश चलाने के उद्देश्य से एक विवाह तो अवश्य ही करते हैं। फिर सतीश तो भगवान की कृपा से चालीस-पचास रुपए महीने भर में पैदा कर ही लेता है। फिर वह विवाह क्यों नहीं करेगा ? विवाह नहीं करूंगा, भला यह भी कोई बात है ? सभी के लड़के जब विवाह करते हैं तो सतीश क्यों नहीं करेगा ? उसके पितृकुल में तो कोई कुंवारा ही नहीं रहा। जिसके बाप-दादा बिना किसी आपत्ति के सदा के विवाह करते चले आ रहे हैं—यहां तक कि कोई-कोई तो एक से अधिक विवाह करने से भी पीछे नहीं हटा, उन्हीं का वंशज होकर वह अविवाहित कैसे रहना चाहता है ? उसमें ऐसी दुर्बुद्धि कैसे पैदा हुई ? सतीश अगर विवाह नहीं करेगा तो दुर्गा देवी के देहान्त के बाद पुरखों के घर में संध्या-दीप कौन जलाएगा ? जगदीशपुर गांव के इतने प्राचीन रायवंश का नाम क्या कुलांगार सतीश के कारण पृथ्वी पर से उठ जाएगा ?

सतीश हंसकर कहता, देखो मां, कौरवों और पांडवों का इतना बड़ा वंश भी आज पृथ्वी पर से उंठ गया है। स्वयं भगवान कृष्ण भी यदुंवश की विनाश से रक्षा नहीं कर सके। इसलिए यदि सामान्य-सा राय-वंश पृथ्वी पर से उठ ही जाए तो उसमें कोई विशेष हानि नहीं होगी।

दुर्गा डांटकर कहती, "चुप रह लड़के। तेरी ये मूर्खतापूर्ण बातें मैं सुनना नहीं चाहती। तेरा विवाह मैं अवश्य करूंगी। तू बड़ा निर्लज्ज है। इसलिए अपने विवाह के

सम्बन्ध में इस प्रकार का हठ कर रखी है। आज तेरे पिता जीवित होते, तो क्या उनके मुंह पर इस तरह की बातें कह पाता ? ऐसी उलटी बातें कर सकता ?"

सतीश गर्दन झुकाकर कहता, "नहीं, मां, शायद उनके सामने प्रतिवाद न कर पाता। लेकिन करना ही उचित था। जो विवाह करेगा, जिसका विवाह होगा, उत्तरदायित्व तो सारा उसी का है। इस भार को उठाने की, इस उत्तरदायित्व को पूरा करने की शक्ति भी तो उसमें होनी चाहिए मां।"

दुर्गा कहती—"तेरी बातें भी अनोखी ही होती हैं, विवाह करने में उत्तरदायित्व काहे का है ? तू रहने दे बस। विवाह करके भी भला कोई दुःखी होता है ? देख लेना, मैं तेरे लिए ऐसी बहू लाऊंगी जैसी अनेको राजा-महाराजा के महलों में भी देखने को नहीं मिलेगी।"

इस पर सतीश हंसकर कहता, "मां, तुम्हारे किरानी बेटे को न तो कोई अपना आधा राज्य देगा और न कोई एक राज-कन्या ही देगा।"

इतना कहकर सतीश हंस पड़ता और आठ बजे वाली लोकल ट्रेन पकड़ने के लिए गांव के अन्य दैनिक यात्रियों के साथ स्टेशन की ओर दौड़ने लगता नहीं तो दस बजे अपने ऑफिस में उपस्थित नहीं हो पाएगा।

९

इसी प्रकार बहुत दिनों तक अपने बेटे के साथ निरन्तर बहस करते रहने के बाद दुर्गा ने पास ही एक गांव में हरनाथ मैत्र की अपूर्व सुन्दर कन्या कमला के साथ सतीश के विवाह की बात पक्की कर दी। तब सतीश को विवाह करने के लिए राजी होना पड़ा।

इसका एक कारण था। एक दिन सतीश लगान के रुपए जमा करने के लिए योगेन्द्र मित्र की कचहरी में गया था तो उसने जमींदार बाबू तालाब के पक्के घाट पर युवावस्था में पदार्पण कर रही एक किशोर सुन्दरी को देखा था। उसकी विकासोन्मुख लावण्य श्री ने उस दिन विवाह से विमुख युवक सतीश के हृदय पर न जाने कौन-सी जादू की छड़ी फेर दी थी, बात को केवल वही अच्छी तरह जानता था। विधवा मां के हठपूर्ण अनुरोध को न टाल सकने के बहाने सतीश एक बार के कहने से ही कमला के साथ विवाह करने के लिए राजी हो गया। गांव भर के लोग इस बात को सुनकर सतीश की इस अद्भुत मातृभक्ति की प्रसंशा करने लगे। कमला के मिल जाने पर सतीश को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह अपने दुर्भाग्य-दलित दरिद्र जीवन को धन्य समझने लगा। इसके साथ ही लोगों की प्रशंसा भी मुफ्त में हाथ लग गई।

विवाह के बाद कई वर्ष तो उसके अत्यन्त सुख से व्यतीत हुए। उसके जीवन में जैसे किसी ने स्वर्ग के समस्त सुख भर दिए। कमला के कमल के समान चरण पड़ने से जगदीशपुर का चिर-परिचत घर सतीश की दृष्टि में इन्द्र का नन्दन बन गया। सतीश की मां दुर्गा देवी को भी सुलक्षणा बहू पाकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। लगा, जैसे स्वर्ग ही उनके हाथ लग गया हो। जब उन्होंने देखा कि कमला ने उनके सर्वस्व और आंख की पुतली के समान प्रिय पुत्र के जीवन को सुख से भर दिया है तो कमला के प्रति उनका अनुराग और स्नेह अधिक बढ़ गया। सास को बहू का आदर-सत्कार किस प्रकार करना चाहिए, इसके उदाहरण में जगदीशपुर की रहने वाली सासुओं की सताई हुई बहुएं, सतीश की मां दुर्गा देवी का उल्लेख करने लगी थीं।

किन्तु दुर्भाग्य से दुर्गा देवी अपने इस सुयश को बहुत दिनों तक नहीं बनाए रख सकीं। कई वर्ष बीत जाने के बाद भी जब कमला उनकी गोद में सोने का चन्दा अर्थात् बालक उपहार स्वरूप न दे सकी तो दुर्गा देवी धीरे-धीरे बहू के बांझ होने की सम्भावना से निराश होने लगीं। कई प्रकार की दवाओं और दुआओं आदि का प्रयोग करके, ताबीज-गन्डे आदि पहनाकर, मनौतियां मान कर, जागृत कला वाले देवी-देवताओं के मन्दिरों में धरना देकर भी दुर्गा देवी की मनोकामना पूरी नहीं हुई, तब राय-वंश के भविष्य के उत्तराधिकारी के लिए अधीर होकर अपने पुत्र का दूसरा विवाह करने विचार करने लगी। लेकिन वे अभी विचार कर ही रही थीं कि उसी समय सतीश को पश्चिम में अच्छे वेतन की नौकरी मिल गई और वह दूर विदेश चला गया।

वहां पहुंचने के दस-पन्द्रह दिन के बाद ही सतीश अचानक बीमार पड़ गया। बेटे की बीमारी का अर्जेंट तार पाते ही दुर्गा देवी ऐसी घबराईं कि झटपट बहू को उसके मायके भेजकर स्वयं गांव के एक दूर के रिश्तेदार को साथ लेकर बेटे के पास पहुंच गईं।

उस समय सतीश की तबियत सुधर गई थी। उसे अपने ऑफिस के पास ही सपरिवार रहने के लिए एक क्वार्टर मिल गया था। दुर्गा देवी को वह छोटा-सा नए ढंग का साफ-सुथरा, हवादार नया घर और वह स्थान इतना अच्छा लगा कि सतीश के रोगमुक्त हो जाने के बाद भी गांव लौट जाने की उनकी इच्छा नहीं हुई। साथ आए दूर के रिश्तेदार को विदा करके दुर्गा देवी वहीं रहने और सतीश से बार-बार आग्रह करने लगीं कि वह बहू को विदा कराकर यहीं ले आए। सतीश ने वायदा कर लिया कि बड़े दिन की छुट्टियों में जाकर वह अपनी पत्नी को अवश्य ही विदा करा लाएगा। सतीश के इस वायदे को सुनकर दुर्गा देवी चिन्ता मुक्त हो गईं।

इस विदेश में अकेले रहना सतीश को भी अच्छा नहीं लगता था। कमला को छोड़कर इतनी दूर यहां आकर रहने के कारण वह हर समय दुःखी ही रहता था। सुन्दर

प्रवास में अपने अत्यधिक घनिष्ठ और आत्मीय प्रिय पात्र को न देखकर सतीश की बेचैनी निरन्तर बढ़ती चली जा रही थी। कमला को न देख पाने की व्यथा और उसके विरह की असह्य निरन्तर बढ़ती चली जा रही थी। कमला को न देख पाने की व्यथा और उसके विरह की असह्य वेदना ने उसे अत्यन्त व्याकुल कर रखा था। उस पर तुर्रा यह कि हर दूसरे दिन कमला के हाथ की लिखी चिट्ठी जो इस संगी-साथी हीन, बन्धु-बान्धव रहित दूर देश में उसके लिए एकमात्र सहारा और सान्त्वना होती थी...आज दो सप्ताह बीत जाने पर एक भी नहीं मिली थी।

उसे कमला का जो अन्तिम पत्र मिला था, उसमें उसने लिखा था कि वह अपने घर वालों के साथ चूड़ामणि योग में गंगा स्नान करने कलकत्ते जा रही है। इसलिए चार-पांच दिन तक सतीश उसे पत्र न लिखे। कलकत्ता से लौटने के बाद वह स्वयं उसे पत्र लिखेगी, तब वह उसे पत्र लिखे। सतीश बड़ी उत्सुकता से पत्र की बाट जोह रहा था। चार-पांच दिन के स्थान पर जब दो सप्ताह बीत गए और तब भी कमला का कोई समाचार नहीं मिला तो सतीश घबड़ाने लगा। पहले तो उसे कमला पर बड़ा क्रोध आया कि उसने पत्र क्यों नहीं लिखा ? दूसरे-तीसरे दिन न सही, क्या पन्द्रह दिनों में भी उसे पत्र लिखने की फुर्सत नहीं हुई ? यदि वह अभी तक लौटकर गांव में नहीं आई तो क्या कलकत्ता से पत्र नहीं लिखा जा सकता ? यह तो अच्छी तरह मालूम ही है कि उसका पत्र मिलने में थोड़ी-सी भी देर हो जाने पर मुझे कैसी कितनी बेचैनी होती है। फिर भी उसे यह ख्याल नहीं आया कि मेरे लिए पत्र लिखना कितना आवश्यक है ? अच्छी बात है, देखा जाएगा। देखता हूं, वह कब तक पत्र न लिखकर चुप रह सकती है। मैं भी अब उसे अपनी ओर से पत्र नहीं लिखूंगा।

लेकिन सतीश इस प्रतिज्ञा की रक्षा न कर सका। देखते-देखते इसी प्रकार और दो सप्ताह व्यवीत हो गए तो सतीश कमला के सम्बन्ध में चिन्तित हो उठा। ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता। जो व्यक्ति प्रतिदिन ही पत्र लिखता था, वह आज एक महीने से अचानक ही अकारण इस प्रकार चुप्पी साधकर कैसे बैठा रह सकता है ? निश्चय ही कमला बीमार पड़ गई है।

यह सब सोचकर सतीश से नहीं रहा गया। उनका सारा क्रोध हवा हो गया। उसने उसी दिन कमला को पत्र लिखकर लेटर बॉक्स में डाल दिया।

लेकिन पत्र का उत्तर नहीं मिला तो वह भय से व्याकुल हो उठा। बात क्या है ? हुआ क्या है ? आज एक महीना होने को आ गया, उन लोगों का भला-बुरा कोई भी समाचार नहीं मिला।

उस दिन सतीश हुआ यह सोच ही रहा था कि ससुर के नाम पर पत्र लिखूं या नहीं, उसी समय उस दिन की डाक से सतीश के नाम एक पत्र आ गया। पत्रकी

लिखावट अपरिचित थी लेकिन लिफाफे पर सतीश के ससुराल के गांव के पोस्ट ऑफिस की ही मुहर थी। सतीश ने घबराकर लिफाफार फाड़ा और पत्र कर पढ़ने लगा।

प्रिय महाशय !

अत्यन्त दुःख के साथ निवेदन कर रहा हूं कि आपकी धर्म पत्नी कमला देवी हमारे गांव के जमींदार के बेटे श्रीमान हरेन्द्रनाथ मित्र के साथ गत चूड़ामणि योग के अवसर पर कलकत्ता से गायब हो गई हैं। जहां तक मुझे मालूम हुआ है, आपके ससुर जी ने यह दुःखद समाचार आपसे छिपा रखा है। लेकिन श्रीमती कमला देवी आपकी विवाहित पत्नी हैं और न्याय तथा धर्म से उस पर आपका ही पूर्ण अधिकार है, इसलिए बुरा समाचार होने पर भी सबसे पहले यह समाचार आपको मालूम होना चाहिए। यही सोचकर इस पत्र के द्वारा यह समाचार आप को दे रहा हूं। आप जो भी उचित और आवश्यक कार्यवाही समझें, कीजिए। इति।

पत्र के अन्त में किसी का नाम नहीं लिखा था। पत्र पढ़कर सतीश के सिर में चक्कर आ गया। आंखों के आगे अंधेरा छा गया। जैसे किसी ने उसके कलेजे को जबर्दस्ती दहकते हुए गर्म लोहे से दाग दिया हो। जैसे किसी ने उसके हृदय में भाला भोंक दिया हो। दोनों हाथों में अपना सिर थामकर, टेबल पर दोनों कुहनियां टिकाकर सतीश बहुत देर तक सामने खुले पड़े उस भयानक पत्र की ओर पागल के समान उद्भ्रान्त तथा सूनी दृष्टि से ताकता रहा।

दुर्गा देवी सतीश से रोजाना कोई समधियाने का समाचार पूछा करती थीं। इधर लगभग एक महीने से बहू का कोई समाचार न मिलने के कारण वह भी कुछ घबराने लगी थीं। रोजना जब पोस्टमैन उस ओर से डाक बांटता हुआ चला जाता था तब दुर्गा सतीश के आकर उससे पूछा करती थीं—"सतीश, क्या आज कोई समाचार मिला ?" सतीश चिन्तित मुद्रा में सिर हिलाकर नहीं, कह देता था।

लेकिन आज दुर्गा देवी ने डाक बांटते समय डाकिए को पुकारकर पत्र दे जाते हुए देख लिया था। इसलिए उत्सुकता से दौड़ती हुई समाचार जानने के लिए अपने बेटे के पास आ गईं ? उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह पत्र उनकी बहू का है।

वह जब सतीश के कमरे में पहुंचीं उस समय तक सतीश संभल नहीं पाया था। वह कुर्सी पर बैठा था। उसका समूचा बदन कांप रहा था। उसका रक्तहीन चेहरा किसी मुर्दे जैसा दिखाई दे रहा था।

बेटे की यह हालत देखती ही दुर्गा देवी का हृदय आशंका से कांप उठा। समाचार शुभ नहीं है, यह समझने में उन्हें तनिक भी देर नहीं लगी। लेकिन वह समाचार क्या

है, यह जानने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा। तो क्या उनकी बहू अब इस लोक में नहीं है ? या वह बहुत बीमार है, और उनके बचने की कोई आशा नहीं है ?

दुर्गा देवी ने व्याकुल होकर पूछा, "क्यों सतीश, क्या बात है ? तू इतना विकल और विह्वल क्यों हो रहा है ? तेरी तबियत क्या कुछ खराब है ? यह किसकी चिट्ठी आई है ? बहू के मायके से कोई अशुभ समाचार तो नहीं आया है ?"

सतीश के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह उसी तरह सूनी-सूनी नजरों से मां के मुंह की ओर ताकता रहा।

उसका शरीर पसीने से जैसे नहा गया था। दुर्गा देवी ने जल्दी से पास जाकर आंचल से बेटे का मुंह पोंछा और पंखे से हवा करते-करते फिर पूछा, "अरे क्या हुआ है ? बोलता क्यों नहीं भैया ? इस तरह चुपचाप तू मेरी ओर क्या ताक रहा है ?"

सतीश ने धीरे से टेबल के ऊपर से वह चिट्ठी उठाकर मां के हाथ में दे दी। दुर्गा देवी ने पत्र को दो-एक बार उलट-पलट कर देखने के बाद बेटे को वापस करके कहा, "मैं क्या लिखना पढ़ना जानती हूं भैया, जो तूने चिट्ठी उठाकर मुझे दे दी ? मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस के बराबर है। तू ही एक बार इसे पढ़कर सुना दे मुझे। समाचार जानने के लिए मेरा मन बहुत ही व्याकुल हो रहा है।"

सतीश ने अत्यन्त व्यथित और रुंधे स्वर में धीरे-धीरे संक्षेप में सारी बातें मां को बता दीं।

दुर्गा ने पलभर सोचने के बाद कहा, "बेटा मुझे तो विश्वास नहीं होता यह निश्चय ही किसी बैरी की कारस्तानी है। मेरी ऐसी लक्ष्मी जैसी बहू—सती सावित्री बहू कभी ऐसा कुकर्म नहीं कर सकती। तू अभी एक पत्र लिखकर समधी जी को डाल दे। इस बात का अच्छी तरह पता लगा। बिना नाम की चिट्ठी पढ़कर इस तरह अपने आप को दुःखी मत कर।"

मां की बात सतीश को भी जंच गई। उसने उसी समय जाकर ससुर के नाम टेलीग्राम भेज दिया।

10

क्षितीश हरेन्द्र का पता लगाने निकला तो बहुत देर तक नहीं लौटा। कमला अत्यधिक व्यग्र उसकी राह देखने लगी। अनेक दुश्चिन्ताएं आज उसके कमजोर तन और दुर्बल मन को पीड़ा पहुंचाने लगीं। अनेक अशुभ अमंगल भावनाओं ने उसके मस्तिष्क को बुरी तरह आक्रान्त कर लिया। यदि यह बाबू हरेन्द्र का पता न लगा सके तो फिर क्या होगा ? वह किस प्रकार अपने घर जाएगी ? उसे वहां कौन अपने साथ

ले जाएगा ? पिता और मां आदि आत्मीय स्वजन उसके सम्बन्ध में न जाने कितने चिन्तित होंगे ? चारों ओर उसकी खोज हो रही होगी।

फिर सहसा मन-ही-मन हिसाब लगाकर बेचारी कमला चौंक पड़ी। ओह ! इस घर में आए हुए उसे आज पूरा एक सप्ताह बीत गया। आठ दिन से वह एक अज्ञात, अपरिचित पर-पुरुष के आश्रय में पड़ी हुई है। छी ! छी ! कैसी लज्जा की बात है ? कैसी घृणा की बात है ? गांव के लोग यह बात सुनेंगे तो क्या कहेंगे ? वह एक प्रतिष्ठित परिवार की पुत्री और वधू है। गृहस्थ-घर की स्त्री है। वह इतने दिन से कलकत्ता में एक अपरिचित जवान आदमी के घर में रह रही है।

अपनी इस असहाय अवस्था के कुत्सित, घृणित तथा निन्दनीय पक्ष पर विचार करके कमला कांप उठी। उसके नाम के साथ कलंक, एक अपयश पलभर में ही अनायास जोड़ा जा सकता है। इस आशंका से वह भयभीत हो उठी। दुविधा, दुर्भावना और दुश्चिन्ताएं से ही के कांटों के समान उसके हृदय में चुभने लगीं। लज्जा और धिक्कार की चोटों से उसका हृदय जर्जर हो उठा। नहीं, नहीं, अब वह और एक दिन भी इस घर में नहीं रहेगी। हरेन्द्र दादा का पता लग जाए तो वह आज ही उनके साथ गांव को लौट जाएगी। लेकिन यदि हरेन्द्र का पता नहीं लगा तो क्या होगा ? तब वह क्या करेगी ?

जिस प्रकार तैरना न जानने वाला व्यक्ति अथाह जल में गिर पड़ने पर गोता खाकर डूबने लगता है वही दशा कमला की हुई।

जिस समय कमला की यह दशा हो रही थी, कि उसे विपत्ति के इस महासागर से निकलने का कोई उपाय सुझाई नहीं दे रहा था, उसी समय क्षितीश ने उसके कमरे में प्रवेश किया।

उसने कमला को पुकार कर कहा, "देखिए, आज तो हरेन्द्र बाबू का कहीं पता नहीं लगा, लेकिन मुझे आशा है कि कल या परसों मैं उन्हें अवश्य ही खोज निकालूंगा। आज जगदीश को, गणेश को और अपने सभी मित्रों को खबर दे आया हूं। कल से वे सभी लोग हरेन्द्र बाबू की खोज करेंगे। जिस तरह भी हो, हम हरेन्द्र बाबू का पता लगाकर ही छोड़ेंगे। अगर आप यह बता पातीं वे किस कॉलेज में पढ़ते हैं तो शायद मैं आज ही उन्हें खोजकर यहां ले आता।

कमला ने निराशा भरे स्वर में कहा, "सुनो तो मुझे ठीक-ठाक मालूम नहीं। हां, हरेन्द्र बाबू के मुंह से इतना अवश्य सुना था कि वे कलकत्ते के किसी सरकारी कॉलेज में पढ़ते हैं। और वह कॉलेज इस शहर का सबसे बढ़िया कॉलेज है।"

क्षितीश ने कहा, "ओह, अब समझ गया। यदि आपने यह बात पहले ही बता दी होती तो आज मुझे कलकत्ता के आधे मेसों में जाकर परेशान न होना पड़ता। मेरी मेहनत भी बच जाती और आपका काम भी बन गया होता। आप जिस कॉलेज के

बारे में कह रही हैं, मैं भी तो उसी कॉलेज में पढ़ता हूं। कल कॉलेज जाते ही उनको खोज लूंगा। हां, वे किसी क्लास में पढ़ते हैं, आप यह जानती हैं ?"

कमला ने सिर हिलाकर कहा, "यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानती। केवल इतना जानती हूं कि वे पहले क्लास की पढ़ाई समाप्त कर चुके हैं।"

क्षितीश—"तो यह कहो कि वे भी शायद बी. ए. में पढ़ते हैं।"

कमला ने दृढ़ता भरे स्वर में कहा, "हां, हां आपने ठीक कहा। हरेन्द्र दादा बी. ए. में ही पढ़ते हैं।"

क्षितीश ने कहा—"बस तो फिर आप निश्चिन्त रहिए। मैं निश्चय ही कल आपके हरेन्द्र दादा को साथ ले आऊंगा।"

कमला के सिर झुकाकर आंचल का छोर उंगली में लपेटते-लपेटते कहा—"मेरे लिए आप बहुत कष्ट उठा रहे हैं। आपके इस ऋण को मैं जीवन में कभी नहीं चुका पाऊंगी।"

कमला के इन शब्दों ने क्षितिश के हृदय को जैसे परम सार्थकता की तृप्ति से भर दिया। उसका युवा जीवन जैसे आज धन्य और सफल हो गया।

अत्यधिक हर्ष भरे उमंगे स्वर में बोला, "नहीं, नहीं, यह भी भला कोई कष्ट है। ऐसी दशा में तो सभी सहायता करते। बल्कि मैं तो इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूं कि सबसे पहले मैं ही आपके कुछ काम आ सका। आपकी कुछ भलाई कर सका। अब तो मुझे यही धुन है कि न जाने कितना कष्ट हो रहा होगा। मेरे घर में न तो कोई स्त्री है, न कोई लड़का-लड़की। सारे काम और देखभाल नौकरों पर निर्भर है। इसलिए आपको बड़ी असुविधाएं हो रही होंगी। आपकी आवभगत या आदर-सत्कार करने वाला कोई भी तो नहीं है यहां।"

कमला ने धीरे-धीरे कहा, "मैंने अपने जीवन में इससे बढ़कर आदर-सत्कार और कहीं नहीं पाया। आप अकारण ही चिन्ता कर रहे हैं।"

क्षितीश के हृदय में अचानक ही अमृत की धारा विद्युत वेग से बहने लगी। किसी आवेग की प्रबल, लहर के हिलकोरे के समान उसके सर्वांग में दौड़ गयी। समूचा शरीर रोमांचित हो उठा। पलभर के लिए क्षितीश यह भूल गया कि कमला का विवाह हो चुका है और उसका पति भी जीवित है। इस असाधारण रूपमयी युवती को सड़क पर से उठा लाने के बाद से क्षितीश ने अपने युवा हृदय पटल पर, जीवन के चित्र पट पर, कल्पना की तूलिका से, अपने मन की विचित्र भावनाओं के मधुरिमा के गहरे रंग से जो चित्र अंकित करने आरम्भ किए थे, वे अचानक ही जैसे इस समय सजीव और साकार होकर उसकी आंखों के सामने किसी चलचित्र के समान आते चले गए।

उसी समय कमला ने आंसुओं से रुंधे स्वर में कहा, "आपका यह उपकार मैं जीवन भर नहीं भूल सकूंगी।"

क्षितीश की युवा देह में बहता हुआ यौवन का तरह रक्त-स्रोत सहजा जैसे चंचल हो उठा। उसने जल्दी से कहा, "लगता है मैं भी इस जीवन में आपको कभी नहीं भूल पाऊंगा।"

लेकिन इस शब्दों के मुंह से निकलते ही एक भीषण लज्जा से उसके दोनों कानों की जड़ों तक उसका चेहरा रक्तिम हो उठा। कमला के कृतज्ञता प्रकट करने के उत्तर में उसका यह कह उठना वास्तव में सर्वथा असंगत और असहनीय दिखाई दिया और यह बात उसने स्वयं ही स्पष्ट अनुभव की। इसीलिए वह आगे और कुछ नहीं कह सका। अपराधी की भांति अप्रतिम भाव से सिर झुकाए खड़ा रहा।

तभी दीवार पर लगे क्लॉक ने टन-टन करके रात के दस बजाए।

कमला ने कहा, "बातों-बातों में इतनी अधिक रात बीत गई। आपने भोजन नहीं किया। जाइए, कपड़े बदलकर मुंह-हाथ धोकर भोजन कर लीजिए।"

क्षितीश की जान बच गई। जल्दी से कमरे से निकला और नीचे उतर गया।

कुछ देर बाद ही कमला ने ऊपर से सुना, नीचे जाकर क्षितीश अपने नौकर, नौकरानी, रसोई बनाने वाले ब्राह्मण आदि सबको बुलाकर कठोर आदेश जारी कर रहा है—खबरदार, माई जी को खाने-पीने और सोने आदि की तनिक भी तकलीफ न होने पाए। तुम सब लोग सावधान रहना। वह जिस समय जो भी आज्ञा दें, तत्काल उसका पालन करना। उनकी तबियत ठीक नहीं है। यह ध्यान रखना... आदि-आदि।

क्षितीश आज जल्दी ही खा-पीकर दस बजते ही कॉलेज चला गया। जाते समय उसने महरी को कमला के पास भेजकर कहलवा दिया कि कॉलेज से लौटते वह निश्चित रूप से हरेन्द्र को साथ लेकर आएगा। कमला ने दोपहर भर उन दोनों की प्रतीक्षा की। सड़क की ओर वाली खिड़की के पास बैठकर सारी दोपहरी बिता दी।

11

फिर एक-एक करके जब चार बज गए तो कमला बहुत बैचेन हो उठी। आज इतनी देर क्यों हो रही है ? और दिन तो क्षितीश दो-तीन बजे तक लौट आता था। तो क्या हरेन्द्र दादा से भेंट नहीं हुई ? हरेन्द्र दादा आज कॉलेज नहीं गए ? ऐसा भी तो हो सकता है कि किसी कारण से गांव चले गए हों। अगर ऐसा ही हुआ, और हरेन्द्र दादा कलकत्ते में न हुए तो...?

कमला खिड़की की खड़खड़ी उठाकर एकटक सड़क की ओर देख रही थी। उस समय उसकी ठीक वैसी ही दशा थी जैसी दशा पिंजड़े में कैद चिड़िया की होती है। धीरे-धीरे शाम हो चली थी। सड़क के दोनों ओर लगे गैस लैम्प एकदम जल उठे। तभी महरी ने आकर पूछा, "मां जी, क्या आज उठकर हाथ-मुंह नहीं धोओगी ? जलपान भी नहीं करोगी ? सांझ हो गई।"

कमला ने हल्की-सी उदासी भरे स्वर में कहा, "नहीं महरी, आज जलपान नहीं करूंगी। कुछ भी खाने की इच्छा नहीं हो रही। तबियत अच्छी नहीं दिखाई दे रही।"

महरी ने कहा, "अच्छा तो आइए, आपके बाल बांध दूं। इतने सुन्दर, लम्बे बालों की तुमने क्या दशा बना रखी है मां जी ? कभी कंघी लगाती ही नहीं हो।"

कमला ने वैसे ही अनमने भाव से कहा, "तुम्हारा जो जी चाहे करो।"

सहसा अपना माथा देखते ही कमला कह उठी, "अरे महरी, सिन्दूर है ?"

महरी ने हंसते-हंसते कहा, "यह लो मां जी। तुम्हारे लिए मैं पहले ही बाजार से सिन्दूर ले आई थी।"

इतना कहकर महरी ने आंचल से खोलकर सिन्दूर की एक डिबिया निकाली और कमला के सामने रख दी। जब कमला ने उसमें से सिन्दूर लेकर अपनी मांग में भरा और माथे पर बिंदिया लगाई तो उसका हृदय अपने सर्वाधिक आत्मीय की चिन्ता से व्याकुल हो उठा।

महरी चली गई।

कमला बैठी-बैठी सोचने लगी—यह भावना उसके हृदय की गोपनीय चिन्ता थी। इसे वह किसी के आगे प्रकट नहीं कर सकती थी। लेकिन यह चिन्ता उसके अन्तर में आठों पहर बनी रहती थी। उसे लज्जा दबाए रहती थी। इस अपरिचित घर में उसकी ऐसी कोई साथिन नहीं थी जिसके सामने यह चिन्ता अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गई। आज उसका हृदय अपने पति को पत्र लिखने के लिए बहुत ही व्याकुल हो उठा। कितने ही दिनों से उसने अपने पति को पत्र नहीं लिखा। यह विचार उसके मन में पहले भी आया था। लेकिन यहां पत्र के ऊपर अंग्रेजी में उसके पति का पता कौन लिखता यह काम उसका छोटा भाई अरुण कर दिया करता था। लेकिन यहां क्षितीश से पति का पता लिखवाने में उसे बहुत लज्जा लगती थी। संकोच लगता था। यदि क्षितीश पूछ बैठे कि यह पत्र किसको लिखा है तो ? फिर क्षितीश को पति का नाम कैसे बताती ? लेकिन अब तो बहुत दिन हो गए, अब लज्जा करने से काम नहीं चलेगा।

बेचैन होकर कमला कमरे में चारों ओर लिखने का सामान खोजने लगी। लेकिन उसे कहीं भी कलम, दवात, पेंसिल और कागज दिखाई नहीं दिया। कमला की बीमारी

के समय नर्स ने आकर क्षितीश की मेज, कुर्सी पुस्तकों की अलमारी, कमलदान, पैड आदि सारी चीजे इस कमरे से हटवा दी थीं।

कमला को याद आया, क्षितीश बाबू पास वाले कमरे में रहते हैं। वहां पढ़ते-लिखते होंगे। अवश्य ही वहां सारी चीजें रखी होंगी।

पास वाले कमरे में पहुंचकर कमला ने देखा, सामने ही क्षितीश का बहुत बड़ा सेक्रेटेरियल टेबल है। उसके ऊपर मोटे शीशे की दवात और कलमें रखी हुई हैं। एक ओर बड़ा-सा राइटिंग पैड भी था।

कमला ने पैड में से एक कागज निकाला और पति को पत्र लिखते-लिखते कमला ने देखा—टेबल पर बिछे पैड के ब्लाटिंग के ऊपर काली पैंसिल से कमला के पिता हरनाथ मैत्र का नाम और पता बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है। उसके आस-पास चारों ओर उसका अपना नाम भी अनेक तरह-तरह के अक्षरों में लिखा गया है।

सतीश को पत्र लिखते-लिखते कमला सोचने लगी कि उनको इतनी दूर से बुलाने की क्या आवश्यकता है ? इससे तो यही उचित होगा कि पत्र लिखकर पिताजी को यहां बुला लिया जाए। यही अच्छा होगा। हमारा गांव तो कलकत्ता से अधिक दूर नहीं है। पत्र पाकर एक-दो दिन के भीतर ही पिताजी आकर मुझे लिवा ले जाएंगे। लेकिन पश्चिम में इतनी दूर उनके पास पत्र पहुंचने में और छुट्टी लेकर आने में एक सप्ताह से कम समय नहीं लगेगा। मैं इतने दिनो तक तो यहां नहीं रह सकूंगी।

यह सब सोचकर कमला अपने पिता को पत्र लिखने लगी।

आधे से अधिक चिट्ठी लिख चुकी थी कि किस तरह क्षितीश बाबू नाम के एक अपरचित भले आदमी ने उसे बेहोशी की दशा में उठाकर कार में डाला और अपने घर लाकर, वहीं रखकर उसका इलाज कराया। यह सारी बातें वह लिख चुकी थी—तभी क्षितीश की उस दिन की बातें उसे याद आ गईं।

क्षितीश ने कहा था, कमला इतने दिनों तक घर नहीं लौटी इसे निश्चय ही गांव में एक बवंडर उठ खड़ा हुआ होगा। सबको यह बात मालूम हो गई होगी। ऐसी स्थिति में उसके पिता को पत्र लिखने से एक दूसरी विपत्ति उठकर खड़ी हो सकती है। इससे तो यही अच्छा होगा कि कमला स्वयं वहां जाकर उन्हें सारी बातें समझाकर बताए। इसके बाद केवल "यही तो" कहकर क्षितीश ने जिस बात की ओर संकेत किया था उसे सोचते ही कमला की कलम रुक गई।

बेचारी गाल पर हाथ रखकर फिर सोच में डूब गई।

तभी किसी ने पीछे से चुपके-चुपके आकर हाथ बढ़ाया और उसके सामने पड़ी अधलिखी चिट्ठी पलट दी। कमला चौंक पड़ी। उसने मुंह फेरफर देखा—उसका

बचपन का वही उपद्रवी हरेन्द्र दादा खड़ा हुआ है। उसके चेहरे और आंखों में वही चिर-परिचित शरारत भरी हंसी की झलक इस समय भी दिखाई दे रही थी।

कमला ने हंसकर कहा, "ओह ! अब जान-में-जान आई है हरेन्द्र दादा। तुम्हारे आ जाने से मेरी चिन्ता कम हो गई। तुमने सारी घटना सुन ही ली होगी। बड़े संकट में पड़ गई हूं।"

हरेन्द्र ने जैसे कमला की बात सुनी ही नहीं। उस समय वह ऐसा भाव प्रदर्शित कर रहा था जैसे तन्मयता से वह कमला की लिखी हुई उस अधूरी चिट्ठी को पढ़ रहा हो।

कमला ने कहा, "यह (क्षितीश) कह गए थे कि कॉलेज से तुम्हें पकड़कर लाएंगे। फिर तुम्हें यहां आने में इतनी देर कैसे हुई ? मैं दिन भर तुम्हारी राह देखती रही। इतना समय बड़ी कठिनाई से कट पाया है। वह कहां गए ? तुम्हारा पता कैसे लगा ? शायद आज तुम कॉलेज नहीं गए हरेन्द्र दादा ? मैं गांव जाकर काकी से सब कुछ कह दूंगी।"

हरेन्द्र ने अब भी कुछ ध्यान नहीं दिया। उसके भाव रत्तीभर भी बदलते हुए दिखाई नहीं दिए। वह वैसे ही भावहीन मुद्रा में कमला का पत्र पढ़ता रहा। या यह कहिए कि वह मन-ही-मन उसे रटती रही। अब की बार कमला कुर्सी छोड़कर खड़ी हुई और हाथ बढ़ाकर हरेन्द्र के हाथ से पत्र छीन लिया। और फिर हंसती हुई बोली, "अच्छा दादा, परायी चिट्ठी पढ़ने का तुम्हारा पुराना रोग अभी तक दूर नहीं हुआ क्या ? जन्मभर इसी तरह लड़कपन करते रहोगे क्या ?"

हरेन्द्र ने तनिक भी लज्जित न होकर सहज भाव से कहा, "तुझ में क्या बुद्धि की कमी बनी रहेगी कमला ? यह चिट्ठी परायी है ? यह तूने मेरे मैत्र काका को ही लिखी है।"

12

उस दिन क्षितीश हरेन्द्र को बड़ी कठिनाई से खोजकर अपने साथ ही अपने डेरे पर ले आया था और हरेन्द्र को कमला के पास छोड़कर चाय की तैयारी करने के लिए नीचे चला गया था।

नीचे पहुंचते ही उसने जोर-जोर से बोलना शुरू कर दिया—"महाराज चाय के लिए पानी गर्म किया ? नहीं ? अच्छा चटपट केतली चढ़ा दो। कितने प्याले पानी हों ?...अरे यही चार-पांच प्याले। आज जरा ठंडक है। अरे रामा, जा भीमनाथ की दूकान से आधा सेर रसगुल्ले तो ले आ। और उस बड़ी सड़क के मोड़ पर जो कलकत्ता

होटल है, वहां से कुछ केक-वेक...यही एक रुपए के अन्दाज से लेते आना। बिस्कुट तो घर में हैं ही। जल्दी जा और चटपट ले आ, देर न हो।"

इस प्रकार जरनैली हुक्म जारी करके वह कहारिन से प्याले, प्लेटें, छुरी, चम्मच आदि धुलवाकर साफ़ कराने लगा। दस मिनट में ही सारी तैयारियां हो गईं। चाय का पानी भी खौलने लगा। बस राजा के बाजार से लौट आने भर की देर थी। क्षितीश वहीं बरामदे में टलहने लगा। दूसरी मंजिल से हरेन्द्र के जोर-जोर से हंसने की आवाज आती थी तो क्षितीश का मन अप्रसन्न हो उठता था। मन-ही-मन यह सोचकर उसे हरेन्द्र से ईर्ष्या हो रही थी कि कमला और हरेन्द्र इतनी देर से इस सीमा तक घुल-मिल गए। मेरे सामने तो कमला एक सप्ताह में एक बार भी नहीं हंसी। मेरे सामने तो आंसू कीं बहाती रही लेकिन हरेन्द्र को पाते ही वह अपनी हंसी नहीं रोक पा रही। वाह !

रामा बाजार से सामान खरीद लाया। प्लेटों में खाने की चीजें सजाकर, चाय ठीक करके, उन्हें ले आने की नौकर को आज्ञा देकर प्रतिक्षा ऊपर आ गया।

उसने देखा, हरेन्द्र एक कुर्सी पर बैठा हुआ है और बड़ी उमंग के साथ बातों की फुलझड़ियां उसके मुंह से छूट रही हैं। साथ ही जोर से हंसता जा रहा है। थोड़ी ही दूर पर ही एक पॉलिशदार चौड़ी बैंच पर बैठी कमला हरेन्द्र के मुंह की ओर ताक़ती हुई उसकी बातें सुन रही है।

क्षितीश को देखते ही हरेन्द्र उठ खड़ा हुआ और विनम्रता भरे स्वर में बोला, "ओ हो, क्षितीश बाबू हैं। आइए, आइए, पधारिए, बैठिए। अरे...।"

हरेन्द्र के उपहास और भाव-भंगिमा को देखकर कमला को हंसी आ गई।

हरेन्द्र ने कहा, "तू हंसती क्यों है कमला ? तू सोचती होगी हरेन्द्र दादा यह क्या रहे हैं ? जैसे यही इस घर के मालिक हों और क्षितीश बाबू मेहमान हों। लो इसमें सन्देह ही क्या है ? मुझे तो तू जानती ही है।" "आत्मवत् सर्व भूतेषु" अर्थात् मैं अपने समान ही सभी को भूत समझता हूं।"

यह कहकर हरेन्द्र ने अपने अट्टहास से घर की छत तक हिला दी।

क्षितीश एक दूसरी कुर्सी जा बैठा। उसने हंसने का असफल प्रयत्न करते हुए पूछा, "आप लोगों ने क्या निश्चय किया ? क्या सलाह की ?"

हरेन्द्र ने पूछा, "काहे की सलाह ?"

क्षितीश ने कहा, "यही, इनके सम्बन्ध में ? सारी घटना तो आप सुन ही चुके हैं। अब इनको क्या करना चाहिए ?"

हरेन्द्र ने कहा, "मैंने तो इनको अच्छी ही सलाह दी है। लेकिन यह मानती कहां हैं ? जानते हैं क्षितीश बाबू, आजकल की स्त्रियां स्वाधीन होती चली जा रही हैं। अब वे अपनी बुद्धि के अनुसार चलना चाहती हैं।"

इतना कहकर हरेन्द्र ने अपनी अपनी मुख मुद्रा अत्यधिक गम्भीर बना ली।

क्षितीश ने अत्सुकता भरी दृष्टि से कमला की ओर देखा।

कमला कह उठीं, "यह तो हर बात में मजाक़ करने लगते हैं। क्षितीश बाबू, आप इनके कहने में मत आइए। वास्तविक मामले के बारे में इन्होंने मुझे कोई सलाह नहीं दी। मैंने जितनी ही बार पूछा कि हरेन्द्र दादा, मुझे अब क्या करना चाहिए ? उतनी ही बार इन्होंने विचित्र प्रस्ताव सामने रखे आपके आने से पलभर पहले कह रहे थे—"कमला, तू अब गांव जाकर क्या करेगी ? विलायत चली जा। रवीन्द्र बाबू की पुस्तकें पढ़-पढ़ कर अंग्रेज लोग बंगला सीख गए हैं। वहां हिन्दू नारियों के आदर्शों के सम्बन्ध में बंगला में खूब लैक्चर देती फिरना—बताइए, यह भी कोई सलाह है ?"

इतना कहकर कमला ने मुंह बना लिया।

यह सुनकर क्षितीश के उदास चेहरे पर भी हंसी की रेखा दौड़ गई।

हरेन्द्र ने कहा, "मैंने क्या बुरी सलाह दी है क्षितीश बाबू ? अच्छा, अगर यह सलाह कमला को पसन्द नहीं तो और भी एक प्लान मेरे दिमाग में है।"

उसी समय चाय और जलपान का सामान ऊपर आ गया। क्षितीश ने कहा, "आइए हरेन्द्र बाबू, जरा-सी चाय पी लीजिए। इसके बाद सलाह-मशवरा किया जाएगा।"

यह कहकर वह दोनों प्यालों में चाय उड़ेलने लगा।

कमला वहां से उठकर अपने कमरे में चली गई। क्योंकि वह समझ गई थी कि वे दोनों इस समय उसका वहां रहना पसन्द नहीं करेंगे।

कमला के चले जाने के बाद चाय पीते हुए हरेन्द्र ने क्षितीश से पूछा, "तो आपने कमला के बारे में क्या सोच रखा है ? इसे कहां भेजा जाए ?"

क्षितीश ने कहा, "सोचने की क्या बात है इसमें ? कमला को उसके पिता के पास भेज दिया जाएगा।"

हरेन्द्र ने हंसकर कहा, "यह समस्या इतनी आसान नहीं है। क्षितीश बाबू। आप समाज को नहीं जानते। जिस समय आपने कमला को सड़क पर पाया था अगर उसी समय उसे, उसके गांव में, पिता के पास पहुंचा देते या अपने घर न लाकर अस्पताल में एडमिट करा देते तो अवश्य ही कोई कठिनाई न आती। अब मामला उलझन में पड़ गया है। इसे सुलझाना इतना आसान नहीं है।

क्षितीश—"उस समय तो यह खयाल मुझे बिल्कुल ही नहीं आया। उस समय यह बात सूझी ही नहीं हरेन्द्र बाबू। मैंने यही सोचा कि भले घर की लड़की को और विशेष रूप से ऐसी सुन्दर और कम उम्र की लड़की को अस्पताल में अकेली भर्ती करना...।

हरेन्द्र—"सो तो आपने ठीक ही सोचा था। उस समय आपने जिस पहलू से परिस्थिति पर विचार किया था, उचित था। लेकिन...खैर, अब इस बात को छोड़िए...रातस्य शोचनम् नास्ति।"

कुछ देर तक हरेन्द्र ने सोच-सोचकर अनेक उपाय बताए, लेकिन अन्त तक कोई भी ठीक नहीं जँचा। कुछ-न-कुछ कमी सभी में निकल आई। इसलिए सभी को रद्द कर दिया गया। इसके बाद वे दोनों कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे।

अन्त में हरेन्द्र ने कहा, "देखिए, आप और मैं, हम दोनों सलाह-मशवरा करके कुछ निश्चय नहीं कर पाएंगे। इस विचार-विमर्श में एक तीसरे व्यक्ति को सम्मिलित करने की आवश्यकता है।"

क्षितीश ने कहा, "तीसरा व्यक्ति कौन है ?"

हरेन्द्र ने कहा, "कमला के पिता मैत्र महाशय।" अत्यन्त आवश्यक कार्य है—" बस इतना ही लिखकर, और उन्हें कुछ न बताकर, एक पत्र भेजा जाए और उन्हें यहां बुला लिया जाए। उनके यहां आ जाने से सारी बातें विस्तार से उन्हें समझा दी जाएंगी। वे पिता हैं इसलिए अपनी सन्तान के स्वभाव और चरित्र को अच्छी तरह जानते होंगे। मुझे आशा है कि वे अपने मन में उचित-अनुचित सन्देह कभी पैदा नहीं होने देंगे कि उनकी बेटी कभी कोई बुरा काम कर सकती है। रह गए गांव के आदमी और समाज—सो उनके आक्रमण से रक्षा करने के लिए क्या उपाय करना चाहिए इसके सम्बन्ध में उन्हीं के साथ मिलकर निश्चित करेंगे। मुझे विश्वास है कि वे कोई-न-कोई मार्ग अवश्य निकाल लेंगे।"

क्षितीश ने कुछ सोचने के बाद कहा, "यह परामर्श बुरा नहीं है। जबकि इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है लेकिन आप मैत्र महाशय से जितनी उदारता की आशा कर रहे हैं, क्या वह अधिक नहीं है ? याद रखिएगा, वे पुराने जमाने के आदमी हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे नहीं हैं। वह चाणक्य को मानने वाले "विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजेकुलोषु च" विद्यालय के छात्र हैं, उनकी अपेक्षा तो कमला के पति से अधिक आशा की जा सकती है।"

हरेन्द्र कहा—"लेकिन एक और पहलू पर तो विचार करके देखिए क्षितीश बाबू। कमला के पति सतीश बाबू इस घटना को प्रेम का चश्मा लगाकर देखेंगे। ऐसा चश्मा जिसके शीशे तनिक-सी भाप लगते ही धुंधले हो सकते हैं। लेकिन पिता इस मामले को सन्तान के स्नेह की दृष्टि से देखेंगे। वह दृष्टि ऐसी है जिसमें बुराई का पहलू सुझाई ही नहीं देता। बल्कि भलाई का उज्जवल पहलू ही दिखाई देता है।"

क्षितीश ने कहा, "यह आप ठीक कह रहे हैं।"

हरेन्द्र—"और आपको जो आशंका है क्षितीश बाबू, यदि वैसा हो भी और यदि

हरनाथ काका अपनी बेटी के सम्बन्ध में कोई अनुचित सन्देह कर ही बैठें और सामाज के भय से उसे अपने घर में न रखना चाहें तो कमला के पति तो हैं ही, पत्र लिखकर उन्हें बुला लिया जाएगा।"

क्षितीश—"तो फिर यही सलाह उचित है। आप मैंत्र महाशय को एक पत्र लिख दीजिए। लेकिन जब तक वे नहीं आते, तब तक कमला कहा रहेगी ?"

हरेन्द्र—"आपके घर में ही। जिस तरह रही है उसी तरह रहेगी।"

यह सुनकर क्षितीश को बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रश्न को करने के बाद उसे इस बात का भय हुआ था कि कहीं हरेन्द्र उसे यहां से हटाकर अपने किसी बन्धु-बान्धव के परिवार में ले जाकर रखने का प्रस्ताव न कर बैठे।

हरेन्द्र ने पूछा—"कितने बजे है, देखिए तो क्षितीश बाबू ?"

क्षितीश ने सिगरेट के दो-तीन कश लगाने के बाद उसी के उजाले में कलाई पर बंधी घड़ी देखकर कहा, "पौने आठ का समय है।"

हरेन्द्र—"तो अब उठना चाहिए। यही सलाह पक्की रही है।"

इतना कहकर हरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। क्षितीश भी उठ गया। वे दोनों टहलते हुए सड़क पर उस ओर बढ़ने लगे, जहां कार खड़ी थी।

उन दोनों ने निकट आते ही शोफर ने उतरकर दरवाजा खोल दिया। क्षितीश ने कहा, "चलिए हरेन्द्र बाबू।"

हरेन्द्र ने कहा—"नहीं क्षमा कीजिए। मैं अब डेरे पर ही जाऊंगा। काफी देर हो गई।"

क्षितीश—"कमला से भेंट करके नहीं जाएंगे ? जो कुछ निश्चय हुआ है उसे बताकर चले जाइएगा।"

हरेन्द्र—"आप ही बता दीजिएगा। आज एक मित्र का विवाह है। मुझे दावत में जाना है। घर जाकर, कपड़े बदलकर वहां पहुंचने में यों ही देर हो जाएगी। अच्छा, वन्दे।"

कहकर हरेन्द्र ट्राम गाड़ी के चौराहे की ओर बढ़ने लगा।

क्षितीश ने कहा, "मेरी गाड़ी पर ही चलिए। आपको डेरे पर पहुंचा कर लौट आऊंगा।"

हरेन्द्र—"आपको चक्कर नहीं पड़ेगा ?"

क्षितीश—"उंह, थोड़ा-सा चक्कर पड़ ही जाएगा तो क्या होगा ? आइए।"

यह कहकर क्षितीश ने हरेन्द्र का हाथ पकड़कर उसे गाड़ी पर चढ़ा दिया और फिर स्वयं भी जा बैठा।

गाड़ी में बैठकर क्षितीश ने हरेन्द्र से कहा—"देखिए, चिट्ठी रजिस्ट्री कराकर

भेजिएगा, क्योंकि वह ठहरा गांव, पोस्टमैन अपनी मेहनत बचाने के लिए किसी की चिट्ठी किसी को दे देते हैं कि उसे दे देना। जहां तक संभव हो, यह बात अभी तक गुप्त ही रखना आवश्यक है।"

हरेन्द्र—"यह तो आपके ठीक ही कहा। रजिस्ट्री करके भेजूंगा।"

क्षितीश—"और लिफाफे के ऊपर अपना नाम पता कुछ मत लिखिएगा। रास्ते में सम्भव है पोस्टमैन के हाथ से लेकर कोई उस लिफाफे को देख ले, और यह सोचकर कि जिनकी बेटी खो गई, उन मैत्र महाशय के नाम हमारे गांव के जमींदार के बेटे ने उसी कलकत्ता से रजिस्ट्री चिट्ठी भेजी है, अपनी कल्पना से प्रपंच रचने में कुशल गांव के लोग न जाने क्या निश्चय कर बैठें और उसका प्रचार भी करने लगें तो कुछ आश्चर्य नहीं। गांव के लोगों के स्वभाव और उनकी समझ की दौड़ से तो आप अच्छी तरह परिचित होंगे ही।"

उसी समय कार बहू बाजार में हरेन्द्र के डेरे के सामने पहुंचकर रुक गई।

हरेन्द्र ने गाड़ी से उतरकर कहा, "ठीक है, यह कुछ नहीं लिखूंगा। अब चलता हूं, गुड नाइट।

क्षितीश—"गुड नाइट।"

फिर उसने शोफर से कहा—"चलो"

शोफर ने कार आगे बढ़ा दी।

13

गली का मोड़ पार करके गाड़ी बहू बाजार की सड़क पर पहुंच गई। क्षितीश सोच रहा था, एक भूल हो गई। मैंने हरेन्द्र से यह नहीं कह दिया कि कल-परसों या बीच-बीच में कभी-कभी आकर कमला की खैर-खबर लेते रहना। खैर, कोई हर्ज नहीं। वह आप आएगा। फुर्सत पाते ही आएगा इसमें कोई संदेह नहीं है।

बड़ी सड़क पर पहुंचकर क्षितीश मन-ही-मन हिसाब लगाने लगा कि कमला और कितने दिन मेरे यहां रह सकती है ? कल हरेन्द्र कमला के पिता को पत्र लिखेगा... एक दिन हुआ...परसों उन्हें पत्र मिलेगा। लेकिन परसों ही मिल जाएगा ? गांव का डाकखाना है। दो-एक दिन की देर भी तो हो सकती है। लेकिन वह गांव तो कलकत्ते से अधिक दूर भी नहीं। अच्छा, मान लो...उन्हें परसों पत्र मिल गया...तो दो दिन हुए, और उसी दिन कलकत्ते पहुंच जाएंगे...? इस हिसाब से बस चार दिन और कमला को देख पाऊंगा। उसके बाद...फिर जीवन में उसे कभी देख पाने की कोई संभावना नहीं है।

एक लम्बी सांस क्षितीश के हृदय को चीरती हुई निकल गई।

पटल डांगे में अपने डेरे पर पहुंचकर, सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर क्षितीश ने देखा, उसके बैठने के कमरे में टेबल पर झुकी कमला एक पुस्तक हाथ में लिए पढ़ रही है। वह बरामदे में पहुंचकर खड़ा हो गया लेकिन कमला पढ़ने में ऐसी तल्लीन थी कि क्षितीश के पैरों की आहट तक उसे सुनाई नहीं दी। सामने बिजली का टेबल लैम्प जल रहा था। कमला के मुख-मंडल पर लैम्प के ऊपर शेड से छनकर हरे रंग की रोशनी पड़ रही थी। पन्ने के रंग जैसी रोशनी। उस स्निग्ध प्रकाश में कमला का चेहरा अत्यधिक शान्त, स्निग्ध और शालीन दिखाई दे रहा था। क्षितीश मुग्ध होकर कमला के मुख-मंडल की उस आभा को देखने लगा। लगभग आधे मिनट तक एकटक देखते रहने के बाद हल्की-सी सांस लेकर मन-ही-मन बोला—"बस चार दिन और देख लूं।

लेकिन जैसे ही क्षितीश ने कमरे में पांव रखा, कमला चौंक पड़ी। पुस्तक बन्द करके क्षितीश की ओर देखते हुए उसने पूछा, "आ गए ? हरेन्द्र दादा कहां हैं ?"

हरेन्द्र दादा के लिए इतनी उत्सुकता देखकर क्षितीश का मन दुःखी हो उठा। लेकिन तत्काल ही स्वयं को संभलकर बोला, "वह तो नहीं आए। कह रहे थे उन्हें कहीं दावत में जाना है।"

यह कहते-कहते वह टेबल के दूसरी ओर पड़ी एक कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया।

कमला सिर झुकाकर कुछ सोचने लगी। फिर उसने पूछा, "आप लोगों ने क्या सलाह की ? कुछ निश्चय किया ?"

क्षितीश—"हां।"

फिर क्षितीश ने जो कुछ निश्चय हुआ था संक्षेप में कमला को बता दिया।

कमला ने कहा, "लगता है, ठीक रहेगा। बस ! पिताजी आ जाएं, उनके आने के बाद चिन्ता की कोई बात नहीं रह जाएगी।"

क्षितीश—"वे नाराज तो नहीं होंगे ?"

कमला—"नाराज होंगे ? वे तो आपको हृदय से लाखों आशीर्वाद देंगे। यदि आप न मिल जाते तो उनकी बेटी क्या अब तक जीवित रहती ? मैं तो मर ही जाती। आपने मेरी रक्षा की है, मेरे प्राण बचाए हैं। आप पर नाराज होंगे ? कभी नहीं।"

थोड़ी देर पहले क्षितीश के मन में जो कुछ दुःख हुआ था, वह सब यह सुनकर एकदम दूर हो गया। कमला के साथ उसके माता-पिता और भाई के सम्बन्ध में बातें होने लगीं।

गांव के लोगों के सम्बन्ध में बातें होने पर कमला ने कहा, "पत्र पिताजी के हाथों में सकुशल पहुंच जाना चाहिए, बस ! कम बन जाएगा।"

क्षितीश ने कहा, "यह बात तो हम लोग पहले सोच चुके हैं। मैंने हरेन्द्र से कह दिया है कि पत्र रजिस्ट्री कराकर भेजे।"

कमला ने कहा—"रजिस्ट्री ! लेकिन कल तो रविवार है। क्या रविार को रजिस्ट्री हो सकती है ? हमारे गांव के पोस्ट ऑफिस में तो की नहीं जाती।"

क्षितीश ने कहा, "कल रविवार है, इस बात का तो हम दोनों में से किसी को ध्यान ही नहीं था। नहीं, कल रजिस्ट्र नहीं भेजी ज़ा सकती। खैर अच्छी बात है, एक दिन और मिला।"

अन्तिम शब्द सहसा ही क्षितीश के मुंह से निकल गए थे। वह बहुत ही लज्जित और संकुचित हो उठा।

लेकिन कमला क्षितीश के चेहरे की ओर आश्चर्य से एकदम देखने लगी। उसने पूछा—"और एक दिन कैसा मिला ?"

क्षितीश के मस्तिष्क में जैसे गड़बड़ी मच गई, उसने सिटपिटाकर कहा—"एक दिन ? यही...अर्थात् सलाह-मशवरा करने के लिए और एक दिन का समय...।"

"ओह...!" कहकर कमला जैसे कुछ संदेह भरी दृष्टि से क्षितीश की ओर देखने लगी।

एकाएक क्षितीश ने कहा, "ओह ! नौ बजने वाले हैं। बीमार आदमी आपने अभी तक भोजन नहीं किया। भोजन तैयार होने में कितनी देर है ? जाऊं, देखूं तो..." कहकर वह नीचे उतर गया।

कमला टेबल पर दोनों कुहनियां टेककर और गाल पर हाथ रखे सोचने मे डूब गई।

थोड़ी देर बाद महरी आई। उसने कमला के लिए चौका लगा दिया महाराज थाली परोस कर रख गया।

क्षितीश ने आकर कमला से कहा, "जाइए, भोजन कर लीजिए और खा-पीकर सो जाइए।"

पास ही के दूसरे कमरे में कमला के सोने का प्रबन्ध था। महरी भी वहीं सोती थी। इधर कई दिनों से रात का भोजन करने के बाद ही कमला सोने वाले कमरे में चली जाती थी। इधर नहीं आती थी और न क्षितीश से उसकी भेंट ही होती थी।

क्षितीश ने कहा, "जाइए खाना परोसा रखा है।"

"जाती हूं।" कमला ने कहा, और फिर सिर झुका लिया। लेकिन वह गई नहीं।

महरी ने भी आकर कहा, "चलिए मां जी।"

कमला ने कहा, "तू चल मैं आती हूं।"

महरी चली गई।

कमला ने क्षितीश से कहा, "आप भोजन कब करेंगे ? आप ही पहले भोजन कर लीजिए। मैं बाद में खा लूंगी।"

क्षितीश ने कहा, "मेरे भोजन का अभी समय नहीं हुआ है। अभी देर है। अभी तो नौ ही बजे हैं। आपकी तबियत अभी बिल्कुल अच्छी नहीं हुई है। अभी आपकी कमजोरी दूर नहीं हुई है। आप देर मत कीजिए। आपको खाना खाकर जल्दी ही सो जाना चाहिए। जाइए, पूरियां ठंडी हो रही हैं।"

कमला ने कहा, "जाती हूं।"

कमला ने मुंह से तो जाने के लिए कह दिया लेकिन गई नहीं। सिर झुकाए बैठी कुछ सोचती रही। फिर सिर उठाकर जैसे संकोच दूर करके उसने कहा, "क्या आप मुझे एक अधिकार दे सकेंगे ?"

क्षितीश ने कहा, "क्या ? कहिए ?"

कमला ने कहा, "आज से मैं आपको दादा कहा करूंगी। आप यह सोचेंगे कि इतने दिन बाद आज अचानक यह विचार क्यों पैदा हुआ ? इस सम्बन्ध में मुझे केवल इतना ही कहना है कि आप जब मेरे बाल्य बन्धु हरेन्द्र दादा के मित्र हैं तो मेरे दादा ही हुए। ठीक है ?"

क्षितीश ने तनिक फीकी-सी हंसी हंसकर कहा, "शायद ठीक ही है।"

कमला ने कहा, "शायद क्यों ? आपकी बहिन नहीं है। आदमी के एक बहिन तो होनी चाहिए।"

क्षितीश ने कहा, "शायद होनी चाहिए।"

कमला, "आप सभी बातों में "शायद" की परत क्यों लगा देते हैं ? आज से मैं भी आपकी बहिन हुई ? आप राजी है न ?"

क्षितीश ने धीरे से कहा, "हां।"

कमला, "अच्छी बात है। आपसे एक प्रार्थना और भी है। वह यह कि जब मैं आपकी छोटी बहन हूं, तब आप मुझे आप कहकर सम्बोधित न किया करें।"

क्षितीश ने कहा, "अच्छा, ऐसा ही होगा। जाओ, अब भोजन करो।"

"जाती हूं दादा" कमला ने कहा और उठकर चली गई।

बीच का दरवाजा भेड़कर क्षितीश कुर्सी पर बैठ गया और गहरी चिन्ता में डूब गया।

14

तीन दिन बाद रात के लगभग दस बजे क्षितीश ने बहू बाजार में हरेन्द्र के डेरे में पहुंच कर उससे पूछा—"मैत्र महाशय का क्या समाचार है ? वह आए ?

हरेन्द्र—"नहीं।"

क्षितीश—"पत्र तो ठीक पते पर भेज गया था ?"

हरेन्द्र—"जी हां। पते में कभी भूल हो सकती थी ? बात यह हुई जिस दिन पत्र भेजना निश्चित हुआ उसके अगले दिन रविवार था, इसलिए उस दिन पत्र नहीं जा सका। कल सोमवार को रजिस्ट्री भेजी गई है।"

क्षितीश—"आपके गांव में यहां से चिट्ठी कब पहुंच जाती है ?"

हरेन्द्र—"दूसरे दिन पहुंच जाती है।"

क्षितीश—"तब तो आज उन्हें चिट्ठी मिल गई होगी, उधर से ट्रेन किस समय आती है ? क्या अभी तक उसके आने का समय नहीं हुआ ?"

हरेन्द्र—"लगभग दस बजे हमारे गांव में डाक बंट जाती है। चिट्ठी पाते ही अगर वे रवाना हो गए होते तो अब तक अवश्य ही पहुंच जाते।"

क्षितीश—"आज नहीं तो कल आ जाएंगे।"

हरेन्द्र—"यह भी तो हो सकता है कि वे गांव में न हों। किसी यजमान के यहां गांव से बाहर चले गए हों। फिर लौटेंगे तब चिट्ठी देखेंगे। अगर ऐसा हुआ तो दो-एक दिन की भी देर हो सकती है। कमला की तबियत अब कैसी है ?"

क्षितीश—"अच्छी ही है। आप तो उस दिन के बाद उसे देखने भी नहीं आए।"

हरेन्द्र—"समय नहीं मिला क्षितीश बाबू। कल या परसों तीसरे पहर आऊंगा। आप उस समय घर में ही रहेंगे ना ?"

क्षितीश—"रहूंगा क्यों नहीं ? आइएगा अवश्य। अच्छा, अब चलता हूं। नमस्कार।"

दो दिन बाद हरेन्द्र क्षितीश के डेरे पर पहुंचा। लेकिन कमला के पिता का कोई समाचार नहीं आया।

दिन-पर-दिन बीतने लगे। एक सप्ताह हो गया फिर भी कोई समाचार नहीं मिला। कमला की अनुपस्थिति में हरेन्द्र और क्षितीश दोनों मिलकर इस सम्बन्ध में बातें किया करते थे, और तरह-तरह के अनुमान लगाया करते थे। लेकिन किसी निश्चय पर नहीं पहुंचे पाते थे। पत्र रजिस्ट्री द्वारा भेजा गया था इसलिए वह अवश्य पहुंच होगा। लेकिन यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। रजिस्ट्री पत्र के पहुंचने में भी गड़बड़ होने की सम्भावना हो सकती है। पहले वाला पत्र कहीं इधर-उधर हो गया होगा, यह सोचकर हरेन्द्र ने फिर वही सब लिखकर एक पत्र रजिस्ट्री द्वारा भेज दिया।

देखते-ही-देखते उसे भी कई दिन बीत गए। पहले पत्र को भेजे हुए तो तीन सप्ताह से अधिक समय बीत गया। तब भी न तो पत्र का उत्तर ही मिला और न मैत्र महाशय के दर्शन हुए।

तब क्या करना चाहिए, रोजाना इसी विषय पर बातचीत होती थी। कमला को यहां रहते हुए एक महीने से अधिक हो चुका था। उसने अब रोना-धोना भी आरम्भ कर दिया था। क्षितीश भरसक उसे सान्त्वना देता। हरेन्द्र भी बीच-बीच में आकर उसे धीरज बंधा जाता। कमला कहती—"लगता, है पिताजी जीवित नहीं हैं। यदि जीवित होते तो वे निश्चय ही आते। कम-से-कम पत्र का उत्तर तो अवश्य ही आता।"

पहला पत्र भेजने के ठीक एक महीने बाद तीन बजे के लगभग हरेन्द्र एक तरह से दौड़ता हुआ क्षितीश के डेरे पर पहुंचा। उसने क्षितीश के हाथ में एक लम्बा सरकारी लिफाफा देकर कहा, "अजी, इसे देखो।"

एक महीने में ही उन दोनों में इतनी घनिष्ठता हो गई थी कि अब आप ज़नाब की तकल्लुफ ही समाप्त हो गया थी।

क्षितीश ने देखा, यह लिफाफा डेड लेटर आफिस से आया था। उसके भीतर हरेन्द्र का पहला पत्र रखा था।

लिफाफे की पीठ पर उस गांव के पोस्टमैन ने अपने हाथ से लिख दिया था... "चिट्ठी पाने वाले यहां नहीं हैं। कलकत्ते गए हैं। इसलिए चिट्ठी जमा की जाती है।" नीचे उस दिन की तारीख लिखी थी। उसी के नीचे एक सप्ताह बाद की तारीख़ में उसी डाकिए के हाथ का लिखा विवरण इस प्रकार है—"मालिक अभी कलकत्ते से नहीं लौटा। कब आएगा ? यह भी कोई नहीं बता सकता। चिट्ठी वापस की जाती है...।"

उस दिन हरेन्द्र सांझ के बाद तक क्षितीश के यहां रहा। कमला साथ मिलकर उन्होंने यही विचार-विमर्श किया कि अब उसे उसके पति के पास लखनऊ ले जाना उचित है।

क्षितीश ने कहा, "वो फिर यही कीजिए। इनको वहीं ले जाइए। सारा हाल उन्हें अच्छी तरह समझाकर वहीं छोड़ आइए।"

हरेन्द्र ने कहा, "लेकिन मेरे अकेले जाने से तो काम बनेगा नहीं भाई तुम्हें भी चलना पड़ेगा। तुमने कमला को किस हालत में सड़क पर पाया था, उसे इतने दिनों तक तुम्हारे यहां रहने पर क्यों विवश होना पड़ा—सब बातें सतीश बाबू को तुम्हारे मुंह से ही सुननी चाहिए। मामला जितना संगीन हो गया है, वैसा ही साक्षी प्रमाण आदि पूरी दृढ़ता के साथ भली-भांति प्रस्तुत किए बिना काम नहीं चलेगा।"

क्षितीश ने सहमति प्रकट करते हुए कहा, "लेकिन इस समय कॉलेज की छुट्टी करने में बहुत हानि होगी भाई, सारी पढ़ाई चौपट हो जाएगी यों भी मेरी अटेन्डेन्स कम है। और कम हो जाने पर शायद परीक्षा में न बैठने दिया जाए। अगले सप्ताह शुक्रवार को लखनऊ पहुंच जाएंगे फिर रविवार को वहां से चलकर सोमवार को कलकत्ता लौट आएंगे। इससे कॉलेज की पढ़ाई में भी बाधा नहीं पड़ेगी।"

यही ठीक सलाह रही। यह भी निश्चित हो गया कि क्षितीश बाबू को पत्र लिखकर आने की सूचना देने की आवश्यकता नहीं है।

यात्रा के दिन तीसरे पहर महरी कमला की चोटी गूंथ रही थी, उस समय कमला की आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे।

महरी ने आश्चर्य चकित होकर पूछा, "रोती क्यों हो बहू ?"

कमला ने कहा, "जा तो रही हूं महरी। लेकिन भाग्य में क्या लिखा है, क्या होगा ? सो तो नहीं जानती।"

महरी ने कहा, "क्या अकारण मन छोटा कर रही हो बहू ? भाग्य में क्या लिखा है। तुम सती लक्ष्मी हो। तुम्हारा भला ही होगा।"

बम्बई मेल में एक डिब्बा फर्स्ट और सैकेंड क्लास का ऐसा मिला हुआ होता है जिसे मुगल सराय में ट्रेन बदलनी पड़ती है। उसी से यात्रा करना निश्चय हुआ। साथ ही यह निश्चय किया गया कि सांझ के बाद क्षितीश कमला को लेकर हरेन्द्र के डेरे पर बहू बाजार आ जाएगा और वहां से हरेन्द्र को साथ लेकर स्टेशन पहुंचेगा।

खाने-पीने से छुट्टी पाकर क्षितीश और कमला हरेन्द्र के डेरे पर जाने के लिए तैयार ही थे कि उस समय अचानक क्षितीश को उसके कलकत्ता में रहने वाले एक अत्यन्त घनिष्ठ मित्र का एक अत्यन्त आवश्यक पत्र एक आदमी के द्वारा मिला। पत्र में लिखा था—"अत्यन्त आवश्यक काम है। पांच मिनट के लिए मुझ से मिल लो।"

क्षितीश उलझन में पड़ गया। घड़ी देखी तो पता चला कि जोड़ा साको में रहने वाले उक्त मित्र से मिलने के बाद हरेन्द्र को लेकर स्टेशन जाने पर ट्रेन का टाइम निकल जाएगा और ट्रेन नहीं मिलेगी। क्षितीश ने नौकर से कहा कि वह जल्दी से जाकर बड़ी सड़क से एक टैक्सी ले आए।

नौकर ने पांच मिनट में टैक्सी लाकर सूचना दी कि टैक्सी दरवाजे पर खड़ी है।

क्षितीश कमला के साथ नीचे उतरा। उसकी अपनी कार भी तैयार खड़ी थी। कमला को अपनी कार में बैठाकर क्षितीश ने ड्राइवर से कहा, "इन्हें बहू बाजार में हरेन्द्र बाबू के डेरे पर ले जाओ। वहां से हरेन्द्र बाबू को लेकर जल्द-से-जल्द हावड़ा स्टेशन पहुंच जाना। मैं आवश्यक काम निबटाकर इसी टैक्सी से हावड़ा स्टेशन पहुंच जाऊंगा। हरेन्द्र से कह देना कि मैं ठीक समय पर पहुंच जाऊंगा।"

क्षितीश की कार कमला को लेकर चली गई तो क्षितीश टैक्सी में बैठकर जोड़ासाको की ओर चल दिया।

जोड़ासाको का काम समाप्त करके क्षितीश जब टैक्सी में बैठा तो बम्बई मेल के छूटने के पन्द्रह मिनट रह गए थे।

क्षितीश ने ड्राइवर को आदेश दिया, "तेजी से ड्राइव करो।"

हावड़ा ब्रिज के निकट आते ही किराए की एक सेकंड क्लास घोड़ा गाड़ी से टैक्सी की टक्कर हो गयी। टक्कर लगते ही घोड़ा गाड़ी के दोनों घोड़े जा गिरे। उस गाड़ी में बैठे अधेड़ उम्र के दोनों आदमी सड़क पर उतर पड़े। टैक्सी ड्राइवर और गाड़ी को कोचवान की भी जबानी भिड़न्त हो गयी। दोनों एक दूसरे को दोषी ठहराकर गाली-गलौच करने लगे। तमाशा देखने के लिए राहगीरों की भीड़ जमा हो गयी। पुलिस ने आकर झगड़ा रोका और टैक्सी के साथ घोड़ा गाड़ी का नम्बर भी नोट कर लिया।

घोड़ा गाड़ी के दोनों आदमियों में जो व्यक्ति बादामी रंग का शाल ओढ़े हुए था, उससे पुलिस कांस्टेबल ने उसका नाम और पता पूछा, शायद मुकद्दमे में गवाही देने के लिए। उस व्यक्ति ने कहा...''मेरा नाम योगेन्द्र नाथ मित्र है, घर काली ग्राम, जिला बर्दवान में है।''

''काली ग्राम—जिला बर्दवान—'' सुनकर क्षितीश समझ गया कि ये लोग कमला के गांव के ही हैं। लेकिन हरेन्द्र के पिता का नाम योगेन्द्र नाथ है यह बात उस बेचारे को मालूम नहीं थी। वह यह भी नहीं जान सकता कि योगेन्द्र बाबू के साथ जो दूसरा व्यक्ति है, वे कमला के पिता हरनाथ मैत्र हैं। वे दोनों अभी-अभी ट्रेन से उतरे थे, और हरेन्द्र के डेरे की ओर जा रहे थे।

इसी बीच कुछ लोगों ने गाड़ी के घोड़ों को उठाकर खड़ा कर दिया और फिर गाड़ी बहू बाजार की ओर चल पड़ी तो क्षितीश की टैक्सी तेज़ी से स्टेशन की ओर दौड़ने लगी।

ट्रेन छूटने में केवल तीन मिनट रह गए थे। तभी क्षितिश प्लेटफार्म पर पहुंचा। हरेन्द्र गाड़ी की खिड़की से सिर निकाले उसी की प्रतीक्षा में गेट की ओर देख रहा था। क्षितीश के पहुंचते ही हरेन्द्र ने कहा, ''अच्छा हुआ तुम आ गए। मैं तो समझता था तुम, आ नहीं सकोगे।''

क्षितीश ने कहा, ''ओह, बड़े झंझट में पड़ गया था भाई। रास्ते में एक किराए की घोड़ा गाड़ी से टैक्सी टकरा गई थी।''

हरेन्द्र ने उत्सुकता से पूछा—''कैसे ? कहीं चोट तो नहीं लगी ?''

''नहीं,'' क्षितीश ने उत्तर दिया और कम्पार्टमेंट में आ बैठा।

उसने बैठकर संक्षेप में सारी घटना सुना दी। फिर बोला—''और भी मजा यह हुआ कि उस गाड़ी में जो आदमी सवार थे, वे तुम्हारे ही गांव के थे। पुलिस कांस्टेबल के पूछने पर उनमें से एक आदमी ने अपना घर नाम काली ग्राम, जिला बर्दवान बताया था।''

कमला कह उठी, ''काली ग्राम के रहने वाले ? कौन थे क्षितीश दादा ?''

क्षितीश ने कहा—"नाम भी तो बताया था। भला-सा नाम था, भूला जा रहा हूं...हां शायद यतीन्द्र नाथ मित्र तो हमारे गांव में कोई है नहीं।"

हरेन्द्र इस नाम के किसी ग्रामवासी को नहीं जानता था।

तभी गार्ड ने हरी बत्ती दिखाकर सीटी बजा दी। बम्बई मेल चल पड़ी।

उधर योगेन्द्र मित्र कमला के पिता को साथ लेकर बहू बाजार में हरेन्द्र के डेरे पर पहुंचे। गाड़ीवान को किराया देकर विदा करने के बाद योगेन्द्र मित्र ने डेरे में रहने वालों से पूछा, "हरेन्द्र बाबू किस कमरे में रहते हैं ?"

एक आदमी ने हाथ से इशारा करके कहा, "वह तीसरी मंजिल पर पूर्वी-दक्षिणी कोने में जो कोठरी है उसी में रहते हैं।"

दोनों तिमिञ्जिले पर चढ़कर पूर्वी-दक्षिणी कोने के कमरे में सामने पहुंचे। उन्होंने देखा—हरेन्द्र का विशेष नौकर, उन्हीं के गांव का खुदीराम अहीर घास के फर्श पर बैठा नारियल का हुक्का हाथ में लिए बड़े एकाग्रमन से चिलम फूंक रहा है।

अपने जमींदार बाबू को इस तरह अचानक सामने खड़ा देखा तो खुदीराम हड़बड़ाकर उठ बैठा। हुक्के को एक ओर दीवार के सहारे रखकर उसने साष्टांग प्रणाम किया।

योगेन्द्र बाबू ने पूछा, "क्यों रे खुदीराम, सब कुशल तो है न ?"

खुदीराम, "जी हां, हुजूर, आपके आशीर्वाद से सब कुशल ही है।"

योगेन्द्र—"हरेन्द्र कहां है ?"

खुदीराम—"जी, वह पश्चिम की ओर घूमने गए हैं।"

योगेन्द्र—"कब ?"

खुदीराम—"जी आज ही तो गए हैं—यही कोई आधा घंटा हुआ होगा। बम्बई मेल से गए हैं।"

"लौटेंगे कब ?"

खुदीराम—"जी, सोमवार को लौट आने को कह गए हैं।"

योगेन्द्र—"अकेले ही गए हैं ? या कोई और भी साथ है ?"

खुदीराम—"जी साथ तो किसी और को नहीं देखा। केवल... ।"

इतना कहकर खुदीराम रुक गया...इधर-उधर करने लगा। हाल ही में उसके गांव का एक ग्वाला कलकत्ते आया था। उसी के मुंह से खुदीराम ने कमला और हरेन्द्र के सम्बन्ध में कुछ अफ़वाह सुनी थी।

योगेन्द्र मित्र उसे रुकते देखकर चिल्ला उठे—"केवल क्या रे ? ठीक-ठीक सारी बात बता हरामजादे। नहीं तो मारे जूतों के सिर पर एक बाल भी नहीं छोड़ूंगा।"

खुदीराम हाथ जोड़कर कांपते हुए बोला—हुजूर, उनके जाने से पहले दरवाजे पर

एक मोटर आकर रुकी थी। मोटर की आवाज सुनकर भैया ने कहा—चलो। मैं उनका बैग, छाता, छड़ी आदि लेकर उनके पीछे-पीछे गया। गाड़ी के पास पहुंचकर बाबू ने पूछा, कमला तुम अकेली ही आई हो ?"

मैंने देखा। गाड़ी के भीतर इन्हीं हरनाथ दादा की बेटी कमला गाड़ी में बैठी थी। बिटिया यहां किस तरह आई, यह मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। भैया से भी इस सम्बन्ध में कुछ पूछने का समय नहीं मिला। भैया जैसे ही गाड़ी में बैठे, गाड़ी चली गई।

हरनाथ मैत्र—"हाय जगदीश्वर !" कहकर धम से एक कुर्सी पर निर्जीव होकर बैठ गए।

योगेन्द्र बाबू ने पूछा—"अच्छा, तूने कमला को और भी किसी दिन यहां देखा था ?"

खुदीराम ने हाथ जोड़कर कहा—"जी नहीं हुजूर और किसी दिन नहीं देखा। यही पहली बार देखा था। मैं यह बात हुजूर के पांव छूकर शपथपूर्वक कह सकता हूं।"

खुदीराम ने योगेन्द्र बाबू के पैरों पर हाथ रख दिया।

योगेन्द्र बाबू ने पूछा—किस गाड़ी से गया है। तूने बताया—बम्बई मेल से ?"

खुदीराम—"जी हां हुजूर।"

एक लम्बी "हूं" कहकर योगेन्द्र मित्र कुर्सी पर बैठ गया।

फिर उन्होंने बैग में से टाइम-टेबिल देखकर कहा, "बम्बई मेल हावड़ा स्टेशन से 9 बजकर 35 मिनट पर छूटती है। अब तो 9 बजकर 45 मिनट हो चुके। गाड़ी को स्टेशन से रवाना हुए दस मिनट हो गए।"

15

बम्बई मेल स्थान और काल की सीमाओं का उपहास करती, भक्-भक् धुआं उगलती दौड़ी जा रही थी। जैसे मायासुर के किसी बालक ने एक हवाई में आग लगाकर उसे मैदान में छोड़ दिया हो। बाहर मैदान के घने अंधेरे में मैदान में खड़े पेड़-पेड़ों की झुरमुट में जमे हुए अंधकार के ही भाग दिखाई दे रहे थे। उसी अंधकार में गाड़ी के भीतर की रोशनी उड़ते हुए जुगनुओं के समान चमक रही थी। उस दुर्दान्त वेग से चल रही गाड़ी के भीतर बैठे हुए कमला, क्षितीश और हरेन्द्र तीनों ऐसा अनुभव कर रहे थे जैसे यह उनके भाग की गति है। उन्हें खींचकर न जाने कहां लिए चली जा रही है ? इसका कुछ ठिकाना नहीं।

कमला अपने पति के पास जा रही है। वही पति जो उसे एक दिन भी देखे बिना

नहीं रह सकती थी। उसी के पास इतने दिन के वियोग के बाद जा रही है। इससे कमला के मन में आनन्द अधिक था या भय, इसका वह स्पष्ट अनुमान नहीं लगा सकी। वह सोच रही थी इतने दिनों से वह घर से बाहर रही है। अगर यह बात सतीश को मालूम हो गई तो क्या वे उसकी बात पर विश्वास करके उसे ग्रहण कर सकेंगे ? कोई बच्चा न होने के कारण उसकी सास तो यों ही अपने लड़के का दूसरा विवाह करने को तैयार थी। केवल लड़के की राय न होने के कारण वह अब तक अपना यह शुभ संकल्प पूरा नहीं कर पाई। इस समय अगर कमला की सास इसी अपवाद की आड़ लेकर लड़के की खीझ का सुनहरा अवसर पाकर अपने इरादे को अब तक पूरा कर चुकी हो तब वह वहां जाकर देखेगी कि उसके स्थान पर एक स्त्री आकर बैठ गई है और केवल घर पर ही नहीं स्वामी के हृदय पर भी उसका पूरा-पूरा अधिकार हो चुका है। वहां अब न तो घर में और न स्वामी के हृदय में—कहीं भी उसके लिए जगह नहीं रह गयी।

इतने दिनों तक शायद सतीश ने उसे खूब खोजा होगा। लेकिन उसने तो इतने दिनों तक अपनी कुछ खबर ही नहीं दी। न पिताजी को ही समाचार दिया। इसीलिए अगर स्वामी ने उसे अपने घर और हृदय से निकाल दिया तो इसके लिए दोषी कौन है ? उसका पति, उसकी सास या वह स्वयं ?

कमला कुछ भी निश्चय नहीं कर सकी। अच्छा, यदि उसके पति ने सचमुच ही अपना दूसरा विवाह कर लिया, तो फिर उसकी क्या गति होगी ? अगर इस समय सारी बातें सुनकर और उस पर विश्वास करके पति उसको ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाएं, तो क्या वह सौतन के साथ रह सकेगी ? जिस घर और जिस हृदय पर अब तक एकमात्र उसी का अधिकार था। उसी अधिकार के लिए अब तो एक नितान्त अपरिचित स्त्री के साथ नित्य झगड़ा-झंझट करना पड़ेगा। और अगर उसके पति तथा सास ने उसे ग्रहण नहीं किया तब तो सारा झगड़ा समाप्त हो जाएगा। तब वह किसके द्वार पर जाकर खड़ी होगी ? उसे आश्रय कौन देगा ?

मायके में जाने पर बहुत संभव है माता-पिता उसका त्याग न कर सकें। लेकिन एक महीने के बाद पति के घर और हृदय से निकाल दिए जाने पर वह कौन-सा मुंह लेकर माता-पिता के सामने खड़ी होगी ? वह ही क्या उस पर विश्वास कर सकेंगे ? या वह उनसे पहले जैसी ममता पा सकेगी ? जिसे अविश्वास करके दुत्कार दिया—एक महीने से कहां रही ? क्या करती रही ? जिसके सम्बन्ध में यह बात कोई नहीं जानता उसे घर में बैठा लेने पर उसके पिता समाज में सिर नहीं उठा सकेंगे। अपने पिता का सिर नीचा करके उसे जो थोड़ा-सा आश्रय मिलेगा, वह घृणा के विष से भरा हुआ होगा। उठते-बैठते, झिड़की और अपमान के अत्याचार से वह असहनीय हो जाएगा।

लेकिन अगर वह आश्रय भी नहीं मिला। क्षितीश ने उसे असहाय और विपत्ति में पड़ी हुई देखकर आश्रय दिया था। उसके घर में वह जीवन भर किस अधिकार से रहेगी ? क्षितीश ही उसका सदा भरण-पोषण क्यों करेगा ? लेकिन उसी समय कमला को क्षितीश की उस दिन की बात याद आ गई—"चलो एक दिन और मिला..." उसको अपने पास रखने का जो आग्रह क्षितीश के मुंह से असावधानी में निकल गया था, उससे तो यह आश्रय भी उसके लिए निरादर नहीं है। उसके प्रति क्षितीश के मन का भाव केवल इसी एक वाक्य से नहीं पकड़ा गया, वह तो उसके हर पल के प्रत्येक दृष्टिपात से स्पष्ट प्रकट होता रहता है। कमला को देखते ही उसकी आन्तरिक प्रसन्नता आंखों के कोनों में झांकती देखकर उसकी दृष्टि को उज्ज्वल बना देती है, उसे वह यद्यपि लाख छिपाना चाहता है, लेकिंन वह छिपाए नहीं छिपती। वह बार-बार कितने ही बहाने करके कमला के पास आना और उससे कोई-न-कोई बात करने का प्रसंग छेड़कर, बातचीत का सिलसिला चलाने की चेष्टा करता है। दूर रहने पर भी वह एक प्रकार की आकुल, मुग्ध दृष्टि से उसके मुंह की ओर ताका करता है।

यह विचार आते ही कमला ने मुंह फेरकर देखा, गाड़ी भीतर के दूसरी ओर बेंच पर कोने में दीवार का सहारा लगाए और पैर फैलाए क्षितीश बैठा है। लेकिन उसकी दृष्टि आरती की दीप शिखा की सुनहरी किरणों के समान उसी के चेहरे पर आकर पड़ रही है। कमला ने मन-ही-मन कांपकर उधर से दृष्टि हटा ली। इसी बीच कमला की नजरें हरेन्द्र की नजरों से मिल गईं। हरेन्द्र डिब्बे के बीच काली बेंच पर लेटा हुआ था। हरेन्द्र की दृष्टि उस सैकेंड क्लास के डिब्बे में हरे आवरण से बन्द उज्जवल प्रकाश के आस-पास फानूस के भीतर बन्द रोशनी के आस-पास पतंग की तरह चंचल होकर छटपटा रही है।

कमला ने सोचा, हरेन्द्र दादा तो बड़े आदमी हैं। यह क्या मुझे आश्रय न दे सकेंगे। यह विचार में में आती चरम दुःख से निराश होकर उसे हंसी आ गई। लेकिन वह हंसी बहुत की रुग्ण थी। वह यह सोचकर हंसी कि मायके में और ससुराल में जिसे स्थान नहीं मिला उसे क्या हरेन्द्र दादा आश्रय दे सकेंगे ? हरेन्द्र दादा के पिता तो उसी के गांव के आदमी हैं। पड़ोसी ही हैं। फिर वह अपने लड़के को क्यों मेरे समान स्वामी के घर के दुत्कारी हुई और पिता के घर से निकाली गई बदनाम जवान औरत को अपने आश्रय में रखने देंगे ? कमला ने अब और आगे नहीं सोचा गया। वह गाड़ी की खिड़की के पास बैठी थी। सिर निकाल कर उसने देखा, बाहर बहुत ही भयानक अन्धकार छाया हुआ था। उसे लगा, उसका भविष्य भी इसी प्रकार अन्धकारपूर्ण है। उसका तन और मन इतना थक गया था—शिथिल हो गया था कि सोचना भी उसके लिए असंभव हो उठा।

पहले ही कहा जा चुका है कि क्षितीश दूसरी ओर की बेंच पर कोने के सहारे बैठा दोनों पैर फैलाए, कमला की ओर एक टक ताक रहा था ट्रेन उतनी ही आगे बढ़ती जाती थी। उतना ही क्षितीश को ऐसा लग रहा था कि कमला अपने पति के निकट खिसकती जा रही है, और उससे दूर होती जा रही है इसलिए वह इन गिने-चुने घंटों में जब तक कमला उसकी आंखों के सामने है, अपने हृदय के भंडार को कमला की रूप-सुधा से भर लेना चाहता था। उसके मन ने बड़ी दृढ़ता से उसकी आंखों के दरवाजा खोल रखे थे। पलक लगने ही नहीं पाती थी।

कमला का विवाह हो चुका है और क्षितीश ने उसे बहिन स्वीकार कर लिया है...इसलिए क्षितीश के मन में कमला के सम्बन्ध में किसी पाप-वासना के लिए कोई स्थान नहीं था। फिर भी कमला के मन में यह विचार जमा हुआ था कि अगर वह कमला को किसी भी तरह अपने पास, अपने आंखों के सामने बहिन के नाते ही रख सकता तो उसका जीवन धन्य हो जाता।

वह माता-पिता का इकलौता बेटा था। उसकी बहिन बनकर ही कमला सदा उसके घर में रह पाती, तो भी सुख का अनुभव होता। उसका मन बार-बार यही कह रहा था। तात्पर्य यह है कि भले ही किसी भी रूप में किसी भी प्रकार, वह कमला को अपने निकट अपनी आंखों के सामने रखने चाहता था।

वह फिर सोचने लगा—शायद ही इस जीवन में अब फिर कभी कमला को देख पाऊंगा। पति के प्रेम और आदर पाने के बाद कमला के मन में इन कुछ दिनों की याद एक दुःख स्वप्न के समान, धुंधले आतंक से लिपटी हुई अस्पष्ट रूप से अंकित रहेगी। कमला को जब कभी इन बुरे दिनों की याद आएगी, तब उसे मेरा ध्यान भी आ जाया करेगा। उस समय यदि कृतज्ञता की थोड़ी-सी भावना भी मन में पैदा होगी, तो वह पति के प्रेम में उसी पल दब जाएगी। कमला को संकट से उबार कर उसे यही पुरस्कार प्राप्त हुआ कि वह जीवन भर हृदय की इस दाह से जलता रहे।

सहसा कमला ने उसकी ओर देखा फिर दृष्टि फेरकर हंस पड़ी। यह देखकर क्षितीश की जैसे चेतना लौट आई। उसने भी कमला की दृष्टि का अनुसरण करते हुए हरेन्द्र की ओर देखा और गाड़ी की खिड़की के पार घने अंधियारे में अपनी दृष्टि डुबो दी। उसके हृदय से जो एक लम्बी सांस निकली वह ट्रेन के दौड़ते हुए पहियों की घबड़ाहट में किसी ने भी नहीं सुनी।

इधर हरेन्द्र गाड़ी की बीच वाली बेंच पर लेटा, ऊपर जल ही रोशनी की ओर दृष्टि जमाए कुछ और ही सोच रहा था कि वह काली ग्राम के यतीन्द्र मित्र कौन हैं ? लगता है, क्षितीश भूल कर रहा है। काली ग्राम में तो मित्र वंश का एक ही घर है। वह घर उसी का है। क्षितीश जिन्हें यतीन्द्र मित्र कह रहा है वे शायद उसी के पिता

योगेन्द्र मित्र होंगे। उनके साथ जो आदमी था, वे कमला के पिता हो सकते हैं। वे दोनों कलकत्ते में कमला को खोजने आए होंगे।

यदि उसके पिता आए हैं तो उसकी खोज करने मेस में अवश्य जाएंगे। इस तरह अचानक कॉलेज की छुट्टी करके कलकत्ते से चल देने के लिए वे अवश्य की क्रुद्ध होंगे। लेकिन जब वह लखनऊ कमला के संकट की बात उन्हें बताएगा तो उनका क्रोध दूर हो जाएगा।

फिर हरेन्द्र सोचने लगा, मैं कमला के साथ एक ही कार में बैठकर आया हूं। खुदीराम ने देखा है। यदि पिताजी यह सुनेंगे कि मैं अकेला ही कमला को साथ लेकर कलकत्ते से चला गया हूं, तो वे क्या सोचेंगे ? क्या इससे मेरे सम्बन्ध में उनके मन में बुरी धारणा पैदा नहीं हो सकती ? किसी को कुछ न बताकर इस तरह मेरा चला जाना अच्छा नहीं हुआ। कमला को संकट से उबारते-उबारते कहीं मुझे संकट में न पड़ना पड़े। यह तो होम करते ही हाथ जलने वाली कहावत हो गयी।

सोचते-सोचते हरेन्द्र के मन का भय बढ़ने लगा। यदि वह इसी समय ट्रेन से उतरकर लौट सकता तो उसे इस संकट से मुक्ति पा जाने की बड़ी प्रसन्नता होगी। लेकिन ट्रेन तो एकदम बर्दवान पर पहुंचकर ही रुकेगी। कमला के प्रति हरेन्द्र के मन में क्रोध पैदा होने लगा। कमला चूड़ामणि योग में गंगा में गोता लगाने आई थी। लेकिन आज स्थिति यह है कि वह स्वयं संकट से भी गंगा में गोते खा रहा है। कमला को उबारने की चेष्टा में आज स्वयं उसके डूबने की नौबत आ गयी है। दोनों जवान एक सुन्दर युवती को रास्ते से उठाकर उसके पति को लौटाने के लिए जा रहे हैं। ऐसे स्वार्थहीन पर उपकार पर आज कल के लोगों को क्या वैसा दृढ़ विश्वास होगा ?

यदि कमला का पति उसे ग्रहण न करे ?—तब तो उसे लौटना ही पड़ेगा। उसके बाद ? हरेन्द्र अपने पिता और कमला के पिता को कैसे विश्वास दिला पाएगा कि कमला के कलकत्ते में आकर खो जाने की बात उसे पहले मालूम नहीं थी। और जब मालूम हुई तो उस घटना को कई दिन बीत चुके थे। भविष्य की समस्या के जटिल प्रतीत होने के कारण ही हरेन्द्र ने अपने मन को समझाने की चेष्टा की कि रास्ते में क्षितीश ने जिस आदमी को देखा है, वह यतीन्द्र मित्र ही था, उसके पिता नहीं थे।

कम्पार्टमेंट में वे तीनों अपनी-अपनी चिन्ता में इसी प्रकार डूबे हुए थे। गहरा सन्नाटा छाया था।

सहसा हरेन्द्र उठकर सीधा खड़ा हो गया और बोला—"अच्छा क्षितीश बाबू ! तुम्हारी टैक्सी से जिनकी घोड़ी लड़ गयी थी, उसमें सवार एक आदमी का नाम तुमने यतीन्द्र मित्र बताया था। योगेन्द्र मित्र तो नहीं बताया था।"

क्षितीश और कमला खिड़की के बाहर देख रहे थे। हरेन्द्र का प्रश्न सुनकर वे दोनों चौंक पड़े और घूम कर बैठ गए।

क्षितीश ने कहा—"शायद यही नाम बताया हो। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं। उस समय स्टनेशन आने की जल्दी थी। इसी ओर मन लगा था और नाम भी एक बार ही सुना था।"

हरेन्द्र ने कुछ रुककर कहा—"अच्छा उनका चेहरा-मोहरा और डील डौल कैसा था ? कुछ बता सकते हो ?"

क्षितीश ने कहा, "हां, चेहरा खूब रूखा और चौड़ा था। रंग गोरा था नाक खांडे की तरह नुकीली और ऊंची थी, मूँछ के बाल खिचड़ी थे। देखने से ऐसा लगता था जैसे क्रोध में हों।"

यह विवरण सुनकर हरेन्द्र का चेहरा सूख गया। उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला।

कमला बोल उठी—"तब तो काका ही थे। हरेन्द्र दादा के पिता। उनके साथ कौन था क्षितीश दादा ?"

आज कमला के मुंह से निःसंकोच शब्द से दादा सम्बोधन सुनकर क्षितीश ने हल्की-सी हंसी के साथ कहा, उनको तो मैं पहचानता नहीं और न उनका नाम ही सुना। हां, उनके चेहरे की बनावट बता सकता हूं। उससे शायद तुम लोग उन्हें भी पहचान लो। वे नाटे कद के गोल-मटोल, मोटे-ताजे थे। शरीर का रंग उजला सांवला था। दाढ़ी-मूंछें मुंड़ी हुई थीं। सिर पर मोटी चोटी थी और नाम के ऊपर एक निशान था।

कमला कह उठी—"यह तो पिताजी थे। शायद पोस्ट मास्टर से सुना होगा कि हरेन्द्र दादा की रजिस्ट्री आकर लौट गई है। इसीलिए काका को साथ लेकर हरेन्द्र दादा के पास खबर लेने आए होंगे।"

कमला का अनुमान हरेन्द्र को अक्षरशः सत्य मालूम हुआ। उसका चेहरा और अधिक सूख गया। उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला।

क्षितीश को भी कहने के लिए कुछ नहीं सूझ रहा था।

क्षितीश और हरेन्द्र दोनों ही चुप देखकर कमला ने ही फिर कहा—"तो इसी अगले स्टेशन पर उतर कर हम लोग कलकत्ता लौट न चलें ?"

कलकत्ता लौटकर अपने मेस में जाने के लिए हरेन्द्र का मन व्याकुल हो उठा था ताकि उसके और कमला के पिता—दोनों ही मेस में पहुंचकर यह देख सके कि वह कलकत्ते में ही हैं। कमला को लेकर पश्चिम में नहीं गया इसलिए कमला का सुझाव सुनकर उत्सुक होकर वह क्षितीश के चेहरे की ओर देखने लगा।

क्षितीश ने कहा—"अगला स्टेशन तो बर्दवान है। वहां से कलकत्ता लौटने के लिए रात की ट्रेन नहीं है। जब तक हम लोग सवेरे की ट्रेन से कलकत्ता पहुंचेंगे, तभी तक हम लोग लखनऊ पहुंचेंगे। जिसकी सम्पत्ति है उसे कुशल पूर्व लौटाने के बाद निश्चिंत होकर हम लोग सोमवार को ही लौट आएंगे। तब तक वे दोनों निश्चय ही कलकत्ता में ही रहेंगे।"

क्षितीश ने जब कहा—"जिसकी सम्पत्ति है उसे कुशल पूर्व लौटाने के बाद निश्चिंत होकर हम लोग सोमवार को ही लौट आएंगे—" उस समय उसकी आवाज और आंखों में ऐसी व्यथा झलक रही थी जिसे कमला ताड़ गई। अपने पति के उल्लेख से और क्षितीश के कहने से डर से कमला ने लजाकर अपना मुंह फेर लिया।

क्षितीश ने देखा, कमला को चेहरा कमल जैसा रक्ताभ हो उठा है और उसके ऊपर गहरे रंग की रोशनी पड़ने से उसकी सुन्दरता में और भी वृद्धि हो गई है। जैसे उषा वेला में खिला हो कमल-कुसुम पर चारों ओर के हरे पत्तों की आभा पड़ रही हो।

कमला मुंह फेर कर बैठ गई और क्षितीश के वाक्य के प्रत्येक शब्द का शुद्धार्थ खोजने लगी—"जिसकी सम्पत्ति है उसे कुशल पूर्वक लौटाने के बाद निश्चिंत हो कर हम लोग सोमवार को लौट आएंगे"—क्षितीश ने मुंह से जो कहा था, उसे उसका मन कहना चाहता था। यह बात तो उसकी व्यथा भरी आवाज से ही कमला को स्पष्ट बतायी थी। वह लौटेगा तो अवश्य ही, लेकिन इच्छा से नहीं। वह निश्चिंत होकर नहीं लौटेगा। यह भी निश्चित है, साथ ही लौटने का काम कुशलपूर्वक नहीं भी हो सकता, उसके मन में यह सन्देह भी है, कमला लज्जा और भय से मरी जा रही थी। वह अन्धकार के बीच अपनी लज्जित और भय से मरी जा रही थी। वह अन्धकार के बीच अपनी लज्जित दृष्टि को डुबो कर जहां की तहां इस प्रकार बैठी रही जैसे पाषाण प्रतिमा हो।"

बेचारा हरेन्द्र एकदम निर्जीव-सा होकर बेंच पर लम्बा-लम्बा लेट गया।

क्षितीश ने यह देखकर कहा, "रात हो गयी, अब सो जाना चाहिए, कमला अब तुम भी लेट जाओ।"

कमला ने मुंह फेरे बिना ही कहा—"आप लोग सो जाइए, मुझे अभी नींद नहीं आ रही।"

16

कमला का पति लखनऊ नगर में नौकरी करता था। क्षितीश, हरेन्द्र और कमला लखनऊ स्टेशन पर उतर कर किराए की गाड़ी लेकर कागज मिल में सतीश का घर खोजने चल दिए।

गाड़ीवान ने जब पुतली घर के पास पहुंच कर कहा—"बाबू जी, यही पुतली घर है।"—तब क्षितीश ने कहा, "अच्छा...यहां पूछताछ करनी चाहिए कि सतीश बाबू का घर कहां है।"

हरेन्द्र रास्ते भर आशंका में डूबा रहा था और चुपचाप यहां चला आया था। इस समय गाड़ी से उतर कर सतीश का घर खोजने की उसकी कोई चेष्टा या उत्साह दिखाई नहीं दिया। उसे यही विचार सता रहा था कि अगर सतीश ने कमला को ग्रहण नहीं किया तो फिर इसको लेकर काली ग्राम कैसे जा सकेगा ? इससे तो यह कहीं अधिक अच्छा होता कि वह कमला को लेकर पहले ही गांव चला जाता।

वे लोग सतीश के घर की ओर जैसे-जैसे बढ़ते जा रहे थे, हरेन्द्र का मुंह सूखता जा रहा था। कमला का चेहरा भी डंठल से तोड़े गए कमल के फूल की तरह असहनीय उद्वेग तथा आकुलता से मुरझाता चला जा रहा था। कितने दिन बाद आज पति के साथ भेंट होगी। यह सम्भावना जितनी ही निकट आती जा रही थी, उतनी ही लज्जा, आनन्द, आतंक तथा अनिश्चितता के भाव उसके ह्दस में उमड़ते चले जा रहे थे। उसका हृदय पूरी तरह धड़क रहा था।

रास्ते मे एक बंगाली सज्जन चले आ रहे थे। क्षितीश ने खिड़की के बाहर सिर निकालकर पूछा, "महाराय ! सतीश बाबू का घर आप जानते हैं क्या ?"

उस आदमी ने पूछा, "कौन ? सतीश राय ? वह पोस्ट ऑफिस में काम करते हैं या बेलोरियों में ? जो बेलेरियों में काम करते हैं।"

उस आदमी ने कहा, "उनका घर थोड़ी दूर पर है, वह जो पीले रंग का छोटा-सा पक्का घर है, उसी में रहते हैं सतीश बाबू। लेकिन आप वहां जा कर क्या करेंगे। आजकल तो वहां कोई है नहीं ? उनकी पत्नी बहुत बीमार है इसलिए कई दिन हुए, वह गांव चले गए हैं।"

क्षितीश ने कुछ निराश और कुछ प्रसन्न होकर पूछा, "तो क्या घर में कोई नहीं है ?"

उत्तर मिला—"नहीं, घर में ताला लगा है। सतीश बाबू की मां थीं बस यहां। वे भी सतीश के साथ गई हैं।"

क्षितीश ने गाड़ी के भीतर मुंह करके कहा, "यह तो बड़ी मुश्किल हुई। अब क्या किया जाए ?"

क्षितीश ने यद्यपि निराश भरे स्वर में कहने की चेष्टा की थी लेकिन उसका आन्तरिक आनन्द उसकी आंखों मे और चेहरे पर झलक ही गया। उसने मन-ही-मन कहा, "चलो, अच्छा ही हुआ। अब कमला और भी कुछ दिन उसके घर रह सकेगी।"

पति द्वारा ग्रहण न किए जाने के भय से मुक्ति पाकर कमला को भी कुछ शन्ति

मिल गई। लेकिन वह यह सोचकर व्याकुल हो उठी कि पति के पास लौटने में जितनी देर हो रही है उतना ही उसका उत्तरदायित्व बढ़ता जा रहा है। उसकी बात पर पति का विश्वास करना उतना ही कठिन होता जा रहा है ?

फिर कमला सोचने लगी—उस बंगाली ने कहा था कि सतीश बाबू की पत्नी बहुत बीमार है—इसका अर्थ है ? वह अचानक बीमार होकर क्षितीश के घर में अवश्य रही है। तो क्या यह समाचार सतीश को मिल चुका है ? लेकिन यह समाचार सतीश को कैसे मिला ? उन्हें मिल ही कैसे सकता है। यह समाचार तो उसे अवश्य ही मिल गया होगा कि वह एक महीने से लापता थी। इतने दिनों में उसने पति को कोई पत्र नहीं लिखा, इतने दिन वह पराए घर में है। उस घर में जहां, आश्रयदाता के घर की कोई स्त्री या आत्मीय-स्वजन नहीं है—इन सब बातों का विचार करके कमला भयभीत हो उठी। पत्नी की बीमारी की बात बताकर गांव जाने का अर्थ क्या है ? यह विवाह करने की भूमिका तो नहीं है ? इसका अर्थ नहीं है। तब तो उसका सर्वनाश हो गया। लेकिन अब वह कहां जाकर खड़ी होगी ?

क्षितीश ने तब गाड़ी पर बैठ कर निराशा भरे स्वर में कहा, "बड़ी मुश्किल हुई। अब क्या किया जाए ?" तब कमला ने भय से व्याकुल कातर दृष्टि से क्षितीश की ओर देखा। उसकी आंखों में आसू भरे हुए थे।

हरेन्द्र तो दुःखदायी चिन्ता से एकदम डूब गया था। अगर वह सतीश के हाथ में कमला को सौंपकर, भार उतार कर हल्का होकर कलकत्ता लौट सकता तो उसकी चिन्ता बहुत घट जाती। लेकिन अब कमला को साथ लेकर कलकत्ता लौटते हुए उसे भय लग रहा था। वहां उसे और कमला के पिता दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अगर उसके पिता उससे पूछेंगे कि कमला के सम्बन्ध में उसने या मैत्र महाशय को सूचना क्यों नहीं दी ? या कमला के पिता का घर पास ही होने पर उसे वहां न पहुंचा कर इतनी दूर लखनऊ ले जाने की क्या आवश्यकता थी ? तब वह क्या उत्तर देगा ? इन प्रश्नों को कोई उत्तर न सूझ पाने की कारण उसके मन में भय और भी घना होता जा रहा था। जिसके कारण हंस मुख और चंचल स्वाभाव का हरेन्द्र इस समय बहुत ही गम्भीर दिखाई दे रहा था और हरेन्द्र की गंभीरता को देखकर कमला के मन में भी भय की भावना पैदा होती चली जा रही थी।

हरेन्द्र और कमला को इस प्रकार निर्वाक और निरुत्तर देखकर क्षितीश ने कहा, "तो फिर अब कलकत्ता ही लौट चलना होगा।"

हरेन्द्र ने लम्बी सांस भरकर कहा, "इसके सिवा और उपाय ही क्या है ?"

क्षितीश के आदेश पर घोड़ा गाड़ी फिर स्टेशन लौट गई। और उसके बाद की ही ट्रेन से वे तीनों कलकत्ता वापस चल दिए।

जिस समय ट्रेन पूरी रफ्तार से दौड़ी चली जा रही थी, उस समय कमला और हरेन्द्र दोनों ही बात सोच रहे थे। दोनों यही कामना कर रहे थे कि यदि ट्रेन कहीं पर अचानक लड़कर चूर-चूर हो जाए तो बहुत अच्छा हो। कमला को अपराधी की भांति उपस्थित होकर पति के सामने खड़े होकर कोई सफाई न देनी पड़े। और हरेन्द्र को अपने अत्यन्त कठोर स्वभाव के पिता के सामने सफाई प्रस्तुत करने से मुक्ति मिल जाए।

लेकिन क्षितीश की हालत इन दोनों से भिन्न थी। उसके मन में जो आनन्द उमड़ रहा था उसकी झलक उसके चेहरे और आंखों में दिखाई दे रही थी। लखनऊ जाते समय उसके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी। वह अब न जाने कहां गुम हो गई थी।

क्षितीश आदि तीसरे पहर जाकर कलकत्ता पहुंचे। क्षितीश ने किराए की एक टैक्सी बुलाकर कमला को उसमें बैठने के बाद हरेन्द्र ने कहा "आओ बैठो।"

हरेन्द्र ने सूखे हुए मुंह से कहा—"मैं इस समय तुम लोगों के साथ नहीं जा सकूंगा। मैं पहले सीधा अपने डेरे पर जा रहा हूं। पिताजी और हरनाथ काका कहां हैं ? यह पता लगाने के बाद शाम को तुम लोगों से आकर मिलूंगा।"

कमला ने उत्सुक होकर व्यग्र स्वर में कहा—"जहां तक हो सके, जल्दी ही आकर मिलना हरेन्द्र दादा।"

हरेन्द्र ने कहा—"अच्छा।"

क्षितीश टैक्सी में जा बैठा। टैक्सी तेजी से चल पड़ी।

हरेन्द्र ने एक और टैक्सी बुलाई और उस पर अपना बिस्तर और हैंड बैग रख कर अने मेस की ओर चल दिया।

मेस में पहुंच कर हरेन्द्र ने नीचे से ही पुकारना आरम्भ कर दिया—"खुदीराम...? खुदीराम...?? ओ खुदीराम ???"

हरेन्द्र क्रोध में भरकर बोला, "कहां गया वह नवाबजादा ? कहीं हवा खाने चला गया है क्या ?"

मेस की महरी ने कहा—"आपके गांव के बड़े बाबू आए थे। वे ही खुदीराम को अपने साथ ले गए हैं।"

हरेन्द्र के सिर में खून बड़ी तेजी से चक्कर काटने लगा। उसने बड़ी कठिनाई से स्वयं को संभाला। नहीं तो चक्कर खाकर शायद वह टैक्सी में ही गिर जाता।

फिर उसने स्वयं ही सामान उतारा। भाड़ा चुकाने और टैक्सी को विदा करने के बाद दोनों हाथों में बिस्तर और बैग लटका कर खटपट करता हुआ चढ़ गया।

ऊपर अपने कमरे के दरवाजे पर पहुंचकर हरेन्द्र ने जो कुछ देखा, उससे उसका

आश्चर्य और भी बढ़ गया। वह ठिठक कर खड़ा रह गया कमरे में उसके समान का नाम निशान तक नहीं था। उसमें एक नितांत अपरिचित व्यक्ति अड्डा जमाए बैठा था। वह लुंगी पहन सटक की नली से धुआं उगल रहा था। लगता था, जैसी छोटी लाइन का इंजन धुआं उगल रहा हो।

हरेन्द्र कोठरी के सामने हाथ का बोझ उतार कर खड़ा ही हुआ था कि इतने में उस मेस का पुराना सदस्य गोरांग उसी की ओर आता दिखाई दिया।

हरेन्द्र को देखते ही गोरांग कह उठा, "अरे हरेन्द्र, तुम कब लौटे ?"

बेचारे हरेन्द्र की उस समय ऐसी दशा नहीं थी कि वह गोरांग की हंसी का उत्तर हंसी से देता। वैसे ही उदास सूखे मुख से बोला—"बात क्या है गोरांग ? मेरे कमरे पर दूसरे का अधिकार दिखाई दे रहा है। मेरी अस्थाई सम्पत्ति सारी जब्त कर ली गई।"

गोरांग ने कहा—"क्या तुम कुछ भी नहीं जानते ? जिस दिन तुम पश्चिम गए थे उसी दिन तुम्हारे पिता और कोई एक मैत्र यहां आए थे। तुम्हारे पिताजी ने मेस में रहने वाले सभी लोगों को बुलाकर कहा, "हरेन्द्र कमरे का किराया और मेस आदि का कुछ पावना हरेन्द्र के ऊपर है तो मैं चुकाए देता हूं।"...वे तुम्हारा सारा भाड़ा दे गए। लेकिन हमें दूसरे ही दिन एक किराएदार मिल गया। यह बिलास बाबू के साले हैं। इसीलिए तुम्हारे पिता यह सोचकर कि अब इस सीजन का जो किराया दे गए थे हमने कल मनीऑर्डर से तुम्हारे पिता के नाम वापस कर दिया है।"

हरेन्द्र ने यथाशक्ति संयत रहने का प्रयत्न करते हुए सहज भाव से कहा, "यह बात है ? अच्छा, मेरा यह सामान अपने कमरे में रख लो। मैं फिर किसी समय आकर ले जाऊंगा।"

गोरांग ने कहा—"अभी-अभी तो चले आ रहे हो, फिर अभी कहां चल दिए ?"

हरेन्द्र ने सीढ़ियां उतरते-उतरते कहा—"जरा पिताजी की खोज में जा रहा हूं। वे यहीं हैं या गांव चले गए, यह पता लगाना है।"

गोरांग ने ऊपर से ही पुकार कर पूछा—"रात को खाना तो यहीं खाओगे न ? महाराज से तुम्हारे लिए भोजन बनाने के लिए कह दूं ?"

हरेन्द्र ने भी ऊंची आवाज में उत्तर दिया—"नहीं, मेरे लिए भोजन बनवाने की आवश्यकता नहीं है।"

हरेन्द्र सड़क पर पहुंच गया। इस समय कहीं एकांत में अकेले बैठ कर वर्तमान स्थिति पर विचार करने की उसे बहुत ही आवश्यकता प्रतीत हो रही थी।

हरेन्द्र चलते-चलते, सोचते-सोचते, विलिंग्डन स्क्वायर में पहुंच गया। पार्क में जाकर वह एक बेंच पर जा बैठा और सोचने लगा—

इस प्रकार उसे कोई सूचना दिए बिना अचानक ही उसके पिता उसका सामान

यहां से उठाकर क्यों ले गए ? उनका इरादा क्या है ? बहुत कुछ सोचने-समझने पर भी पिता का उद्देश्य उसकी समझ में नहीं आया। केवल धुंधले रूप मे वह यह समझ रहा था कि कमला के खो जाने के साथ इसके कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य है। लेकिन कमला के खो जाने में उसका अपराध क्या है ? इस बात का उत्तर वह लाख सिर खपाने के बाद भी सोच नहीं पाया।

फिर वह सोचने लगा—हो सकता है पिताजी के क्रुद्ध होने का कारण यह हो कि उन्हें सूचना दिए बिना वह कमला के साथ पश्चिम में चला गया। खैर, जो भी हो, इस सम्बन्ध में सोचने से अब कोई लाभ नहीं। अब तो यह सोचना चाहिए कि अब उसे क्या करना चाहिए ? पिता के पास जाकर उनका अभियोग सुनकर, सफाई देकर, स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करने में जो हीनता छिपी हुई थी जो अपमान छिपा था, वह उसे असह्य मालूम दिया बिना विचार किए पिताजी उस निर्दोष को दण्ड देने के लिए उद्यत हैं। उसके निर्णय सुनने के भय से हरेन्द्र और भी चिन्तित हो उठा। उसने जेब से मनी बैग निकाल कर देखा। उसके पास इस समय इक्यावन रुपए-साढ़े तेरह आने कुल पूंजी है। हाथ में हीरे की अंगूठी और जेब में सोने की घड़ी तथा चैन भी है। इतनी रकम से वह कुछ दिन तक निश्चिंत होकर अपना खर्च चला सकता है। फिर वह हीनता स्वीकार करने क्यों जाए ?

यह दृढ़ निश्चय करके हरेन्द्र उस पार्क से निकल आया और स्टेट्स मेन तथा बंगला के अखबारों के दफ्तरों में जाकर "नौकरी चाहिए" के कॉलेज में विज्ञापन छपने के लिए दे आया। उसने निश्चय कर लिया कि इससे उसे कोई-न-कोई नौकरी मिल ही जाएगी और वह किसी का मुंह देखा नहीं करेगा।

हरेन्द्र जब विज्ञापन देकर मन में हल्का और चिन्ता मुक्त करके अपने वायदे के अनुसार क्षितीश के घर कमला को उसके पिता के यहां आने के सम्बन्ध में बताने जा रहा था, ठीक उसी समय कालीग्राम में काना शशि मुकर्जी अत्यन्त प्रसन्न होकर पकी लौकी के बीज जैसे बड़े-बड़े दांत निकाले हरनाथ मैत्र के सामने खड़ा कह रहा था—"मैत्र महाशय, कृपा करें आज मेरे घर में भोजन कीजिएगा। मैंने एक मनौती मानी थी। उसी के लिए माता काली के आगे दो बकरों की बलि चढ़ाई है। मैं चाहता हूं, गांव के सभी इष्ट, मित्र मिलकर माता का प्रसाद ग्रहण करें।"

17

'स्टेट्स मेन' के ऑफिस से निकल कर धरमतल्ली की सड़क से होकर हरेन्द्र क्षितीश के घर की ओर जा रहा था। तो अचानक उसे ख्याल आया कि उसने नौकरी

के लिए विज्ञापन देकर भारी भूल की है। एक बार वह चूककर खड़ा हो गया। सोचा जाऊं और विज्ञापन का प्रकाशन रुकवा दूं। फिर सोचा, प्रकाशित होने दो विज्ञापन। नौकरी करना या न करना मेरे हाथ में है।

इसका कारण था। हरेन्द्र के कॉलेज में एक समिति थी, जिसका उद्देश्य था, देश के नौजवानों में से नौकरी की प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकना। हरेन्द्र इस समिति का एक प्रमुख सदस्य और संरक्षक था। नौकरी की प्रवृत्ति ने ही हमारे देश का सर्वनाश किया है·–इस विषय पर वह अकसर बड़ी जोशीली भाषा में लेक्चर दिया करता था। उसने समिति के इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर भी किए थे कि मर जाने पर भी वह नौकरी नहीं करेगा। उसने केवल हस्ताक्षर ही न किए थे बल्कि राह-बाट में जहां जिसे पाता था उससे बहस करके समझाकर, खुशामद करके और उससे भी काम न चलता तो उसे धमका कर और अन्त में घूंसा तानकर हस्ताक्षर कर लिए थे। इसी प्रकार उसने लगभग एक हजार आदमियों से दस्खत करा लिए थे। इतने थोड़े से समय में इतना अधिक काम समिति का कोई सदस्य नहीं कर सकता था। इसलिए समिति के सभी सदस्य उसकी प्रशंसा किया करते थे। हरेन्द्र को इस बात का बड़ा गर्व था कि उसे समिति और देश के काम इतनी जल्दी विज्ञापन दे आने से हरेन्द्र के हृदय में पश्चात्ताप की आग धक उठी। क्या करना चाहिए ? कुछ निश्चय न कर पाकर वह चांदनी के समान उजले फुटपाथ पर इधर-उधर टहलने लगा। प्रतिज्ञा-पत्र के एक-दो फार्म इस समय भी उसकी ज़ेब में पड़े थे। हरेन्द्र को लगा—जैसे वे किसी भारी पत्थर के समान उसकी छाती पर रखा हो। उसने क्रोध के मारे उन्हें निकाला और टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। वे टुकड़े हवा में इधर-उधर उड़ने लगे और उसकी आंखों के आगे उन सब लोगों के चेहरे चलचित्र के चित्रों के समान नाचने लगा, जो इस प्रतिज्ञा-पत्र के लिए उसका मजाक उड़ाया करते थे, उसे बनाया करते थे। वे कहा करते थे—दस्तखत करना तो आसान है लेकि काम पड़ने पर...। उनके कथन के शेष शब्द हरेन्द्र के हृदय में कांटे के समान खटकने लगे। उसे लगा, इस काम में पड़ने के समय ही उसके आत्माभिमान को अपमान से कलंकित कर दिया। पहले-पहले प्रयोजन में ही वह हार गया। बुद्धि और विचार द्वारा इस समय उस भूल का परिमार्जन अवश्य किया जा सकता है। लेकिन यह कितनी लज्जा की बात है कि पहले ही अभाव के अवसर पर उनके हृदय की प्रेरणा तो उसे दासता की वृत्ति की।

यद्यपि यह निश्चित है कि वह हजार विज्ञापन दे लेकिन नौकरी नहीं करेगा। फिर भी युधिष्ठर के नरक-दर्शन के समान नौकरी की इच्छा करने का कलंक तो उसे लग ही गया। इस भूल के लिए उसे अपने ऊपर बहुत क्रोध आया कि उसे इस प्रतिज्ञा की याद क्यों नहीं आई ? हरेन्द्र का स्वाभाव ही ऐसा है, उसका मन ही कुछ ऐसा बना

है कि जब जो सवाल उसके सिर पर सवार हो जाता है और उसकी उत्तेजना उसके तन-मन में भर जाती है। तो उसके अतिरिक्त उसे और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता। हरेन्द्र ने मन-ही-मन दृढ़ता से कहा—उसने विज्ञापन दिया, अच्छा किया। लेकिन लाख रुपए मासिक की नौकरी मिलने पर भी वह नौकरी नहीं करेगा।

नौकरी नहीं करेगा, तो फिर क्या करेगा ? इक्यावन रुपए साढ़े तेरह आने में तो जिन्दगी कट नहीं पाएगी। किस प्रकार क्या होगा, यह फिर देखा जाएगा। इस समय तो उसकी कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता तो उसे पहले भी नहीं थी। यह तो पिता और पिता के रुपए की परवाह न करके स्वयं क्या कर सकता है ? इसी बात से उत्तेजित होकर वह नौकरी का विज्ञापन देने गया था। खैर चूल्हे में जाए नौकरी। इस प्रकार आत्म-मर्यादा को शक्तिशाली बनाकर लम्बे-लम्बे डग रखता हुए वह वहां से चल दिया।

18

श्याम बाजार की ओर जाने वाली ट्राम उसके सामने पहुंच कर सहसा रुक गयी। हरेन्द्र के पैर उसे अपने आप ही उस ट्राम के पास जैसे धकेलकर ले गए। ट्राम में चढ़ने के लिए डंडे पर हाथ पड़ते ही उसका ध्यान भंग हो गया। ट्राम में बहुत भीड़ थी। तिल रखने तक की जगह न थी। हरेन्द्र का मन उस समय एकान्त खोज रहा था।

वह ट्राम पर नहीं चढ़ा। उतर कर फुटपाथ पर आ गया, एक बार सोचा—बहुत दूर जाना है, ट्राम पर चढ़ लूं। फिर सोचा—नहीं पैदल ही चलूं।

अन्यमन्सक भाव से हरेन्द्र अभी दो-चार कदम ही गया होगा कि उसी समय एक आदमी तड़ाक से ट्राम पर से एक दम उसकी पीठ पर फांद पड़ा और पीछे से उसके कोट का कॉलर खींचकर चिल्ला उठा—"भागते कहां हो ?"

चलने में सहसा व्यवधान आ जाने से हरेन्द्र चौंक पड़ा, और रुक गया।

उस आदमी ने पीछे से उसके कोट का कॉलर इस तरह कसकर पकड़ रखा था कि वह गर्दन घुमाकर यह नहीं देख पाया कि उसका कॉलर पकड़ने वाला है कौन ? उसे लगा, निश्चय ही कोई गुण्डा है। उन दिनों दिन-दहाड़े बीच सड़क पर इसी प्रकार की राहजनी होने के समाचार बीच-बीच में कलकत्ते के अखबारों में छपते रहते थे। शहर में चारों ओर इनकी खूब चर्चा थी। हरेन्द्र को लगा, आज फिर उसी प्रकार की घटना हो रही है। इस समय उसकी मन-स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह किसी गुंडे से भिड़ता। मर्द होकर सहायता के लिए चिल्ला-चिल्लाकर आकाश सिंर पर उठा लेना भी उसे लज्जाजनक प्रतीत हुआ।

उसने जेब से मनी बैग निकाल कर इक्यावन रुपए साढ़े तेरह आने की वह सारी पूंजी सड़क पर फेंक कर कहा—"यह ले, बस और मेरे पास कुछ नहीं है।"

हरेन्द्र के कोट का कॉलर जिस आदमी ने पकड़ रखा था उसने कांपते-कांपते मनी बैग उठाया और हरेन्द्र के मुंह पर खींच मारा।

हरेन्द्र हक्का-बक्का हो गया। उस चोट से चौंधियाई हुई आंखें जब ठीक हुईं, तब हरेन्द्र देखा—उसके सामने कमला का भाई अरुण था। अरुण को देखते ही हरेन्द्र को इतनी अधिक प्रसन्नता हुई, आनन्द में वह इतंना डूब गया कि अरुण की क्रुद्ध मूर्ति देखकर उसे बिल्कुल आश्चर्य नहीं हुआ। उसे यह भी संदेह नहीं हुआ कि अरुण ही उस पर टूट पड़ा था। उसी ने उसके कोट का कॉलर पकड़ रखा था और उसके मुंह पर पर मनी बैग खींचकर मारने वाला भी अरुण ही है।

आदर और स्नेह के साथ अरुण की ओर हाथ बढ़ाकर हरेन्द्र ने कहा—"अरे अरुण, यहां ? कब आया कलकत्ता ? मुझे पहले खबर क्यों नहीं दी ? चल, चल।"

इतना कहकर हरेन्द्र ने अरुण का हाथ पकड़ लिया और उसे जबरदस्ती खींचकर वहां से चल दिया। मनी बैग उसी स्थान पर पड़ा रहा।

हरेन्द्र पर अरुण ने जितने क्रोध से आक्रमण किया था वह सब हरेन्द्र के इन स्नेहपूर्ण, सरल और सहज व्यवहार से न जाने कहां उड़ गया। उसने हरेन्द्र को जितनी कड़ी बातें सुनाने का निश्चय कर रखा था, उनमें से एक बात उसके मुंह से नहीं निकल सकी। अरुण सदैव से हरेन्द्र को अपने बड़े भाई के समान मानता था। बचपन से ही अरुण ने हरेन्द्र से बड़े भाई का स्नेह और प्यार पाया था। इतने दिनों की उसी संचित स्नेह और प्रेम के आवेग ने उसकी इस भविष्य उत्तेजना की जड़ को पूरी शक्ति से हिला डाला।

अरुण ने जब ट्राम में से देखा कि हरेन्द्र चढ़ते-चढ़ते उतर गया है, तो उसे सन्देह हुआ कि हरेन्द्र उसे देखकर ही भागा जा रहा है इसीलिएं उसने सिंह के समान छलांग मारकर उसके कोट का कॉलर अपनी वज्र जैसी कठोर मुट्ठी में पकड़ लिया था। उसके बाद जब हरेन्द्र ने जेब से मनी बैग निकाल कर उसकी ओर फेंक दिया था तो उसे लगा कि हरेन्द्र ने उसके घर वालों के सामाजिक सम्मान को जो क्षति पहुंचाई है, इसी मनी बैग की रकम के रुपए से वह उसी क्षति की पूर्ति कर रहा है। इस प्रकार अपमान के ऊपर अपमान के विचार से उसका क्रोध चरम सीमा पर पहुंच गया। उसने बिना कुछ सोचे-समझे, कहे-सुने मनी बैग उठाकर हरेन्द्र के मुंह पर खींच मारा था।

लेकिन इस समय हरेन्द्र के मुख की ओर देखने से अरुण को ऐसा लगा जैसे वह उसके वही चिर-परिचित हरेन्द्र दादा हैं। वैसे ही निर्दोषं और निष्कलंक हैं। हरेन्द्र के स्पर्श से उसके हृदय की सारी जलन जैसे शान्त हो गई। लगा—गांव की वह ग्लानि,

स्कूल के सहपाठियों के व्यंग्य और तानेजनी तथा माता-पिता का वह अथाह शोक-दुःख सब झूठा था। हरेन्द्र दादा उसके परिवार का मित्र है शत्रु नहीं।

अरुण ने अत्यन्त सहज भाव से पूछा—"दीदी कहां है, कुछ जानते हो हरेन्द्र दादा ?"

हरेन्द्र ने बड़े उत्साह से कहा, "अरे तुझे वहीं तो लिए चल रहा हूं ?"

अरुण के मन में फिर हरेन्द्र के प्रति क्रोध पैदा हो गया, उसने सोचा—"तब तो अफवाह झूठी नहीं है। गांव के लोग जो निन्दा करते हैं, सच है।"

चलते-चलते अरुण रुककर खड़ा हो गया।

हरेन्द्र ने पूछा, "क्यों ?...क्यों रुक गया ?"

अरुण ने उमड़ती हुई रुलाई के वेग को बड़ी कठिनाई से गले के भीतर ही रोककर गर्दन घुमाकर कहा, "तो तुमने सचमुच ही हमारा सर्वनाश किया है ?"

हरेन्द्र ने चकित होकर कहा, "सर्वनाश ?"

अरुण को लगा, जैसे हरेन्द्र कहना चाहता हो कि क्या यह सर्वनाश है ? इसमें सर्वनाश की क्या बात है ?—यह सोचकर अरुण फिर क्रोधित हो उठा। उसने जोर से झटका देकर हरेन्द्र के हाथ से अपना हाथ छुड़ा लिया और बोला—"सर्वनाश नहीं तो और क्या है ? विवाहित, जवान, परायी लड़की को...?"

इतना ही कहकर चुप हो गया। उसके आगे कुछ कहा ही नहीं गया।

हरेन्द्र ने और भी अधिक आश्चर्य से कहा, "विवाहित, जवान और परायी लड़की को मैंने क्या किया है ?"

अरुण—"फिर भी यह कह रहे हो कि क्या किया है।"

अरुण के इन शब्दों से एक प्रकार अज्ञात आतंक जैसे हरेन्द्र के हृदय पर छाने लगा।

उसने कहा, "स्पष्ट शब्दों में कहो अरुण, तुम्हारी बातें मैं अभी तक समझ नहीं पाया।"

अरुण ने हरेन्द्र के मुंह की ओर आंख उठाकर देखा। वह मुख वैसा ही सुन्दर है, वैसा ही निष्कलंक है। उसमें किसी प्रकार की प्रताड़ना या अविश्वास के लिए स्थान नहीं है। उस निर्दोष मुख की ओर देखकर बड़े असमंजस में पड़ गया।

हरेन्द्र ने अधीर होकर कहा, "चुप क्यों हो गए ? बताओ न, क्या कह रहे हो ?"

अरुण निश्चय नहीं कर पाया कि यह बात किस तरह कहे। वह सिटपिटा गया। अन्त में एक ही सांस में उसने कह डाला—"तुमने मेरी दीदी को छिपा रखा है ?"

हरेन्द्र ने अत्यधिक आश्चर्य से कहा, "तुम्हारी दीदी को मैंने छिपा रखा है ? छिपाकर क्यों रखूंगा ?"

अरुण को लगा—जैसे शब्दों के दांव-पेच से हरेन्द्र वास्तविक बात को दबा देना चाहता है। कहता है, छिपा कर क्यों रखूंगा ? इसका अर्थ तो यह होता है कि उसने रखा जरूर है। लेकिन छिपाना नहीं चाहता। इस तरह तर्क-वितर्क करने पर हरेन्द्र सब कुछ उगल देगा। कुछ छिपा नहीं सकेगा। यह सोचकर भी अरुण कुछ निश्चय नहीं कर सका। थोड़ी देर रुककर उसने पूछा, "तो फिर दीदी कहां है ?"

हरेन्द्र ने कहा, "तुम्हारी दीदी क्षितीश बाबू के डेरे में हैं।"

अरुण ने आवक् होकर पूछा—"क्षितीश बाबू ? वह कौन हैं ?"

हरेन्द्र—"जिन्होंने तुम्हारी दीदी के प्राण बचाए हैं।"

अरुण—"प्राण बचाए हैं ?"

हरेन्द्र—"हां तुम्हारी दीदी भीड़ में फंस कर बेहोश हो गयी थीं और सड़क पर गिर पड़ी थीं। क्षितीश बाबू उन्हें उठाकर ले गए और उनका इलाज करा कर उनके प्राण बचा लिए।"

अरुण ने आशंका से रुंधे स्वर में पूछा—"अब तो दीदी अच्छी हैं न ?"

हरेन्द्र—"हां, अच्छी हैं।"

अरुण की आंखों के आगे से जैसे कुहरे का एक पर्दा हट गया। उसके बाल हृदय के भीतर किसी प्रकार की दुविधा या सन्देह नहीं रह गया। उसने इस सम्बन्ध में और कोई आवश्यकता नहीं समझी। उसने अपनी बहन को देखने के लिए अधीर होकर हरेन्द्र का हाथ पकड़ लिया और उसे खींचते हुए बोला, "चलो, जल्दी चलो। मैं दीदी को देखूंगा।"

हरेन्द्र ने अन्यमन्सक भाव से कहा, "चलो।"

उसने मन में यह अज्ञात आतंक जैसे धीरे-धीरे और भी घना होता जाता था। उस आतंक को देखकर हरेन्द्र भीतर-ही-भीतर सन्न और शिथिल पड़ने लगा था।

अरुण ने चलते-चलते कहा, "हरेन्द्र दादा, तुम्हारा शशि मुकर्जी बहुत ही पाजी आदमी है।"

"हरेन्द्र ने इस बात पर अधिक ध्यान न देकर कहा, क्यों ? उसने क्या किया ?"

अरुण ने कहा, "उसी ने तो तुम्हें और दीदी को गांव भर में बदनाम किया है।"

हरेन्द्र के हृदय को एक जोरदार धक्का-सा लगा। कुछ समझ न पाकर उसने पूछा, "किस तरह ?"

अरुण ने कहा, "उसने तो गांव भर में यह बात फैला दी है कि तुमने यहां से दीदी को खिसका दिया है और तुम दोनों ने पहले से ही यह स्कीम बना रखी थी।"

हरेन्द्र के समूचे बदन में जैसे आग लग गयी। उसने कहा, "पाजी, बदमाश कहीं का। मैं उसे देख लूंगा।"

हरेन्द्र को बहुत ही क्रोध आ गया। लेकिन उसका यह क्रोध अधिक देर तक नहीं टिक सका। उसके हृदय के भीर जो एक अज्ञात आतंक का अंधेरा छाया हुआ था, यह क्रोध धीरे-धीरे उसी में डूबने लगा।

इतने दिन से कमला घर से लापता है। इसके लिए गांव में एक भारी तहलका मच जाएगा। समाज के लोग एक आन्दोलन खड़ा कर देंगे। यह आशंका हरेन्द्र को पहले ही से थी। लेकिन बीच-बीच में उसे ऐसी आशंका भी होने लगती थी कि कहीं कोई गड़बड़ी न मच गई हो। लेकिन उसने सपने में भी यह नहीं सोचा था कि इतनी बड़ी बदनामी उसके सिर थोप दी जाएगी कि उसी ने षडयंत्र करके कमला को भगाया है। कहां कमला थी और कहां वह था। कितने दिनों से उसकी कमला से भेंट ही नहीं हुई थी। इसी बीच दोनों ने सलाह मशवरा कब हुआ और उसने किस तरह कमला को भाग चलने का उकसाया। इस अफवाह का कोई गवाह या प्रमाण पाए बिना ही लोगों ने यह आरोप किस तरह उसके सिर मढ़ दिया। यह बात उसकी समझ नहीं आई। वह सोच रहा था—"इस पर भी भला कोई भद्र पुरुष विश्वास कर सकता है कि उसने ऐसा नीच कर्म किया होगा ?"

हरेन्द्र नें अरुण से पूछा, "अच्छा अरुण, इस बात पर क्या किसी ने विश्वास भी किया है ?"

अरुण—"किया क्यों नहीं ?"

हरेन्द्र—"किसने किया है ?"

अरुण—"सभी ने किया है।"

हरेन्द्र—"पिताजी ने भी कर लिया है ?"

अरुण—"हां।"

हरेन्द्र—"मां ने ?"

अरुण—"हां, उन्होंने भी।"

हरेन्द्र—"तुम्हारे माता-पिता ने ?"

अरुण—"हां उन्होंने भी।"

हरेन्द्र—"और तुमने ?"

अरुण—"मैंने भी विश्वास कर लिया था नहीं, नहीं, पहले मुझे विश्वास नहीं हुआ था। लेकिन जब सब लोग यही कहने लगे और स्कूल के लड़के भी मजाक उड़ाने लगे तो विवश होकर मुझे भी विश्वास करना पड़ा। विश्वास न करता तो क्या करता हरेन्द्र दादा ?"

हरेन्द्र ने कोई उत्तर न दिया। केवल उसके अन्तःस्थल को चीरकर एक लम्बी आह निकल गई। उसका मन रोष से भर उठा। माता-पिता से लेकर पड़ोसी और गांव

वाले तब सब ने उसे ऐसा नीच और दुराचारी समझ लिया ? यह सोचकर समस्त संसार के लोगों के प्रति उसके मन में घृणा जाग उठी। उसने ऐसा क्या किया था ? उसके व्यवहार में, चाल-चलन में लोगों ने ऐसी कौन-सी बात देखी थी जो इतना बड़ा कलंक उसके सिर मढ़ते हुए किसी रत्तीभर भी संकोच नहीं हुआ ? उससे एक बार पूछताछ करने तक की आवश्सकता नहीं समझी गई ? इसकी जांच-पड़ताल तक किसी ने नहीं की कि यह अफवाह सच है या झूठी है। एकदम निर्णय कर लिया ? उसे लगा इस संसार में उसका कोई भी अपना बन्धु, सगा या हितैषी नहीं है। इसी लिएं इतने दिन हो गए, उसे मां की कोई पत्र नहीं मिला। इसीलिए उसके पिता कलकत्ता आकर क्रोध के मारे उसका सामान उठाकर ले गए और उससे मिलने की आवश्यकता भी नहीं समझी।

हरेन्द्र ने पूछा—"पिताजी ने क्या कहा है ?"

अरुण ने बताया—"सुना है, उन्होंने आपको त्याज्य पुत्र घोषित कर दिया है।"

हरेन्द्र ने मन-ही-मन हुंकार भर कर कहा, "अच्छा किया। बहुत अच्छा किया।"

रास्ते में चलते-चलते अरुण रास्ते भर न जाने कितनी बातें कहता रहा, लेकिन उन बातों का एक भी शब्द हरेन्द्र के कानों तक नहीं पहुंचा। अरुण की कोई भी बात हरेन्द्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती थी। वह जैसे धरती पर नहीं, जलते हुए तवे पर पांव रखता चला जा रहा था।

अपने सम्बन्ध में सोचते-सोचते हरेन्द्र कमला का ध्यान आ गया। उसने पूछा, "अच्छा अरुण, लोग कमला के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ?"

अरुण ने कहा, "दीदी की बदनामी तो ऐसी हो रही है कि सुनी नहीं जाती। इसीलिए तो मैं गांव छोड़कर माता-पिता से कहे बिना ही यहां तुम्हारा पता लगाने चला आया हूं।"

हरेन्द्र ने पूछा—"तुम्हारे माता-पिता क्या कहते हैं "

अरुण—"वे कहते हैं, अगर कमला मर जाती तो इतना दुःख न होता।"

"यही माता-पिता हैं ?" कमला ने ऐसा अपराध किया है कि उसके मां-बाप उसकी मृत्यु को श्रेष्ठ समझते हैं। तो कमला का भी इस संसार में कोई नहीं है। कमला की अवस्था भी उसके समान ही है। वह भी उसी के समान असहाय है। हरेन्द्र को ऐसा लग रहा था जैसे लोगों ने उन दोनों के हाथ-पांव एक ही रस्सी में बांधकर उन्हें अथाह सागर में फेंक दिया हो। ओह, बेचारी कमला क्या करेगी ?

कमला के सम्बन्ध में सोचते-सोचते हरेन्द्र की आत्मा व्याकुल हो उठी। वह बेचैन होकर कह उठा—"तो फिर कमला का क्या होगा, अरुण भाई ?"

अरुण अपने हृदय को पहले की भांति ही भार मुक्त ओर चिन्ता रहित पाकर

बहुत ही उत्साहित हो उठा था। उसने कहा, "और क्या होगा ? जब हम कान पकड़कर अपने बैरियों को यह दिखा देंगे कि सारी बदनामी झूठी है, जब हम अच्छी तरह प्रमाणित कर देंगे, यह झूठी अफवाह उड़ाई गयी है तब लोगों के मुंह पर जूते नहीं पड़ेंगे ?"

हरेन्द्र को लगा, अगर यही बात वह भी अरुण से बाल हृदय जैसा उत्साह पाकर कह पाता तो फिर बात ही क्या थी ? कैसा प्रमाण ? इस संसार में प्रमाण की अपेक्षा कौन करता है ? जिन लोगों ने दो युवा प्राणियों के माथे पर इतने बड़े कलंक का टीका लगा दिया है, उन्होंने क्या ऐसा करते समय किसी प्रमाण की आवश्यकता अनुभव की थी ? क्या प्रमाण ? प्रमाण ही यदि महत्वपूर्ण है तो फिर उन दोनों के साथ इतना बड़ा अन्याय कैसे हुआ ? जिस प्रमाण की मनुष्य इस सीमा तक उपेक्षा कर सकता है क्या उसी प्रमाण के बल पर वे इस कलंक से मुक्त हो सकेंगे ? यह तो पागलपन भरा विचार है। कमला शहर की सड़क पर भीड़ में मूर्छित होकर गिर पड़ी थी एक भले आदमी ने दया से प्रेरित होकर उसे उठा लिया और अपने घर ले जाकर उसका इलाज कराकर, उसके प्राण बचा लिए—इस बात को क्या बदनाम करने वाले लोग सच मान जाएंगे ? किसी की झूठी बदनामी करने में जिन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है, बदनाम करना ही जिनका धन्धा है, वे कभी नहीं मान सकते।

तो फिर कमला का क्या होगा ? यह विचार हरेन्द्र के मन के भीतर एक करुण आर्तनाद करता हुआ चक्कर खाने लगा। वह किसी प्रकार भी यह विश्वास करने के लिए तैयार नहीं था कि बिना किसी दोष के कमला को उसके माता-पिता त्याग देंगे।

उसने अधीर होकर पूछा—"अरुण, क्या तुम्हारे माता-पिता कमला को अब अपने घर में नहीं रखेंगे ?"

अरुण ने दृढ़ता भरे स्वर में कहा, "क्यों नहीं रखेंगे ?"

"क्यों नहीं रखेंगे ?" इसका उत्तर कितना पेचीदा है, यह बात हरेन्द्र उसे कैसे समझाए ? माता-पिता के हृदय का गर्म रक्त भी पत्थर के समान कठोर और बर्फ के समान ठंडा हो सकता है, हरेन्द्र का रोम-रोम इसका अनुभव कर रहा था। लेकिन उसने व्यर्थ समझकर अरुण को यह बताने या समझाने का प्रयत्न नहीं किया। वह अपने हृदय के करुण-क्रन्दन को सुनता हुआ रास्ते पर चलने लगा।

जब हरेन्द्र क्षितीश बाबू के मकान के दरवाजे के ठीक समाने पहुंच गया तब उसने जैसे नींद से चौंककर पूछा—"अच्छा अरुण, सतीश बाबू का कोई समाचार मालूम है ?"

सतीश बाबू की चर्चा होते ही अरुण का सारा उत्साह जैसे ठंडा पड़ गया। उसके उज्ज्वल मुख पर एक काली छाया डोल उठी। उसने धीरे से कहा, "मालूम है।"

हरेन्द्र—"उन्होंने सब सुन लिया है ?"

अरुण—"हां, सुन लिया है।"

हरेन्द्र—"विश्वास कर लिया ?"

अरुण—"जान तो पड़ता है ?"

हरेन्द्र—"कैसे ?"

अरुण—"सुना है, उनके दूसरे विवाह की तैयारी हो रही है।"

"खूब," कहकर हरेन्द्र जैसे सारे संसार पर खीझ उठा।

19

हरेन्द्र ने क्षितीश के मकान में जैसे ही पांव रखा, क्षितीश ने वैसे ही अधीरता भरे स्वर में कहा—"इतनी देर कर दी हरेन्द्र बाबू ? यह आपके लिए बहुत ही व्याकुल हो रही हैं।"

हरेन्द्र ने गम्भीर स्वर में पूछा, "कौन ? कमला ?"

अरुण के चेहरे पर सन्देह भरी दृष्टि डालकर क्षितीश ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से हरेन्द्र की ओर देखा। हरेन्द्र ने पूर्ववत् गम्भीर स्वर में कहा, "यह हमारा अरुण है।"

क्षितीश जैसे इतने से ही उसका सारा परिचय पा गया। वह अवाक् होकर अरुण का और भी अधिक परिचय विस्तार से जानने के लिए हरेन्द्र के मुख की ओर देखने लगा। लेकिन हरेन्द्र के मुंह से इससे अधिक और कुछ नहीं निकला।

हरनाथ मैत्र का समाचार कमला को दे देने के लिए क्षितीश अत्यन्त व्यग्र हो उठा था। लेकिन एक अपरिचित व्यक्ति के सामने कमला के सम्बन्ध में कोई चर्चा छेड़ना, उसे युक्ति संगत प्रतीत नहीं हुआ।

उधर कमला तीसरे पहर से ही हरेन्द्र की प्रतीक्षा कर रही थी। कभी कमरे के भीतर जाती थी और कभी बरामदे में खड़ी होकर बाहर की ओर ताकने लगती थी। जितनी देर होती जा रही थी, उतनी ही उत्कंठा और उसके साथ एक अज्ञात भय भी बढ़ता चला जा रहा था। पति से भेंट न होने के कारण लखनऊ से अपने यों ही लौट आने को वह शुभ लक्षण नहीं समझती थी। और एक प्रकार की आशंका रह-रह कर उसके मन को पीड़ा पहुंचा रही थी। यह जो एक प्रकार का अपशकुन भयंकर पाषाण-प्रतिमा के समान सामने आ खड़ा हुआ है, वह क्या करेगा, यह कौन बता सकता है ?

इतने दिन तक किसी प्रकार की कोई दुर्भावना कमला के हृदय में जड़ जमाकर नहीं बैठ सकी थी। आज नहीं तो कल माता-पिता के साथ, पति के साथ उसकी भेंट

होगी ही—इसी आशा की उत्तेजना में उसके दिन बीत रहे थे। पति के दर्शन न पाकर लौट आने की निराशा से उसके हृदय को जब पहला धक्का लगा तभी से उसे ऐसा प्रतीत होने लगा था, जैसे उसके विरुद्ध कहीं भयानक भविष्य का निर्माण हो रहा हो। घर लौट जाना पहले जितना सहज मालूम देता था, शायद अब उतना आसान नहीं है। वह जैसे एक झंझावात की भवर में फंस गई है। उसके चक्कर को काटकर उसके के घेरे से बाहर निकल पाना कठिन है। क्या होगा ? कौन जानता है ?

इसी प्रकार के एक अनिश्चित अनिष्ट की आशंका निरन्तर उसके हृदय पर भीषण आघात कर रही थी। यह कारण था कि कोई निश्चित और शुभ समाचार पाने के लिए वह छटपटा रही थी। हरेन्द्र के आने में जितनी देर हो रही थी, उसकी घबराहट उतनी ही बढ़ती जा रही थी। उसकी उतावली उतनी ही बढ़ती जा रही थी। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद वह कमरे से निकल कर बरामदे में जा खड़ी होती थी।

इतनी देर बाद नीचे हरेन्द्र की आवाज सुनाई दी तो कमला हड़बड़ा कर नीचे उतर आई।

वह नीचे उतर भी नहीं पाई थी कि उसे अरुण का नाम सुनाई दिया। वह तेजी से सीधी बैठक में चली गई।

कमला को आज अचानक नीचे की बैठक में आते देखकर क्षितीश चौंक उठा। बालक होने पर भी एक अपरिचित व्यक्ति के सामने कमला का आना उसे ठीक नहीं लगा। क्षितीश अरुण का हाथ पकड़कर उसे बरामदे में ले ही जाना चाहता था कि तभी अरुण चिल्ला उठा, "दीदी ?"

कमला का आन्तरिक आवेग इस सीमा तक बढ़ गया कि उसके मुंह से आवाज ही नहीं निकल सकी। केवल उसने आगे बढ़कर अरुण का हाथ पकड़ लिया। इसके बाद दोनों भाई-बहन कई पल तक एक दूसरे के मुंह की ओर अपलक ताकते रहे।

कमला ने धोती के छोर से आंसू पोंछकर धीरे-धीरे कहा—"भाई अरुण, तू आ गया ?"

अरुण केवल "दीदी", कहकर चुप हो गया और कुछ नहीं कह सका।

कमला जब स्वस्थ हुई तो उसने अरुण से क्षितीश को प्रणाम करने के लिए कहा। अरुण ने कृतज्ञ दृष्टि से क्षितीश की ओर देखकर प्रणाम किया। अरुण को ऐसा लगा, उसकी दीदी आज भी वैसी ही है, उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। फिर लोग दीदी की निन्दा क्यों करते हैं ?

हरेन्द्र चुपचाप भाई और बहन के मिलन को, इस उल्लासपूर्ण दृश्य को देख रहा था कि इस कठोर संसार की मातृभूमि में स्नेह का एक ऐसा झरना अगर उसके घर में भी होता।

कमला ने पहले माता-पिता की कुशल पूछी, फिर अरुण का हाथ थाम कर उसे ऊपर ले गई।

ऊपर की ओर जाते हुए अरुण को ऐसा लगा—जैसे यह घर अमर, यह क्षितीश और हरेन्द्र दादा, सभी परम पवित्र हैं। यहां की जलवायु और उस परम की प्रत्येक वस्तु पवित्रता से परिपूर्ण है। यहां की सभी वस्तुएं जैसे हार्दिक अनुराग से अभिषिक्त हैं। न तो कहीं मलिनता है और न कहीं निठुरता। लोगों के मुंह से ताने, निन्दा और तरह-तरह की बातें सुनते-सुनते हैं, वह स्थान अपवित्र और नरक के समान है। लेकिन आज इस पवित्रता के भीतर देवी के समान अपनी दीदी को प्रतिष्ठित देखकर उसके मन की सारी ग्लानि दूर हो गई और उसका हृदय निर्मल आनन्द से भर गया।

रात को घर में एक नया अतिथि आया था। रात काफी हो गई थी। इस पर आज यह कमला के आनन्द का दिन था। क्षितीश एक भारी भोजन का आयोजन करने के लिए जल्दी से उठ गया। उसे बार-बार यही विचार बेचैन कर रहा था—हाय ! अब कमला उसके घर से चली जाएगी। निश्चय ही चली जाएगी। सप्तमी, अष्टमी और नवमी—तीन दिन पूजा-पाठ और उत्सव आदि होने के बाद देवी की प्रतिमा विसर्जित कर दी जाती है। इसके बाद विजया दशमी के दिन पूजा वाला दिन कैसे सूना-सूना दिखाई देने लगता है—वैसा ही सूनापन उसे आज से ही दिखाई देने लगा है। यह घर-द्वार यह में आज बेकार-सी दिखाई देने लगी। जैसे कमला हाथ से बनायी हुई लाल वेरी को अपने साथ लेकर जा रही हो। यदि उसके सामर्थ्य की बात होती तो वह इसी बच्चों की कहानी के दैत्य की तरह कमला को सबके हाथों से छीनकर किसी पहाड़ की किसी अज्ञात और एकान्त गुफा में लेकर चला जाता।

हरेन्द्र अकेला चुपचाप उस बैठक में खाने बैठा था। उसका चोट खाया हुआ हृदय धीरे-धीरे रोष में भरता चला जा रहा था। यह रोष के पल अपने मांता-पिता के ऊपर ही नहीं था। यह रोष तो समस्त संसार, समाज और ईश्वर-सभी के ऊपर था। यह रोष जितना बढ़ रहा था उतनी ही एक प्रकार की विरक्ति, एक प्रकार की वितृष्णा उसके मन-मस्तिष्क को तीखा-चिड़चिड़ा बनाती चली जा रही थी।

वह मन-ही-मन कह रहा था—"मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं किसी को नहीं चाहता।" लेकिन कमला...उसकी क्या गति होगी, उसे ऐसा लगा कैसे भाग्य ने कमला को बलात् उसके गले में लाकर डाल दिया है। यह कमला बचपन में साथ-साथ खेलने वाली वही कमला है, जिससे वह रात-दिन लड़ा-झगड़ा करता था। जिसके साथ वह हंसा-खेला है, रोया-धोया है, मार-पीट भी की है। यह कमला तो उसकी बचपन की संगिनी है। इधर कुछ दिन के लिए वह उसके साथ से बिछुड़ गई थी। वही कमला

फिर उसके पास लौट आई है। यहां से, किस तरह भाई, यह उसे कुछ मालूम नहीं।
वह तो केवल यही देख रहा है कि कमला आ गई है।

हरेन्द्र सोचने लगा, सबसे उत्तर पाकर, सबके द्वारा त्यागी जाएगी, फिर इसे धरोहर के रूप में मेरे पास रख दिया गया है। इसका अब और कौन है ? कोई भी नहीं। माता-पिता या पति का घर—यही तो दो आश्रय होते हैं। इनमें से कोई इसे ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होगा। यह अनाथ है, असहाय है, आश्रयहीन है।... यह मेरी कमला है।

हरेन्द्र जितना ही सोचता जाता था उसे उतना ही यह देखकर आश्चर्य होने लगा था कि वे दोनों किस प्रकार अनजाने ही एक ही सूत्र में बंधकर परस्पर एक दूसरे के पास आ खड़े हुए हैं।

जैसे प्रलय के पश्चात् केवल दो प्रेमी उस एक टुकड़ा धरती आ खड़े हुए हैं, जिसके चारों ओर प्रलयकाल का जल धाड़ें भर रहा है।

बैठे-बैठे ही हरेन्द्र सपना-सा देखने लगा।

अरुण को अपने पास पाकर कमला को ऐसा लगने लगा जैसे कुछ देर पहले उसके सामने जो दुर्दिन और दुनिश्चन्ताएं मंडरा रही थी, उनका अब कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। जैसे वह उस अनिष्टकारी बवंडर के बाहर निकल आई है। अरुण के आन्तरिक उल्लास ने कमला की समस्त आशंकाएं दूर कर दी थीं।

अरुण सोचने लगा कि उसका बहनोई उसकी दीदी के कलंक की बात सुनाकर ही अपना दूसरा विवाह करना चाहता है, लेकिन उसकी दीदी तो सर्वथा निष्कलंक है। उसकी जो बदनामी फैलायी गई है, वह आदि से अन्त तक एकदम झूठी और मनगढ़न्त है। इसलिए उसने कमला के भय का असली कारण जो सतीश के दूसरा विवाह करने की अफवाह थी, उसकी चर्चा बहिन के आगे नहीं की।

अरुण के हाव-भाव और बातचीत में कमला को एक आश्वासन-सा मिल गया जिससे उसके मन में कोई आशंका ही नहीं रह गई। वह आन्तरिक उल्लास के साथ एक-एक करके सारी घटनाएं अरुण को सुनाने लगी, जो गंगा-स्नान के लिए आने के बाद से हुई थीं। जो उसके साथ बीती और आदर ने कमला के मन पर कितना गहरा प्रभाव डाला था, इसका पता उसे सर्वप्रथम अरुण के साथ बातें करने पर ही चला। कमला इस प्रकार उच्छवासित होकर क्षितीश की चर्चा, उसकी प्रशंसा कर रही थी कि सुनते-सुनते क्षितीश के प्रति अरुण के मन में भी आदर और भक्ति की भावना पैदा हो गई। उसके हृदय में भी इस अपरिचित व्यक्ति के प्रति गहरा स्नेह जाग उठा।

कमला ने कहा—"इतने दिनों से पराए घर में हूं लेकिन मुझे एक दिन भी यह

अनुभव नहीं हुआ कि यह पराया घर है, अपना नहीं। सच कहती हूं अरुण, यह क्षितीश दादा निश्चय ही उस जन्म के हमारे कोई आत्मीय हैं।"

इस सम्बन्ध में और कोई उत्तर न सूझ पड़ने के कारण अरुण ने बस इतना ही कहा, "क्षितीश बाबू सचमुच बहुत भले आदमी हैं।"

कमला ने कहा, "केवल भले ही नहीं हैं—भले आदमी तो बहुत मिलेंगे। लेकिन इस प्रकार के जो पराए होकर भी सगे से बढ़कर काम आएं, ऐसे आदमी संसार में कितने मिल सकते हैं भाई ?"

अरुण ने कहा, "सो तो है ही। देखो न, अपना सारा काम-काज छोड़ कर तुम्हारे लिए क्या नहीं किया उन्होंने ? तुम्हें लेकर सतीश बाबू के पास तक दौड़े गए। लेकिन दीदी, हरेन्द्र दादा ने भी तुम्हारे लिए बहुत कुछ किया है।"

कमला ने कहा, "अरे हरेन्द्र दादा उस समय कहां पता था भाई ? उन्हें तो क्षितीश बाबू ने ही खोज निकाला है।"

अरुण का मन कमला की बात से समहमत नहीं हो सका। उसने कहा, "यह तो ठीक है। लेकिन हरेन्द्र बाबू दादा ने कुछ कम नहीं किया है।"

कमला ने कहा, "हरेन्द्र दादा को तो करना ही चाहिए। वह हमारे गांव के आदमी जो ठहरे। एक प्रकार से आत्मीय ही हुए। वह नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? लेकिन प्रशंसा तो इन क्षितीश बाबू की करनी चाहिए जिनसे न तो कोई नाता था, न जान-पहचान ही थी।"

अरुण ने कहा—"इसे तो मैं भी मानता हूं। जब से क्षितीश बाबू को देखा है जब से वे मुझे भी अपने सगे से ही मालूम होते हैं।"

कमला ने कहा, "इसलिए तो मैं उन्हें क्षितीश दादा कहती हूं।"

अरुण ने उत्साहित होकर कहा, "अब से मैं भी उन्हें क्षितीश दादा ही कहूंगा।"

कमला को सहसा खयाल आया कि कितने दिन कह पाएगा। एक-दो दिन से अधिक तो यहां रहना नहीं है। उसके बाद क्षितीश दादा कहां होंगे और हम लोग कहां होंगे ? क्षितीश दादा अपने अनेक कामों में फंसकर मुझे भूल जाएंगे। लेकिन मैं तो उन्हें भूल नहीं पाऊंगी। इस प्रदेश में जहां बंगाली बहुत कम हैं, हर अवसर पर मुझे क्षितीश दादा की याद आया करेगी। उन्हें देखने के लिए बहुत जी चाहा करेगा, लेकिन देख नहीं पाऊंगी। रह-रहकर इन दिनों की याद आया करेगी।

सोचते-सोचते कमला के हृदय से एक लम्बी सांस निकल गई। आंखें गीली हो उठीं।

खाने की तैयारी हो चुकी थी। क्षितीश अरुण को भोजन करने के लिए ऊपर बुलाने आया। उसने ऊपर आकर देखा, कमला की आंखों में आंसू की बूंदें मोतियों

की भांति चमक रही हैं। कमला जब से इस घर में आई है, तब से कभी रोई भी है या नहीं, क्षितीश को इसका पता नहीं था। उसने कमला को आंखों में आंसू कभी नहीं देखे थे। आज ही पहले-पहले उसने कमला की आंखों में आंसू देखे थे। किसी को रोते देखकर मनुष्य दुःखी होता है, यह संसार की रीति है, मनुष्य का स्वाभाव है। लेकिन न जाने क्यों कमला की आंखों में आंसू देखकर क्षितीश को लगा कि कमला की आंखों के ये आंसू कितने सुन्दर हैं। यदि वह आंसुओं की दो बूंदें पा जाता तो अनमोल लाल की तरह उन्हें सोने की डिबिया में बन्द करके जीवन-भर निधि के समान सुरक्षित रखता। उसे लगा, जीवन की सारी क्षति जैसे आंखों की ये दो बूंद आंसू पूरी कर पाते।

कमला की अंखों से आंसू टपक पड़े, तब भी क्षितीश मुग्ध दृष्टि से उन्हीं आंखों की ओर, उसी प्रकार ताकता रहा। कमला का ध्यान टूट गया। वह कह उठी, "आओ, क्षितिश दादा।"

लेकिन क्षितीश का ध्यान नहीं टूटा। उसकी इस एकटक दृष्टि को देखकर कमला को ऐसा लगा जैसे उसकी दृष्टि उसके हृदय के अंधकार में उतरकर किसी गुप्त स्थान को टटोल-टटोलकर देख रही हो और वहां की सारी सामग्री को उलट-पुलट कर अस्त-व्यस्त कर रही हो। इससे कमला भीतर-ही-भीतर आतंकित हो उठी और जल्दी से उठकर खिड़की के पास जा खड़ी हुई।

हरेन्द्र और अरुण दोनों भोजन करने बैठे तो कमला ने कहा—"क्षितीश दादा, आप क्यों नहीं बैठते ?"

क्षितीश ने कहा—"पहले इन लोगों को भोजन कर लेने दो—मेरे अतिथि जो ठहरे।"

कमला ने कहा--"मेरे लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है कमला।"

लेकिन आज अपने हाथ से परोसकर क्षितीश को भोजन कराने के लिए कमला की बहुत ही इच्छा हो रही थी। उसने कहा, नहीं क्षितीश दादा, यह नहीं होगा। तुम्हें बैठना पड़ेगा।

क्षितीश ने कहा, "मेरे लिए तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों है कमला ? मैं तो बिना घर-बार का आदमी हूं। जहां कहीं, जब भी, जो कुछ भी मिल जाता है, वहीं खा लेता हूं।"

कमला ने कहा, "आज यह नहीं होगा। आज मैं तुमको अपने हाथ से परोस कर खिलाऊंगी।"

क्षितीश ने चकित होकर एक कमला के मुख की ओर देखा। फिर बोला, "तुम्हें आज यह क्या धुन सवार हुई है ?"

कमला ने व्यथित स्वर में कहा—"दादा, आज के बाद तो मैं कभी तुमको इस तरह सामने बैठाकर, अपने हाथ से परोसकर खिला नहीं सकूंगी।"

कहते-कहते उसका गला रुंध गया। गले को साफ करके फिर बोली, "कल मैं यहां से चली जाऊंगी।"

हरेन्द्र अब तक-चुपचाप बैठा था। उसने गम्भीर स्वर में कहा,—"कहां चली जाओगी ?"

कमला ने कहा—"कालीग्राम जाऊंगी।"

हरेन्द्र ने पूछा—"किसके साथ ?"

कमला—"अरुण के साथ। तुम भी चलो न हरेन्द्र दादा।"

हरेन्द्र ने संक्षेप में लेकिन अत्यन्त दृढ़ता के साथ कहा, "नहीं।" हर्ज होगा तो मैं अकेली ही अरुण के साथ चली जाऊंगी।"

हरेन्द्र ने वैसे ही स्वर में कहा—"नहीं, यह भी नहीं होगा।"

हरेन्द्र की यह "न" एक जोरदार धक्के की तरह कमला के हृदय में आकर लगी। वह स्तब्ध रह गई और बहुत देर तक कुछ कह नहीं सकी।

कमला ने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि हरेन्द्र उसके गांव जाने में कोई आपत्ति करेगा ? वह आपत्ति क्यों कर रहा है ? यह भी ठीक-ठीक उसकी समझ में नहीं आया। उसने विस्मित होकर पूछा—"मना क्यों करते हो हरेन्द्र दादा ?"

हरेन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया। कमला को एक प्रकार का भय-सा मालूम होने लगा। उसने जरा आगे बढ़कर, हरेन्द्र के पास जाकर कहा, "क्यों मना करते हो भैया ?"

उसने सोचा, "किसी तरह हरेन्द्र से जाने की अनुमति अभी ले लेनी चाहिए।"

हरेन्द्र ने कहा, "नहीं, तुम्हारा गांव जाना नहीं हो सकता।"

अरुण और कमला दोनों चकित होकर हरेन्द्र का मुंह ताकने लगे। उन्हें ऐसा लगा कि हरेन्द्र जैसे एक ऐसे स्थान पर जा खड़ा हुआ है, जहां से जो आज्ञा देगा उसका उन दोनों को पालन करना ही पड़ेगा।

कमला की इच्छा हुई कि हरेन्द्र के इस निषेध का प्रतिवाद करे। लेकिन वह अपने मन में इतनी शक्ति न संजो पाई। या यों कहो कि प्रतिवाद करने का उसे साहस ही नहीं हुआ। उसने एक बार प्रार्थना, अनुनय-विनय करनी चाही, लेकिन हरेन्द्र के चेहरे की ओर देखकर उसके मुंह से एक भी शब्द नहीं निकला। वह एकटक हरेन्द्र के मुंह की ओर ताकती रह गई। उसे लग रहा था—हरेन्द्र की दशा ठीक वैसी है जिस प्रकार भयानक तूफान के आने से पहले हवा की होती है। वह एक दम ठहर जाती है। उसे लगा, हरेन्द्र के हृदय में गहरी उथल-पुथल मची हुई है। कमला बचपन-से जानती थी कि हरेन्द्र की ऐसी हालत उसी समय होती है जब वह किसी बात पर अड़ जाता है। और तब किसी भी तरह उसे उसके इरादे से डिगाया नहीं जा सकता।

वह भयभीत होकर बोली, "तुम्हें आज हुआ क्या है हरेन्द्र दादा ? तुम इस तरह बिगड़े हुए क्यों हो ?"

हरेन्द्र ने लापरवाही से कहा, "नहीं, कुछ भी नहीं हुआ।"

क्षितीश ने भी देखा, हरेन्द्र आज अन्य दिनों वाला हंसमुख हरेन्द्र नहीं है। जैसे वह बिल्कुल ही बदल गया है। ऐसा क्यों हुआ ? यह बात उसकी समझ में किसी तरह नहीं आयी।

कमला ने हरेन्द्र की ओर से निराश होकर क्षितीश की ओर देखते हुए अधीरता से पूछा—"तुम क्या कह रहे हो ? मैं अरुण के साथ में घर जाऊं या नहीं ?"

क्षितीश ने कहा, "हरेन्द्र जब मना कर रहे हैं तब मेरी समझ से तुम्हारा अभी वहां जाना उचित नहीं है।"

न जाने क्यों कमला को यह भय हो रहा था कि हरेन्द्र उसके न जाने पर जोर देखकर अच्छा नहीं कर रहा। वह जितने अधिक दिन यहां रहेगी उसके लिए उतना ही बुरा होगा।

उसने क्षितीश की ओर प्रार्थना भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"लेकिन यह तो कुछ बताते नहीं कि क्यों मना कर रहे हैं ?"

हरेन्द्र ने जोर से कहा—"कारण बताऊं ? मैं मना कर रहा हूं वह...तुम अभी गांव नहीं जा सकोगी।"

यह सुनकर कमला को क्रोध आ गया। वह कह उठी—"मैं जरूर जाऊंगी। तुम मुझे रोकने वाले कौन होते हो ?"

इसके उत्तर में हरेन्द्र कोई बड़ी बात कहने वाला ही था लेकिन क्षितीश ने उसे अवसर नहीं दिया। वह बीच ही में बोल उठा—"नहीं कमला, हरेन्द्र ठीक ही कह रहे हैं। जब-तक तुम्हारे घर से कोई लेने न आए तब तक तुम्हारा जाना ठीक नहीं होगा। बचपना मत करो।"

क्षितीश के इन शब्दों मे ऐसा स्नेह भरा हुआ था कि कमला का मन एकदम नर्म पड़ गया। उसे लगा कि क्षितीश जो कह रहा है उसे वही करना चाहिए। लेकिन इसके साथ ही अपनी असहाय अवस्था देखकर उसे रुलाई आ गई। उसने रुआंसे स्वर में कहा,—"तो क्या मैं हमेशा यहीं पड़ी रहूंगी ?"

कमला के इस क्रन्दन भरे करुण स्वर से हरेन्द्र के हृदय को चोट पहुंची। उसने कहा—"यहां क्यों रहोगी, कमला मैं तुमको अपने यहां ले चलूंगा। जहां मैं रहूंगा, वहीं तुम भी रहना।"

कमला ने कहा, "सो तो एक ही बात है। फिर यहीं पड़े रहने में मेरी क्या हानि है ?"

हरेन्द्र ने फिर सिर हिलाकर कहा, "नहीं, नहीं यह घर पराया है। यहां तुम्हें नहीं रहना पड़ेगा।"

कमला ने चोट खाकर कहा, "छिः-छिः यह क्या कह रहे हो हरेन्द्र दादा। ऐसी बात मुंह से मत निकालो। क्षितीश दादा क्या मेरे लिए पराए हैं ?"

हरेन्द्र को इसका कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ा। कमला के लिए क्षितीश ने अब तक जो कुछ किया है, उसके देखते हुए तो कमला का कहना ठीक ही है। लेकिन कमला ने ज़िस स्वर में और जिस ढंग से यह बात कही, वह हरेन्द्र को अच्छी नहीं लगी। इसके अतिरिक्त हरेन्द्र को यह बात भी खटकी कि क्षितीश के एक बार कहने से ही कमला ने घर जाने की हठ छोड़ दी। वह फिर गुम-सुम होकर बैठ गया।

अरुण ने कहा—"तो मैं कल सवेरे की गाड़ी से घर लौट जाऊं ? और जाकर माता जी और पिता जी को खबर दे दूं ?"

क्षितीश ने कहा, "यही अच्छा होगा।"

हरेन्द्र ने कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन सवेरे अरुण दीदी से विदा मांगने गया। तब उसने कहा, "भाई, अरुण तुझे मेरा एक काम छिपाकर करना होगा। कोई भी जानने न पाए।"

अरुण ने कहा—"क्या ?"

कमला ने एक बन्द लिफाफा अरुण के हाथ में देकर कहा, "यह चिट्ठी तू अपने हाथ से दे आना।"

अरुण—"किसको ?"

कमला—"पता पढ़कर देख ले।"

अरुण ने देखा—लिफाफे पर लिखा है—श्रीकुल सतीश चन्द्र राम की सेवा में।

अरुण पहले तो घबरा उठा और बहिन के चेहरे की ओर देखता रहा। कुछ देर बार सिर झुकाकर बोला, "अच्छा।"

20

दुर्गा देवी की सलाह के अनुसार सतीश ने अपने ससुर हरनाथ मैत्र को तार भेज दिया और उत्तर की राह देखने लगा। लेकिन उस समय मैत्र महाशय योगेन्द्र नाथ के साथ कलकत्ता गए हुए थे। इसलिए सतीश का टेलीग्राम लौट आया। लौटे हुए टेलीग्राम का फार्म हाथ में लिए आ रहे सतीश का चेहरा देखते ही दुर्गा देवी समझ गईं कि समाचार शुभ नहीं है।

दुर्गा देवी ने बेटे से कुछ और न पूछकर कहा—"भैया, मैं जरा अपने गांव जाऊंगी। किसी तरह मुझे वहां भेज सकते हो ?"

सतीश ने कुछ सोचकर कहा, "भेज सकता हूं। यहां घर ही पर जो शिशिर बाबू रहते हैं, उनकी पत्नी की तबीयत बहुत खराब है। उसे देखने वह अपनी मां के साथ कलकत्ता जा रहे हैं। तुम उनके साथ चली जाओ। वे तुम्हें जगदीशपुर स्टेशन पर उतार देंगे। लेकिन तुम ग़ांव क्यों जा रही हो ? यहां तो खूब अच्छी तरह...?"

दुर्गा देवी बीच में ही बोल उठीं, "नहीं, नहीं, मेरे गए बिना काम नहीं चलेगा। मैं एक अच्छी लड़की देखकर तेरा दूसरा ब्याह करूंगी।"

सतीश को जब से कमला की बदनामी के सम्बंध में बिना नाम का पत्र मिला था, तभी उसे उसके दिमाग से संन्यास लेकर संसार को त्याग देने की इच्छा निरन्तर चक्कर लगा रही थी। इस सम्बन्ध में वह कई बार अपने गुरुदेव स्वामी आत्मानन्द के साथ भी विचार-विमर्श कर चुका था। और एक प्रकार से उसका संसार को त्यागना निश्चित हो चुका था। लेकिन आज अचानक जब उसे पता चला कि उसकी पूज्यनीया माता उसकी गर्दन एक बार फिर विवाह की फांसी के फंदे मे फंसना चाहती हैं, वह बहुत ही चिन्तित हो उठा। उसने दुर्गा देवी से तो कुछ नहीं कहा, लेकिन उसी समय दोपहर को उस कड़ी धूप में ही सीधा गुरुदेव के ठिकाने की ओर चल दिया।

उसके गुरुदेव इस समय गोमती नदी के किनारे मोती महल के पास वाले एक-छोटे-से पक्के मकान में अखाड़ा जमाए हुए थे। यह मकान घाट जाति का ही एक हिस्सा था, जिसे घांट के साथ ही किसी धर्म-किसी व्यक्ति ने बनवाया था।

लखनऊ रहने वाले प्रवासी बंगाली डॉक्टरों, वकीलों और सरकारी कर्मचारी भक्तों तथा चेलों की कमाई से ही गुरु जी का खर्च मजे में चल जाता है और वे सुखपूर्वक निश्चिंत रहकर अपना समय भगवान के भजन या भक्तों को उपदेश देने के लिए व्यतीत करते हैं।

दोपहर की धूप मे जलता-भुनता हुआ सतीश गुरुदेव की सेवा में उपस्थित हुआ। गुरु जी उस समय भोजन करने के उपरान्त कोमल मृग चर्न के बिछौने पर अधलेटे भागवत की पोथी का सिरहाने तकिया लगाए, आंखें मूंदे नित्य-नैमित्य समाधि में लीन थे। विवश होकर सतीश को बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ी।

अखाड़े के बरामदे के सामने ही गोमती नदी बहती है। उस पार दूर तक मैदान दिखाई देता है। उस मैदान में कुछ दुबली-पतली गाय, भैसें और बकरियां आदि खोज-खोजकर सूखी घास चरती हुई दिखाई दे रही हैं। उस दृश्य को देखते-दाखते अपने गांव की, अपने घर की और वहां कुछ दिन पत्नी सहित रहने के सुख-सौभाग्य की यादआई। सुख के वे दिन चलचित्र के दृश्यों की भांति उसकी आंखों के आगे आते

चले गए। इसी गड़बड़ी में उसकी संन्यास लेने की योजना गोमती के प्रवाह में न जाने किधर बह गई। इसी बीच गुरु जी की समाधि खुल गई। छाता और जूता बाहर छोड़कर सतीश अन्दर चला गया।

उस समय तीसरे पहर के तीन बज रहे थे।

सतीश ने दूर से ही गुरु जी को एक लम्बी दण्डवत की। उसके बाद वह धरती पर बैठ गया।

यहां पर गुरु जी का कुछ हुलिया बता देना उचित होगा। वे भी बंगाली थे। लेकिन किस जाति के थे यह किसी को मालूम नहीं। अब तो—"हरि को भजे सो हरि को होय..." थे। उनका रंग आबनूस से भी काला था। सिर चौड़ा, मुंह लम्बा, कद ठिगना, आंखें छोटी-छोटी, गोल-गोल। उनमें सांचे की दमक की लाली। और घनी दाढ़ी-मूंछें शहद की मक्खियों के लटकते हुए छत्ते के समान दिखाई देती थीं। यही उनका हुलिया था।

गुरु जी ने नींद की खुमारी से भरी आंखों से सतीश की ओर देखकर कहा,—"आओ, बैठो सतीश बाबू।"

सतीश ने दोनों हाथ जोड़कर उदास स्वर मे विनीत भाव से कहा, "बड़े संकट में फंस गया हूं स्वामी जी। मां जी मेरा दूसरा विवाह करना चाहती हैं। और इसी उद्देश्य से लड़की देखकर विवाह निश्चित करने देश जा रही हैं।"

गुरु जी ने एक बार "हूं" कहा। और एक सांस छोड़कर आसन से उठने लगे। यह देखकर सतीश ने जल्दी से उठकर उनके दोनों पांव पकड़ लिए और बोला—"मैं अब क्या करूं स्वामी जी ? मुझे आप ही का भरोसा है।"

गुरुदेव ने आकाश की ओर छठी हुई घने काले बालों वाली भौंहें जरा-सी उठाकर कहा,—भैया, जगत मायामय है। यहां आशंकाओं का अन्त नहीं है। गृहस्थी भारी झंझट है। उसमें दुःख-कष्ट की भी कोई सीमा नहीं है। मैं तो तुमसे अब से यही कह रहा हूं कि सब कुछ छोड़-छाड़कर गृहस्थी से निकल जाओ। देर मत करो।"

सतीश ने मुंह बनाकर कहा, "लेकिन मैं तो दो समस्याओं के बीच फंस गया हूं। इधर माता जी की आज्ञा है कि विवाह करो, इधर प्रभु कह रहे हैं कि संसार का त्याग कर दो। मैं क्या करूं ? किसकी आज्ञा का पालन न करूं ?"

जिस स्वर में गुरुदेव ने ये शब्द कहे, उससे उनके भीतरी क्रोध का स्पष्ट आभास मिल गया था। सतीश ने और भी दयनीय मुद्रा में कहा, "यह कैसे हो सकता है ? मैंने तो संसार त्यागने का निश्चय कर लिया है। लेकिन—

गुरु जी ने एक लम्बी जम्हाई लेकर चुटकी बजाते हुए कहा—"यह "लेकिन" ही तो सर्वनाश की जड़ है। इस 'लेकिन' और 'अगर-मगर' के पीछे लगे रहने के कारण ही तो मैंने बहुत कम लोगों को तीन जन्म से पहले मुक्ति प्राप्त करते देखा है।"

सतीश जी ने कहा, "हां, लगभग तीन जन्म ही लग जाते हैं।"

सतीश ने एक लम्बी सांस छोड़कर कहा, "तब तो लगता है कि मेरी मुक्ति की आशा बिल्कुल ही नहीं है। मेरा तो विचार है कि "तीन तिक्के नौ"—नौ जन्मों में भी शायद ही इस 'किन्तु-परन्तु' से पीछा छूटे।"

आत्मानन्द ने अत्यधिक गम्भीर होकर कहा, "गुरु के प्रति भक्ति और निष्ठा रखकर, उसकी आज्ञा का पालन करते हुए चलने पर एक ही जन्म में मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं।"

सतीश ने अत्यन्त कातर स्वर में कहा, "मन में यह 'किन्तु' आप-ही-आप पैदा होती हैं। इसका क्या इलाज है गुरुदेव ? अन्यथा मैं तो आपकी आज्ञा को पूर्ण रूप से पालन करके चलने को तैयार हूं।"

आत्मानन्द ने पूछा, "किस विषय में तुम्हें यह 'किन्तु' की बाधा सताती है ?"

सतीश कहने लगा, "बहुत-सी बातों में यह 'किन्तु' पैदा होती है। सबसे पहले तो अपनी पत्नी के सम्बन्ध में ही मेरे मन में 'किन्तु' पैदा होती है। वह, जो बिना नाम की चिट्ठी आई थी, उस पर मुझे पूरा-पूरा विश्वास नहीं होता। क्योंकि मैं अपनी पत्नी के चरित्र को भली-भांति जानता हूं। दूसरी 'किन्तु' पैदा होती है—दूसरा विवाह करने के सम्बन्ध में। तीसरी 'किन्तु' है—घर छोड़कर वन जाने में। क्या घर में बैठकर साधना नहीं की जा सकती ? सबसे कठिन 'किंन्तु' है—और कमला का त्याग करने का अर्थ है अपने हाथ में अपना गला घोंटना।"

बेचारा सतीश कड़ी धूप में जलता-भुनता हुआ आया था और गुरुदेव ठंडक में घर के भीतर पड़े सो रहे थे। इसीलिए सतीश के उत्तेजित हो जाने पर भी गुरुदेव ठंडे ही पड़े रहे। उन्होंने अत्यन्त कोमल स्वर में अपने एक शिष्य को पुकारा—"वत्स सुधीर, तनिक यहां तो आओ।"

गेरुआ रंग का एक लम्बा-चौड़ा, घुटनों तक नीला चोगा-सा गले मे डाले, घुटे सिर वाले चश्माधारी युवक ने प्रवेश किया।

आत्मानन्द ने सतीश की ओर संकेत करके कहा, "धीरानन्द (इसी का नाम पहले सुधीर था) इन्हें कुछ प्रसाद खिलाकर ठंडा पानी पिलाकर शान्त करो। तब तक मैं जरा हाथ-मुंह धो आऊं।"

सतीश ने गुरु जी की खड़ाऊं उठाकर आगे बढ़ा दीं। स्वामी जी खड़ाऊं पहनकर खट-खट करते मकान के भीतर चले गए।

सतीश ने एक लम्बी सांस भर कर धीरानन्द की ओर देखते हुए कहा, "भाई, मेरे भाग्य में मुक्ति नहीं है। गुरुजी कहते हैं, कम-से-कम तीन जन्म लेने पड़ेंगे। तब कहीं जाकर मुक्ति नसीब होगी।"

धीरानन्द ने हंसकर कहा—"और अगर मैं ऐसा उपाय बता दूं कि एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाए तो तुम मुझे क्या इनाम दोगे ?"

सतीश ने अधीर होकर उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा, "मेरे पास और क्या है भाई, जो तुम्हें दूं ? बस, जीवन भर तुम्हारा दास बना रहूंगा।"

सतीश की पीठ ठोक कर धीरानन्द ने कहा, "अच्छा पहले चल कर कुछ जलपान कर लो। फिर बताऊंगा।"

सतीश ने कहा, "नहीं भाई, मुझे भूख-प्यास बिल्कुल नहीं है। घर से जलपान करके आया हूं। तुम मुझे उपाय बताओ।"

धीरानन्द ने कहा—"तुम वृन्दावन चले जाओ। वहां देखोगे कि मोर, बन्दर आदि सब एक ही जन्म में मुक्त हो जाते हैं। उनका दूसरा जन्म होता ही नहीं है। न मानो तो वैष्णवों के ग्रन्थ देख लो।"

सतीश ने गम्भीर होकर कहा, "लेकिन गुरुजी तो कहते हैं कि हिमालय में जाकर रहो और वहीं एकान्त साधना करो। अच्छा भाई, तुम्हें क्या लगता है कमला और मां को छोड़कर यदि मैं चला जाऊं तो क्या उनके प्रति अन्याय नहीं होगा ? मुझे पाप नहीं लगेगा ?"

धीरानन्द ने मुस्कुरा कर कहा, "यदि नौकरी से एकदम त्याग-पत्र देकर चले जाओगे तो अवश्य ही अन्याय होगा। मेरी राय है कि तुम पहले बीमारी की छुट्टी लेकर कुछ दिन कहीं अकेले जाकर रहो तो अनेक प्रकार की दुश्चिन्ताओं से मुक्ति मिल जाएगी। साथ ही तुम्हारा दिमाग भी ठंडा हो जाएगा।"

सतीश उत्साह के साथ बोल उठा, "अच्छी बात है। तुम्हारी सलाह मुझे पसंद है। मैं आज ही छुट्टी की दरख्वास्त देकर मां को घर भेज दूंगा।"

धीरानन्द से हंसकर कहा, "जो कुछ निश्चय करना है यहीं बैठकर करो। घर जाओगे तो फिर मन में वही 'किन्तु' जाग उठेगी। अच्छा चलो, चलकर कुछ खा-पी लो।"

इस बार सतीश ने इन्कार नहीं किया। सिर नीचा किए सोच में डूबा हुआ धीरानन्द के पीछे-पीछे उसकी कोठरी की ओर चल दिया।

21

सतीश को तो पहला विवाह करने में ही आपत्ति थी। केवल कमला को अपनी आंखों से देख लेने के कारण उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर ही उसने कमला के साथ विवाह कर लिया था। दुर्गा देवी उसे बड़ी कठिनाई से विवाह बन्धन में बांध

सकी थीं। लेकिन बन्धन ढीला होते ही सतीश का पुराना वैराग्य का रोग फिर उभर आया। दुर्गा देवी इस बात को अच्छी तरह जानती थीं कि स्वामी आत्मानन्द का उपदेश और कमला की याद सतीश के धर्म-दीप की बत्ती को बराबर उकसाती जा रही है। इसलिए वह दोबारा विवाह का फन्दा गले में डालने के लिए राजी नहीं होगा। लेकिन उन्हें ये अटल विश्वास था कि लखनऊ के बजाय अगर वह अपने गांव जगदीशपुर चली जाएं तो अवश्य ही उसका कुछ-न-कुछ उपाय कर लेंगी। इसलिए उन्होंने सतीश के लौटने की प्रतीक्षा न करके अपने कपड़े-लत्ते बक्स में रखकर जाने की तैयारी कर डाली।

सांझ हो गई। शहर में बत्तियां जल गयीं। सतीश के आस-पास रहने वाले नौकरी पेशा बाबू लोग अपने-अपने दफ्तरों से लौटकर, जलपान करके, कपड़े बदलकर, घूमने-फिरने या अपने किसी मित्र के यहां गप-शप लड़ाने या मन बहलाने के लिए चले गए लेकिन सतीश अभी तक घर नहीं लौटा था। दुर्गा देवी दूसरी मंजिल की सलाखों वाली खिड़की खोलें खड़ी थीं और बड़ी अधीरता से सतीश की राह देख रही थीं।

उसी समय सुधीर उर्फ धीरानन्द ने आकर कहा, "मां, क्या आप जाने की पूरी तैयारियां कर चुकी हैं ? घर ही के शिशिर बाबू स्टेशन चले गए हैं। चलिए, मैं आपको उनके पास पहुंचा आऊं।"

दुर्गा देवी ने अवाक् होकर कहा, "क्या मेरा सतीश नहीं आएगा ? उससे मिले बिना...?"

सुधीर ने अपने गेरुआ रंग चोगे की जेब में एक लिखा हुआ मुड़ा-तुड़ा काग़ज निकाल कर दुर्गा देवी के हाथ पर रखकर कहा, "लीजिए, पढ़ लीजिए। सतीश ने क्या लिखा है।"

दुर्गा देवी ने कहा, "तुम ही पढ़कर सुना दो भैया। मैं पढ़ नहीं पाऊंगी। वह कुशल से तो है न ?"

सुधीर पत्र पढ़ने लगा। उसमें लिखा था–

"मां, तुम गांव क्यों जा रही हो, मैं जानता हूं। लेकिन तुम निश्चित रूप से समझ लो कि मैं अब विवाह नहीं करूंगा। तुम्हारी आज्ञा से मैंने पहला विवाह कर लिया था। केवल तुम्हारी आज्ञा से ही–कहना झूठ होगा। मैं विवाह से पहले ही तुम्हारी बहू को देख आया था और उस पर रीझ गया था। खैर ! मेरी इच्छा और तुम्हारा प्रयत्न पूरा हो गया। लेकिन विधाता की इच्छा ही कुछ और थी। उसने फिर मुझे किसी बहाने से इस बन्धन से मुक्त कर दिया। ये कई वर्ष जैसे किसी उपन्यास के कुछ परिच्छेद थे। जिन्हें मैं उलट-पुलटकर पढ़ रहा था। मेरी

धारणा है कि अब जीवन के वास्तविक लक्ष्य अर्थात् परमार्थ की ओर देखने का समय आ गया है और इसके लिए संसार को त्याग देने की आवश्यकता है। मेरे गुरुदेव भी यही बात कहते हैं। इसलिए उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं हिमालय पर्वत पर एकान्त वास करने और साधन-भजन करने जा रहा हूं। मुझे क्षमा करना। यह मेरे गुरुभाई धीरानन्द हैं। यह तुम्हें स्टेशन ले जाकर शिंशिर बाबू को सौंप आएंगे। मैंने सारी व्यवस्था कर दी है।"

आपका अधम सेवक सतीश

इतनी लम्बी चिट्ठी में केवल दो ही बातें दुर्गा देवी समझ पाईं—हिमालय और भजन साधना और उन्होंने यह भी समझ लिया कि सतीश अब लौटकर नहीं आएगा और उन्हें गांव जाना ही पड़ेगा। दुर्गा को सपने में भी यह आशंका नहीं थी कि यह इस तरह भाग जाएगा। उन्होंने आंचल से आंखों के आंसू पोंछ डाले और धीरानन्द के साथ चलने के लिए तैयार हो गयीं। धीरानन्द ने एक इक्का बुलाकर दुर्गा देवी का सारा सामान उस पर लादकर मकान के दरवाजे में ताला लगा दिया और फिर दुर्गा देवी के साथ इक्के में बैठकर स्टेशन की ओर चल दिया।

सतीश की प्रकृति आरम्भ से ही वैराग्य की ओर झुकी हुई थी। अचानक कमला को देखते ही उस पर उसके सौन्दर्य का नशा छा गया था। जब से कमला ब्याह कर उसके घर आई थी तभी से सतीश का हृदय वैराग्य के बदले प्रेम का सागर बनकर लहराने लगा था। धीरे-धीरे उसके हृदय सागर की तरंगें संसार रूपी किनारे की ओर अर्थात् गृहस्थी के तट की ओर ढलती हुई चली गयीं। दुर्गा देवी ने जितना प्यार बहू को दिया था उतना और किसी ने नहीं दिया। लेकिन आज उसी लक्ष्मी शरीर की सुन्दरी, गुणवती बहू कमला का चन्द्र मुख सामने से हट जाने के कारण, सतीश के हृदय में लहराने वाले प्रेम के सागर में भाटा आ गया था और उसका हृदय-सागर वैराग्य के तट की ओर बढ़ जाने का प्रयत्न करने लगा था। लड़के के गले में दूसरी बहू बांधनें में अगर जरा-सी भी देर हो गई तो वह उन्हें छोड़कर भाग जाएगा। यही सोचकर दुर्गा देवी कमला के सूने आसन पर एक और गुण तथा रूप सम्पन्न युवती को लाकर बैठा देने के लिए उतावली हो उठीं। उन्होंने एकदम गांव की ओर दौड़ लगा दी। उन्होंने सतीश को समझा-बुझाकर राजी करने या उसके आने की भी प्रतीक्षा नहीं की।

इधर सतीश का यह हाल था कि कमला की बदनामी का समाचार देने वाली बिना नाम वाली चिट्ठी पर उसे रत्ती भर भी विश्वास नहीं हुआ था। वह निश्चित रूप से जानता था कि कमला से ऐसा काम नहीं हो सकता। वह मन-ही-मन बहुत दुःखी था। लेकिन फिर भी कभी-कभी उसके हृदय के भीतर से जैसे कोई कह उठता था कि

जो कुछ होना था सो तो हो ही गया। अब बेकार विलम्ब करने की, सांसारिक बन्धनों में पड़े रहने की क्या आवश्यकता है ? मोह-ममता के बन्धनों को तोड़कर घर से निकल भागना ही अब अच्छा है। जो बेड़ी अपने पैरों में शौकिया डाली थी, वह जब थी, तब भी। लेकिन अब तो वह बन्धन आप-ही-आप खुल गया है। तब यही समझना ठीक है कि यह सब गुरुदेव की कृपा का ही फ़ल है। इसलिए मुझे सुयोग आ गया है। सावधान, अब फिर संसार के बन्धनों में मत फंसना।

कभी-कभी यह भी खयाल आता था कि क्या कमला वास्तव में दोषी है। एक बिना नाम की चिट्ठी पर विश्वास करके उसे जीवन भर के लिए त्याग देना—उसके जीवन को बर्बाद कर डालना क्या उचित होगा ? कभी-कभी वह यह भी सोचता था कि अच्छी तरह जांच करने के लिए उसका एक बार कालीग्राम जाना, हिमालय जाने की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक है। लेकिन तभी मन में यह डर भी पैदा हो जाता है कि अगर यह अफ़वाह सच निकली तो...?

सतीश का मन इसी प्रकार कभी हिमालय की ओर लपकता था तो कभी कालीग्राम की ओर लपकता था।

उधर पंजाब मेल यथा समय दुर्गा देवी को जगदीशपुर स्टेशन पर उतार कर चली गई। उन्हें अपने घर पहुंचे एक सप्ताह से अधिक हो गया, फिर भी सतीश हिमालय नहीं जा सका। वह जहां-का-तहां रह गया। लेकिन उसका मन मुक्ति के लिए तड़प रहा था। उसका चेहरा देखकर उसके ऑफिस और गुरुदेव के अखाड़े के सभी लोग अच्छी तरह इस बात को समझ गए कि छुट्टी का प्रार्थना-पत्र स्वीकृत हो जाने पर सतीश कहां जाएगा, उत्तर-पूर्व को या दक्षिण-पूर्व को इस सम्बन्ध में सतीश के परिचित लोगों में कालें-वदी जाने लगीं। सतीश के सामने भी और उसके पीठ पीछे भी।

22

सतीश का मन जिस समय इस प्रकार अस्थिर हो उठा था, उसी समय अरुण सवेरे उठकर सतीश के नाम कमला की दी हुई चिट्ठी जेब में रखकर क्षितीश के पास चाय के टेबल पर आ बैठा। इधर-उधर की बातें, अखबार के समाचारों की चर्चा, चाय का प्याला, सिगरेट का धुआं, बाहर की बूंदाबांदी और बन्द कमरे की उमस के बीच क्षितीश ने अरुण से पूछा—"क्या बरसात में ही अपने गांव जाओगे ?"

अरुण ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, जरा हरेन्द्र बाबू से मिल लूं, तब जाऊंगा।"

क्षितीश ने पूछा, "लखनऊ जाओगे ? वहां तो सतीश बाबू हैं नहीं। हम लोग

उस दिन लखनऊ हो आए हैं। वह अपनी पत्नी की बीमारी का बहाना करके अपनी मां को लेकर जगदीशपुर चले गए हैं।"

अरुण ने चाय का प्याला मुंह से हटाकर टेबल पर रखते हुए कहा, "मैं लखनऊ नहीं, जगदीशपुर ही जा रहा हूं। सात बजकर उन्चास मिनट पर गाड़ी जाती है। जाकर दीदी से कह आऊं।"

अरुण कमला से मिलकर लौट आया। हरेन्द्र भी कमला के पास से उठकर क्षितीश के पास आ गया था।

अरुण ने क्षितीश के पास पहुंचकर हरेन्द्र से कहा, "दादा, मैं जा रहा हूं।"

इसके बाद वह चट्टी चटकाते हुए चल दिया। क्षितीश ने पल भर चुप रहकर हरेन्द्र से कहा, "अरुण की क्या सतीश बाबू से भेंट हो सकेगी ?"

हरेन्द्र ने कहा—"हो भी सकती है ?"

क्षितीश ने पल भर अन्यमनस्क रहकर बोला, "न जाने क्यों मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इस बार अरुण को भी निराश लौटना पड़ेगा।"

हरेन्द्र ने कोई उत्तर नहीं दिया। मन-ही-मन न जाने क्या सोचने लगा।

सवेरे सात बजकर उन्नास मिनट पर कलकत्ते से चलने वाली पैसेंजर ट्रेन लगभग दस बजे अरुण को जगदीशपुर स्टेशन पर उतार कर चली गई। अरुण अपना बैग और छाता प्लेटफार्म के लकड़ी के बेंच के सहारे रखकर गाड़ी की तलाश में बाहर फाटक की ओर चल दिया।

उसने देखा, तमाशा खेलने वाली एक यामा मंडली के आदमी चार-पांच गाड़ियों पर दखल जमाए पहले से ही वहां डटे हैं। वहां केवल यही गाड़ियां थीं। उन गाड़ियों में उनका साज, सामान, बक्से हारमोनियम, तबला आदि ठसाठस भरे हुए थे। उन आदमियों में से कोई पान चबा रहा है, कोई बीड़ी-सिगरेट फूंक रहा है, कोई वंशी बजा रहा है, कोई गुनगुना रहा है। कोई हंसी-मजाक में व्यस्त है और कोई गाड़ीवान को जल्दी चलने के लिए डांट रहा है। उन विभिन्न आकृति-प्रकृति के लोगों को देखकर अरुण को बड़ा आश्चर्य हुआ।

कुछ देर बाद अरुण ने देखा, उसका परिचित एक कुली ऐसे पिलेन गैस की बत्ती सिर पर रखे चला आ रहा है। जब उसने अरुण को देखा तो उसे पास बुलाकर उसने पूछा, "कालीग्राम जाओगे क्या बाबू ? लाओ अपना बैग मुझे दे दो। गाड़ी तो कोई खाली नहीं है।"

अरुण ने कहा, "मैं तो जगदीशपुर जाऊंगा।"

इतना कहकर बैग उसने कुली को थमा दिया और बोला—"सतीश बाबू का घर तो तुम्हें मालूम होगा। वहीं चलो ?"

कुली ने कहा—"घर क्यों नहीं जानता ? लेकिन सतीश बाबू तो घर हैं नहीं। बस उनकी मां हैं।"

इतना कहकर कुली तेज चाल से आगे बढ़ने लगा।

पहले तो अरुण ने सोचा, अब जाना बेकार ही है लेकिन फिर उसी ओर चल दिया। सोचा, सतीश की मां से ही मिल लूं। न होगा तो उधर से ही कालीग्राम चला जाऊंगा।

भादों के दिन थे। आकाश में घटाएं छाई हुई थीं। लेकिन हवा का कहीं नाम-निशान भी नहीं था। यामा वाली गाड़ियां सड़क पर अत्यधिक धूल उड़ाती चली जा रही थीं। अरुण मन-ही-मन उन्हें गालियां देता और धूल फांकता चला जा रहा था।

उसका कुली सड़क छोड़ कर पगडंडी से किधर चला गया, इसका कुछ पता नहीं था। वह दिखाई ही नहीं दे रहा था। उसी समय सामने वाली गाड़ी का एक पहिया टूट गया और वह सड़क पर ही ढेर हो गई। सारा सामान गाड़ी से बाहर इधर-उधर निकल गया। गाड़ी के भीतर पान की पीक से रंगे हुए मैले कुर्ते पहने कई छोकरे और मंडली का मालिक भी धूल फांकते हुए धरती पर लोटने लगे। अरुण ने इस दुर्घटना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया और अपनी राह चला गया। अन्त में धूल और पसीने से लथपथ चेहरा लिए अरुण गांव के भीतर पहुंचा।

गांव में केवल एक ही रास्ता है। उसके दोनों ओर बस्ती है। बाजार की दुकानें, हनुमान और शिव के पुराने मन्दिर, स्कूल, अस्पताल, यहां तक कि एक खैराती डिस्पेंसरी भी है जिसमें कुनैन के बदले मैली-मैदा पुड़ियों में बांधकर मलेरिया के रोगियों को अक्सर दे दी जाती है। एक जगदीशपाल पब्लिक लायब्रेरी और उसी में क्लब भी है। जिसमें कभी-कभी सभा, प्रबन्ध-पाठ, पंचायती देवी-पूजा, कार्पोरेशन की मीटिंग, मजिस्ट्रेट साहब का स्वागत, यामा, शौक़िया थिएटर, सिनेमा और कभी-कभी नारी स्वातन्त्र्य के समर्थन में व्याख्यान आदि हुआ करते हैं।

चलते-चलते अरुण उसी लायब्रेरी के पास सतीश के घर पहुंच गया। कुली उसका बैग लिए वहां खड़ा था।

अरुण ने किवाड़ खटखटाकर एक बार सतीश की मां को पुकारा। लेकिन बहुत देर तक प्रतीक्षा करने और दो-तीन बार पुकारने पर भी जब किसी ने उत्तर नहीं दिया और न कोई दरवाजा खोलने ही आया तो अरुण ने कुली की ओर देखकर कहा, "तू तो कहता था कि मां घर में ही हैं ?"

कुली ने उत्तर दिया—"घर में तो हैं, लेकिन शायद बुखार में बेहोश पड़ी हैं।"

"तो अब तक बताया क्यों नहीं गधे ?"

यह कहकर अरुण ने धक्के से किवाड़ खोल दिए और भीतर चला गया।

भीतर आंगन के चबूतरे पर बैग रखकर कुली को मजदूरी देकर अरुण ने कहा, "बाहर जाकर अस्पताल से डॉक्टर बाबू को तो बुला ला।"

कुली चला गया।

अरुण उस अंधेरी कोठरी के भीतर चला गया जिसमें दुर्गा देवी लेटी हुई थीं। अरुण ने जाकर उन्हें पुकारा और पास जाकर उनके पांव छुए।

दुर्गा देवी ने चौंककर कहा, "कौन सतीश ?"

अरुण ने उनके पास बैठकर कहा, "मैं सतीश नहीं, अरुण हूं।"

"अरुण ?" कहकर दुर्गा देवी ने अपना दुर्बल हाथ अरुण की गोद में रख पूछा, "घर पर सब कुशल है बेटा ?"

दुर्गा देवी इतना कहकर ही चुप हो गईं। आंसू की एक बूंद उनकी आंखों की छोर से लुढ़क पड़ी।

अरुण ने जल्दी से कहा, "तुम्हारी बहू सकुशल है। चिन्ता मत करो। गंगा-स्नान करने गई थी। हमारे गांव के हरेन्द्र दादा ने देखा, रास्ते में बैठी रो रही है। तब वह अपने मित्र क्षितीश के साथ उन्हें वहां से अपने डेरे पर ले गए। वहां पर वह बीमार हो गई। हरेन्द्र दादा और क्षितीश दादा ने डॉक्टर बुलाकर उनका इलाज कराया, जिससे उनकी जान बच गयी।"

दुर्गा देवी ने अरुण की ओर देखकर पूछा, "अब वह कहां है ?"

अरुण ने बिना किसी संकोच के कह दिया, "दीदी अब मेरे पास हैं।"

यह कहते-कहते अरुण चादर से अपना मुंह पोंछने लगा।

दुर्गा देवी ने एक सांस लेकर पूछा—"तो वह अफवाह ?"

"सब झूठ है।" कहकर अरुण जल्दी से उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं जरा बाहर देख आऊं। शायद डॉक्टर बाबू आ गए।"

दुर्गा देवी के सामने बैठना ठीक न समझकर ही अरुण जल्दी से वहां से खिसक गया और उनके पास तभी गया जब डॉक्टर आ गए। वह डर रहा था कि दुर्गा देवी अगर कमला की बदनामी की अफवाह के बारे में अधिक पूछताछ करेंगी तो वह कोई उत्तर न दे सकेगा।

डॉक्टर ने रोगिणी को देखकर कहा—"टायफाइड बुखार है। सेवा के लिए एक नर्स रखना आवश्यक है।"

डॉक्टर ने यह भी बताया कि गांव में कुछ बदनामी फैल जाने के कारण पास-पड़ोस का कोई आदमी इनके पास तक खड़ा होना नहीं चाहता। सेवा करने की बात तो दूर है।

डॉक्टर की बात बीच में ही काटकर अरुण बोल उठा, "इस चर्चा को इस समय जाने दीजिए। आज की रात भर के लिए आप अपनी पछाहीं दासी को इनके पास भेज दीजिए। मैं आज ही कलकत्ता जा रहा हूं, नर्स लाने के लिए। कल निश्चित ही लौट आऊंगा। यदि तब तक आप इनकी देख-रेख कर सके तो बड़ी कृपा होगी।"

"अवश्य देख-रेख रखूंगा।" यह कहकर डॉक्टर बाबू चले गए।

वे राम-कृष्ण मिशन के आदमी थे और उसी मिशन की ओर से जो अस्पताल या सेवाश्रम इस गांव में था, उसके डॉक्टर थे। कोई पेशेवर डॉक्टर होता तो शायद अरुण की प्रार्थना पर ध्यान ही नहीं देता।

डॉक्टर को विदा करके अरुण ने दुर्गा देवी के पास पहुंचकर कहा, "सतीश बाबू का पता क्या है मां ? मैं उन्हें टेलीग्राम भेज देता हूं।"

दुर्गा देवी ने कहा—"उसे तो तार मिल नहीं सकेगा। वह तो वैराग्य लेकर हिमालय पहाड़ पर चला गया है ?"

अरुण—"तो फिर क्या किया जाए ? मैं तो आज ही तुम्हारी सेवा के लिए नर्स लाने के लिए कलकत्ते जा रहा हूं।"

नर्स का नाम सुनते ही दुर्गा देवी ने भौंहें सिकोड़ कर कहा, "नहीं, नहीं, नर्स की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम लोग...!"

अरुण ने दुर्गा देवी के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से पूछा—"दीदी को ले आऊं ?"

"यही अच्छा होगा।" कहकर दुर्गा देवी ने धीरे-धीरे आंखें मूंद लीं और कहने लगीं—"बहू से कहना, मैंने उस अफवाह पर, उस बिना नाम की चिट्ठी पर रत्तीभर भी विश्वास नहीं किया है और न कभी कर सकती हूं। मेरी बहू साक्षात् सती-लक्ष्मी है।"

अरुण की आंखों में आंसू भर आए। उसी समय डॉक्टर की भेजी हुई दासी रामकली आ गई। उसे देखकर अरुण ने कहा, "अच्छा मां, आज रात भर के लिए मैं इस दासी को तुम्हारे पास छोड़ जाता हूं। कल दीदी को लेकर आ जाऊंगा। मेरा बैग यहीं रखा रहेगा।"

दुर्गा देवी के पैर छूकर अरुण जाने वाला ही था कि इतने में दुर्गा देवी ने उस दासी से कहा, "देखो, उस कोठरी में कुछ बताशे और डाठ (कच्चा नारियल) रखा है, जाकर अरुण को दे दो।"

दासी ने बताशे और डाठ लाकर अरुण के हाथ में दे दिया। अरुण चार बताशे मुंह में डालकर और जग का पानी गटगटाकर के पीकर मुंह पोंछते-पोंछते फिर स्टेशन की ओर चल दिया।

पब्लिक लायब्रेरी के पास अरुण का परिचित मित्र यतीन एक बांस गाड़ कर उस

पर गैस की लालटेन बांधने में लगा हुआ था। अरुण को देखते ही वह कह उठा—"अरे कहां जा रहे हो अरुण ? कब आए ? तुम्हारा चेहरा इतना सूखा और उतरा हुआ क्यों है ? कुशल तो है न ? पढ़ाई-लिखाई तो चल रही है न ? आज यहां जलसा है। रात को कलकत्ते की एक नामी मंडली अभिमन्यु-वध का तमाशा खेलेगी। आना जरूर।"

वह इसी प्रकार प्रश्न-पर-प्रश्न करता चला गया। अरुण ने सब प्रश्नों का केवल एक ही उत्तर दिया—"सतीश बाबू की मां बहुत बीमार हैं।"

23

अरुण के मुंह से सास की अत्यधिक बीमार होने का समाचार सुनकर कमला रोने लगी। विशेष रूप से जब अरुण ने यह बताया कि सतीश बाबू का पता नहीं है। शायद वह इस समय हिमालय की किसी गुफा में बैठे तपस्या कर रहे होंगे। उन्हें मां की बीमारी का समाचार देना भी असम्भव है। तब कमला का बुरा हाल हो गया।

अचाकर किस कारण से सतीश घर छोड़कर चला गया ? इस रहस्य को सब लोग मन-ही-मन समझ गए। लेकिन मुंह से इस सम्बन्ध में कोई कुछ न कह सका।

अरुण ने कहा—"केवल इतना ही नहीं है। डॉक्टर कहते थे कि बदनामी की बात सुनकर कोई उनके पास फटकता नहीं। कोई बुढ़िया के मुंह में दो बूंद पानी डालने वाला नहीं है। यों ही उस गांव के मनुष्यों की अपेक्षा पशु ही अधिक रहते हैं। उसका अगर यह उत्पात होगा तो बुढ़िया बेमौत ही मर जाएगी।"

कमला ने आंचल से आंसू पोंछते-पोंछते रुंधे गले से कहा—"तो क्या मां घर में अकेली ही पड़ी हुई हैं अरुण ? सचमुच उन्हें कोई देखने वाला नहीं है।"

अरुण ने कहा, "कह तो दिया, ऐसी ही दशा है। मैं आज रात भर के लिए प्रबन्ध कर आया हूं। डॉक्टर बाबू ने अपने पछांही नौकर की घरवाली को उनके पास रहने के लिए भेज दिया है।"

"खैर ! ठीक ही किया।" कहकर हरेन्द्र ने एक लम्बी सांस ली। फिर कहा—"आज की रात तो कटे। सवेरे पांच बजे एक गाड़ी उधर जाती है। उसी से जा सकें तो हम लोग आठ बजे तक कमला को वहां पहुंचा देंगे।"

क्षितीश अब तक चुप बैठा था। अब की बार उसने सिर उठाकर उसने कहा—"कमला को वहां ले जाओगे ? अचानक इनको वहां ले जाने से क्या सुविधा होगी हरेन्द्र बाबू ?"

हरेन्द्र ने कहा—"वाह ! सुविधा न होगी ? जब सतीश वहां मौजूद नहीं है तो

तब सास की सारी जिम्मेदारी इनके ही सिर तो है। इनके सिवा बुढ़िया को देखने वाला और कौन है ? सुमन सुन ती लिया कि गांव की पास-पड़ोस की स्त्रियां बदनामी के भय से बुढ़िया के पास फटकती भी नहीं हैं। तुम ही बताओ, कमला न जाएगी तो इस कठिन बीमारी में बुढ़िया की सेवा कौन करेगा ?''

क्षितीश वास्तव में कल्पना प्रधान व्यक्ति था। वह न तो अत्यन्त विलक्षण व्यक्ति था और न आदि से अन्त तक सोच-विचार कर सावधान होकर काम करने का उसका स्वभाव ही था। लेकिन अन्तर की एक गुप्त वेदना ने कुछ दिनों से उसकी दृष्टि को बहुत ही पैना कर दिया था।

उसने पलभर चुप रहकर कहा—''तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है हरेन्द्र। मुझे लगता है कि उनकी बीमारी का पता मुहल्ले की स्त्रियों को नहीं है। मेरा घर भी तो देहात में ही है। वहां आज तक मैंने कभी नहीं सुना कि बाप के घर से बहू गायब हो जाए तो उसकी सास को परेशानी भुगतनी पड़े और इसी दोष के कारण पास-पड़ोग की स्त्रियां बीमार के मुंह में एक बूंद पानी डालने के लिए तैयार न हों। इतना बड़ा आरोप उनके सिर मढ़ना उचित नहीं है हरेन्द्र बाबू।''

क्षितीश के इस कथन में सत्य का बहुत कुछ अंश होने के कारण हरेन्द्र को चुप रह जाना पड़ा।

फिर उसने लज्जित स्वर में कहा—''खैर, बहस के लिए मान लो कि वे स्त्रियां खबर पाकर बुढ़िया की सेवा कर सकती हैं क्षितीश बाबू ! लेकिन दो-एक बार देख आने और दो-एक बार दवा-पथ्य आदि की खबर ले लेने के अतिरिक्त क्या इतने भयंकर टायफाइड ज्वर में रात-दिन पास बैठ करके रोगी की सेवा कर सकती हैं ? इतना बड़ा बोझ उनके सिर लादकर निश्चिंत होकर बैठ जाना भी तो उचित प्रतीत नहीं होता।''

क्षितीश ने कहा—''टायफाइड ज्वर ही है, यह भी तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कम-से-कम केवल एक दिन के ज्वर को इतनी बड़ी बीमारी कहना मेरी समझ में तो आता नहीं है।''

हरेन्द्र ने चिन्तित होकर प्रश्न किया—''तो फिर क्या किया जाए, तुम्हीं बताओ।''

अब तक अरुण बड़ों की बात में बोला नहीं था। चुपचाप सुनता रहा था। अबकी बार वह बोल उठा—''मैंने इतना ही सुना है कि दीदी की सास सवेरे से बेहोश हैं ? लेकिन बुखार आज ही आया है या पिछले कई दिनों से है यह मुझे मालूम नहीं। शायद यह उन्हें कई दिन से...?''

क्षितीश ने उसकी बात पूरी नहीं होने दी बल्कि उस पर ध्यान ही नहीं दिया। बीच में ही कह उठा—''इसके अतिरिक्त विचारने की एक बात और भी है हरेन्द्र।

उनका यह मामूली बुखार तो दो-चार दिन में ही अच्छा हो जाएगा। लेकिन इस बीच में अचानक कमला को वहां ले जाने से वहां कितने भीषण सामाजिक जिल्लत की...हलचल की...सृष्टि हो सकती है, तुमने यह भी सोचकर देखा है हरेन्द्र बाबू ? सतीश की मां ने, संभव है बुखार की बेहोशी में बक दिया होगा कि वह कमला के कलंक पर विश्वास नहीं करतीं लेकिन...।"

"लेकिन...।" बात यहीं पर आकर रुक गयी। अरुण की तरह क्षितीश की बात भी पूरी नहीं हो पायी। कमला यहां तक सारी बातें चुपचाप बैठी सुनती रही थी। अब सहसा उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। वह अपनी रुलाई को किसी भी तरह रोक नहीं पाई। रुंधे गले से कह उठी—"लेकिन क्या क्षितीश दादा ? क्या तुम लोग मुझे यहां बन्दिनी बनाकर रखना चाहते हो। मेरी सास सख्त बीमार है। वे उनके पास नहीं हैं, मैं ऐसी हालत में भी न जाऊंगी तो और कब जाऊंगी ?"

क्षितीश हतबुद्धि-सा बोला, "यह तो ठीक है। लेकिन सोचकर देखने से...?"

कमला ने पूर्ववत् रोते-रोते कहा—"सोचकर क्या देखना चाहते हो ? जरा मैं भी तो सुनूं। केवल सोच-सोचकर ही तो आज तुम लोगों ने मेरी यह दशा कर दी है।"

इसके बाद उसने हरेन्द्र की ओर देखकर कहा—"मैंने कोई अपराध नहीं किया। मेरे भले के लिए तुम लोग इतना सोच-विचार न करते, इतना काट-पेंच न करके मुझे सीधे घर ले जाते तो आज शायद मेरा भला ही हुआ होता। और तुम्हें भी मेरे लिए सोचने का इतना कष्ट न उठाना पड़ता। मैं अब तुम लोगों की सहायता नहीं चाहती। केवल अरुण को साथ लेकर कल सवेरे ही जगदीशपुर चली जाऊंगी। मेरे भाग्य में जो भी लिखा है, वह हो जाएगा। तुम अब मेरी भलाई की कोशिश मत करो।"

क्षितीश और हरेन्द्र दोनों चौंक पड़े। कमला को इस तरह बोलते हुए इससे पहले कभी किसी ने नहीं देखा था। इस बात को शायद वे दोनों बिल्कुल भूल गए थे कि अपनी भलाई-बुराई के सम्बन्ध में कमला की अपनी कोई व्यक्तिगत राय भी हो सकती है। अपने भाग्य को धिक्कार देने के अतिरिक्त कमला भी अपनी बुद्धि से सोच-विचार कर सकती है!

हरेन्द्र को सहसा कोई उत्तर नहीं सूझ पड़ा और क्षितीश अत्यधिक आश्चर्य के मारे दोनों आंखें फाड़-फाड़कर कमला के मुख की ओर देखता रह गया। लेकिन वे अच्छी तरह समझ गए कि उन दोनों की सम्मिलित दुश्चिन्ता को भी पीछे छोड़कर कमला की घबराहट किस सीमा तक पहुंच गई है।

कमला ने जल्दी से आंसू पोंछकर कहा—"तुम यह मत समझ बैठना क्षितीश दादा कि मैं तुम्हारी दया को भूल सकूंगी, लेकिन आज मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं...?"

कहते-कहते कमला की आंखों से और भी जोर से आंसू गिरने लगे। लेकिन कमला ने इस बार उन आंसुओं को पोंछने की बिलकुल चेष्टा नहीं की। उसी सिलसिले में हाथ जोड़कर कहने लगी—"मेरे कारण तुम दोनों ने कितना दुःख और कष्ट उठाया है। यह मैं अच्छी तरह जानती हूं और भवान भी जानते हैं। लेकिन मैं अब तुम्हें एक दिन भी दुःखी देखना नहीं चाहती। आज से मैंने अपने दुर्भाग्य का सारा बोझ अपने सिर पर लाद लिया है। क्षितीश दादा, तुम एक दिन जिस तरह मुझे रास्ते से उठा लाए थे और मेरी जान बचाई थी, उसी तरह आज मुझे केवल यह आशीर्वाद दो कि किसी तरह इस कठिनाई को पार कर सकूं और तुम्हें फिर दुःख देने के लिए लौटकर न आऊं !"

क्षितीश ने लगता है मुंह फेरकर अपने आंसू छिपाने का प्रयत्न किया।

लेकिन हरेन्द्र ने कहा—"हम दोनों तुझे यही आशीर्वाद देते हैं कमला। मैं कहता हूं तेरी यह विपत्ति अवश्य दूर हो जाएगी। लेकिन कल सवेरे मैं भी क्यों न साथ चलूं ?"

कमला ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं।"

हरेन्द्र उत्तेजित स्वर में बोला—"नहीं क्यों कमला ? अगर मैं सचमुच तेरा बड़ा भाई होता तब तो तू ना नहीं कर सकती थी।"

उसकी अन्तिम बात सुनकर इतने दुःख में भी कमला का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। उसने सिर नीचा करके उसी तरह चुपचाप सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

उसकी यह लज्जा हरेन्द्र से छिपी न रह सकी। लेकिन उन दोनों के नाम से जो लज्जाजनक अपवाद फैल रहा है उसे वह रत्तीभर भी स्वीकार नहीं करता। उसकी रत्तीभर भी परवाह नहीं करता। इस बात को दृढ़ता से जताने के लिए हरेन्द्र ने तीव्र स्वर में कहा, "तू क्या यह सोचती है कि मैं झूठी बदनामी से डरता हूं ? या पिताजी के दंड की परवाह करता हूं ? मैं तेरे साथ गांव अवश्य जाऊंगा। देख, गांव में मेरे सामने तुझे कौन क्या कहता है। उसका उत्तर मैं दे सकता हूं, लेकिन अरुण नहीं दे पाएगा—यह अभी बालक है।"

कमला ने आंसू भरी नजरों से हरेन्द्र की ओर देखकर कहा—"यह तो सच है कि अरुण उत्तर न दे सकेगा। लेकिन तुम्हें भी उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। अपना बोझ मुझे स्वयं उठाने दो। मेरी समस्या को अब और मत उलझाओ।"

हरेन्द्र ने कहा, "गांव वालों के स्वभाव के सम्बन्ध में एक बार विचार करके देख कमला। वहां अकेले जाने पर तेरे भाग्य में क्या घटना घट सकती है, मैं उसकी कल्पना ही नहीं कर पा रहा हूं।"

कमला जैसे थक चुकी थी। उसमें अब और वाद-विवाद और तर्क-वितर्क करने

की जैसे शक्ति ही नहीं रह गई थी। उसने केवल सिर ऊपर उठाकर एक लम्बी सांस लेकर धीरे-धीरे कहा, "वही जानें।"

इतना कहकर दोनों हाथ जोड़कर सिर से लगाकर किसी उद्देश्य से प्रणाम किया और फिर तेजी से उठकर दूसरे कमरे में चली गई।

कुछ देर तक किसी के मुंह से कोई बात नहीं निकल सकी। सभी पत्थर की मूर्ति के समान चुप बैठे रहे।

एक पल बाद अरुण ने कहा, "लेकिन मैं एक सुविधा कर आया हूं हरेन्द्र दादा। सतीश बाबू की मां से कह आया हूं कि दीदी खोजने के बाद से अच्छी हो जाने तक बराबर मेरे पास ही रही हैं। तुम लोगों का नाम भी उसके साथ लिया था। ठीक नहीं किया दादा ?"

हरेन्द्र ने कहा—"धत् पागल ! तू अभी बच्चा ही है। कमला तेरे पास कलकत्ता में है, इस बात पर भला कोई विश्वास करेगा ? क्यों जी क्षितीश ?"

क्षितीश ने चौंककर कहा, "हूं ?"

फिर लज्जित मुख से क्षितीश उठ खड़ा हुआ। तनिक हंसकर उसने कहा—"भाई हरेन्द्र, अब मैं जाता हूं ? मुझे बड़े जोरों की नींद लगी है।"

इतना कहकर किसी शराबी की तरह लड़खड़ाता हुआ ऊपर चला गया। अपने घर में उन लोगों का कोई खयाल न करके क्षितीश का इस तरह उठकर सोने के लिए चले जाना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। हरेन्द्र और अरुण के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। लेकिन वास्तव में ही आज इस शिष्टाचार की ओर ध्यान देने की शक्ति क्षितीश में नहीं थी। वह बहुत देर से अन्यमनस्क बैठा था। इतनी देर तक जो बातचीत, तर्क-वितर्क और वाद-विवाद हुआ था उसका एक भी शब्द जैसे उसके कानों तक नहीं पहुंचा था। उसके कानों में निरन्तर एक ही बात गूंज रही थी कि सब कुछ प्रकट हो गया। उसके मन की एकान्त अंधेरी कोठरी में जितना संचित हो गया था, वह सब कमला के सामने प्रकट हो गया। उससे अब कुछ भी छिपा हुआ नहीं है और इसीलिए वह आज शिकारी से भयभीत हिरणी के समान यहां से तुरन्त, जल्दी-से-जल्दी भाग निकलना चाहती है। आज उसके सारे प्रयत्न, सारी सेवा, सारी देखभाल, सारा प्रयत्न एकदम व्यर्थ और निरर्थक हो गया।

24

"क्षितीश दादा !"

"कौन है ?"

"मैं हूं कमला, दरवाजा खोलो।"

क्षितीश ने जल्दी से उठकर दरवाजा खोल दिया। बाहर सामने कमला खड़ी थी। रात का अंधेरा उस समय भी बिल्कुल साफ नहीं हुआ था। उस समय भी आकाश में दो-चार बड़े तारे चमक रहे थे। केवल आकाश के पूर्वी छोर पर हलका-सा उजाला दिखाई दे रहा था। बरामदे के एक कोने में धीमी-धीमी लालटेन जल रही थी। उसी की धुंधली रोशनी में क्षितीश ने पलक झपकते ही सब कुछ देख लिया।

कमला सिर से पांव तक पीले रंग की एक ऊनी चादर ओढ़े खड़ी थी। उसके साथ ही थोड़ी दूर पर अरुण खड़ा था। उसने अपने धारीदार कोट के ऊपर कमर में एक अधमैली चादर लपेट रखी थी। उसके बाएं हाथ में लाल रंग का वह छाता था, जो उसे अपने यज्ञोपवीत संस्कार के समय मिला था और दायीं बगल में एक छोटी-सी पोटली दबी हुई थी।

क्षितीश केवल इतना ही देख पाया था। लेकिन जब कमला उसके पैरों के पास धरती पर सिर टिका कर प्रणाम करके खड़ी होकर बोली—"क्षितीश दादा, मैं जा रही हूं—तब भले ही प्रकाश की कमी से अथवा दृष्टि-दोष से ही कमला का मुख क्षितीश को बिलकुल ही दिखाई नहीं दिया। वास्तव में आंखों में आंसू भरे होने के कारण उसे इस समय कुछ भी दिखाई न दे रहा था। उसे लगा—जैसे अचानक ही, घड़ी भर में ही आमने-सामने, आस-पास और ऊपर-नीचे सब एकदम स्याही से लिप-पुत गया हो।"

कमला ने कहा, "गाड़ी का समय हो गया क्षितीश दादा, मैं जा रही हूं।"

क्षितीश को जैसे कुछ समझ में नहीं आया। उसने अन्यमनस्क भाव से बस इतना ही कहा, "जा रही है, अच्छा...।"

कमला ने कहा, "मैं यहां की कौन हूं। फिर भी इतने दिन मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया।"

इतना कहकर कमला चादर के कोने से आंसू पोंछने लगी।

उत्तर में क्षितीश ने बस इतना ही कहा, "कष्ट कहां ?...नहीं तो...?"

कमला ने कहा—"जाने के समय तुम मुझे बस यही आशीर्वाद दो क्षितीश दादा कि तुम्हारा प्राण बचाना निष्फल न हो।"

इतना कहकर कमला बार-बार आंखें पोंछने लगी।

क्षितीश को इसका कोई उत्तर खोजने पर नहीं मिला। पलभर बाद वह एकाएक बोल उठा—आशीर्वाद...? अवश्य। कह तो दूंगा ही। अरुण, मोटर के लिए कह दिया है न।"

अरुण ने सिर हिलाकर कहा, "जी हां। हरेन्द्र दादा तो नीचे मोटर में ही बैठे हैं। वह हम लोगों को स्टेशन तक पहुंचा आएंगे। आप नहीं चलिएगा ?"

क्षितीश ने कहा, "मैं ? नहीं भाई, मेरी तबियत कुछ अच्छी नहीं है।"

कमला ने फिर एक बार दूर से ही चुपचाप प्रणाम किया और नीचे उतर गयी।

अरुण ने क्षितीश के पास जाकर कहा, "मैं भी जा रहा हूं क्षितीश दादा।"

यह कहकर अपनी बहिन की तरह प्रणाम करके वह भी चलने लगा। लेकिन सहसा क्षितीश ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए और एक तरफ जबर्दस्ती ही उसे कमरे में ले जाकर बोला, "भाई अरुण, क्या तुम लोग सचमुच ही जा रहे हो ?"

अरुण अवाक् होकर उसकी ओर ताकने लगा। क्षितीश का यह बेकार का प्रश्न उसकी समझ में नहीं आया।

क्षितीश ने कहा, "कौन जाने, शायद अब कभी भी हम लोगों की भेंट न हो। मैं भी आज दोपहर की गाड़ी से पश्चिम की ओर जा रहा हूं।"

अरुण इस बात का भी कोई उत्तर न दे सका। लेकिन बालक होते हुए भी वह इतना अवश्य समझ गया कि क्षितीश के स्वर में जैसे रुलाई भरी हुई है।

प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा न करके क्षितीश ने कहा, "तुम अब भी बालक ही हो। तुम्हारे ऊपर कितना बड़ा भार आ पड़ा है, कितनी बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ी है, उसे शायद तुम नहीं जानते। मैं अपने मन, वाणी, काया से भगवान से प्रार्थना करता हूं कि तुम लोगों की यात्रा हर प्रकार से निर्विघ्न हो।"

इतना कहकर उसने अपने तकिए के नीचे से एक लम्बा लिफाफा निकाल कर अरुण की ओर बढ़ा दिया। लेकिन अरुण ने अपना हाथ हटाकर पूछा, "यह क्या है क्षितीश दादा ?"

क्षितीश ने कहा, "कुछ थोड़े-से रुपए हैं और कुछ नहीं।"

अरुण ने कहा, "लेकिन रुपए तो मेरे पास भी हैं क्षितीश दादा।"

क्षितीश, "उन्हें रहने दो भाई। जाते समय छोटे भाई के हाथ में कुछ देने की रीति है न। इसलिए दे रहा हूं। ले लो।"

इतना कहकर क्षितीश ने अरुण की धोती के छोर में उस लिफाफा को बांधते-बांधते कहा, "तुम्हारे तो क़ोई बड़ा भाई है नहीं अरुण। इसीलिए तुम नहीं जानते। अगर तुम्हारा कोई दादा होता तो वह भी चलते समय तुम्हें इसी प्रकार उपहार देता। अपने दादा का स्नेह-उपहार लेने में तुम्हें बिलकुल शर्माना नहीं चाहिए। तुम्हारी दीदी को यदि कभी पता चल जाए, अगर वह पूछें तो यही बात उनसे कह देना।"

इतना कहकर धोती का छोर यथा स्थान खोंसकर, उसके साथ कमरे से बाहर आकर क्षितीश ने कहा—"अब अधिक समय नहीं है अरुण, तुम जाओ भाई, साढ़े चार बज गए हैं। वे लोग शायद जल्दी कर रहे होंगे।"

इतना कहकर उसने एक तरह से जोर देकर अरुण को विदा कर दिया।

अरुण ने सीढ़ियों से उतरते-उतरते पूछा, "आप पश्चिम में कितने दिन रहेंगे क्षितीश दादा ?"

क्षितीश ने कहा—"यह मैं अभी कैसे बता सकता हूं, भाई ?"

इसके बाद जब अरुण नीचे जाकर मोटर में बैठा तो उसे अकेला देखकर कमला ने तो कुछ पूछा नहीं लेकिन हरेन्द्र ने कहा--"क्षितीश बाबू नहीं आए अरुण ?"

इसका उत्तर स्वयं क्षितीश ने दिया। वह ऊपर वाले बरामदे में रेलिंग के सहारे खड़ा था। उसने कहा, "मेरी तबियत ठीक नहीं है हरेन्द्र। ठंडक में मेरा बाहर निकलना ठीक नहीं रहेगा।"

हरेन्द्र ने कुछ उद्विग्न होकर कहा—"तबियत अच्छी नहीं है तो फिर ओस में बाहर मत खड़े रहो। मैं इन लोगों को पहुंचाकर अभी आ रहा हूं।"

मोटर चल दी। पता नहीं हरेन्द्र की बात क्षितीश ने सुनी या नहीं, जब तक मोटर उसकी आंखों से ओझल न हो गई तब तक वह उसी ओर देखता हुआ, उसी तरह स्तब्ध होकर खड़ा रहा।

स्टेशन पर पहुंचकर, टिकट खरीदकर, कमला और अरुण दोनों को ट्रेन में बैठाकर हरेन्द्र ने कमला के पास जाकर कुछ लज्जा के साथ कहा, "मैं अभी कहां रहूंगा, मैं स्वयं नहीं जानता। फिर भी अगर मुझे सूचना देने की आवश्यकता आ पड़े तो केअर ऑफ... ।"

अरुण ने जल्दी से जेब से कागज का एक टुकड़ा और पेंसिल निकालकर कहा, "ठहरो-ठहरो हरेन्द्र दादा, तुम्हारा पता तो लिख लूं और हां, क्षितीश दादा ने बताया है कि वह आज दोपहर की गाड़ी से पश्चिम की ओर चले जाएंगे। लेकिन खेद है, मुझे उनका पता लिख लेने का कुछ ध्यान ही नहीं रहा।"

यह बात सुनकर कमला को मन-ही-मन आश्चर्य हुआ। लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

लेकिन हरेन्द्र उद्विग्न होकर कह उठा—"कब ? तब तो मुझे अभी लौटकर उसे रोकना पड़ेगा।"

कमला ने हरेन्द्र की ओर देखकर पूछा, "क्यों हरेन्द्र दादा ?"

अरुण बोला—"क्यों क्या, बात...?"

हरेन्द्र ने कहा—"तबियत अच्छी नहीं है, ऐसे में क्षितीश का अकेले बाहर जाना ठीक नहीं होगा। इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है, जिससे क्षितीश का यहां रहना बहुत ही आवश्यक है। तू गांव जा रही है कमला। कौन कह सकता है कि गांव वाले क्या उपद्रव खड़ा करें। आवश्यकता पड़ने पर मैं तो कालीग्राम जाऊंगा ही, क्षितीश को भी उनका मुंह बन्द करने के लिए उनके सामने ले जाकर खड़ा कर दूंगा। तू क्या मुझे डरपोक समझती है कमला ?"

कमला ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, डरपोक नहीं समझती दादा। लेकिन तुम में से किसी को भी मेरे लिए वहां जाना नहीं पड़ेगा।"

हरेन्द्र ने अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर कहा—"नहीं जाना पड़ेगा ? किसी की आवश्यकता नहीं होगी ? खैर, न हो, न सही। लेकिन तू क्या गांव वालों की, गांव के समाज की प्रकृति को अभी तक नहीं पहचान सकी ?"

कमला ने इस प्रश्न का कुछ ठीक उत्तर नहीं दिया। उसने कहा—"मेरी समझ में यह नहीं आता कि इतने दिनों से मेरी बुद्धि कहां चली गई थी। और मैंने अपने करने के काम का बोझ तुम लोगों पर क्यों डाल रखा था। मैंने अब तक जो भूल की, उसकी कोई सीमा नहीं है। लेकिन अब तुम लोगों को साक्षी के नाते बुलाने की भूल मैं कभी नहीं करूंगी।"

इतना कहकर उसने हरेन्द्र के पते वाला कागज छोटे भाई के हाथ से छीन कर गाड़ी से बाहर फेंक दिया।

हरेन्द्र ने मन-ही-मन अत्यन्त क्षुब्ध और लज्जित होकर कहा—"लेकिन कमला, निर्दोष को भी अदालत में गवाही देकर स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करना पड़ता है।"

कमला ने उदास-सी हंसी के साथ कहा, "इसकी तो अदालत में ही आवश्यकता होती है। मैंने अपने सम्बन्ध में विचार करने का मन जिनके हाथों में सौंप दिया है हरेन्द्र दादा, उसके लिए किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं सब कुछ जानते हैं।"

इतना कहकर उमड़े हुए आंसुओं को छिपाने के लिए उसने जल्दी से अचानक मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

तभी गार्ड ने हरी झंडी दिखाई ड्राइवर ने भोंपू बजाकर ट्रेन स्टार्ट कर दी।

कमला के शब्दों से हरेन्द्र के हृदय को जो धक्का लगा था, उसने बहुत कुछ संभाल लिया। ट्रेन के साथ-साथ ही दो पग आगे बढ़कर भी आंसुओं से धुंधलेपन के कारण कमला के चेहरे को नहीं देख पाया। लेकिन उसे सम्बोधित करके ऊंचे स्वर में बोला, "ऐसा ही हो बहिन। मैं मन, वाणी, कर्म से ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वही हमारे न्याय-विचार का भार ग्रहण करें।"

कमला ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर देने के लिए था ही क्या। लेकिन जब ट्रेन कुछ दूर निकल गयी तो उसने खिड़की के बाहर सिर निकालकर देखा—हरेन्द्र उस समय भी सीधा उसी की ओर देखता हुआ खड़ा है।

रास्ते में अरुण अपनी धुन में बहुत कुछ बकता रहा। उसे अपने ऊपर बहुत विश्वास था। बड़ा भरोसा था। उस समय दुर्गा देवी ने उससे कहा था कि उन्हें उस अफवाह पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं है और उसने उनसे कह दिया था कि कमला

कलकत्ते में उसी के पास है—इन दो बातों से उसका साहस बहुत बढ़ गया था। उसे विश्वास था कि उसने इस दुर्घटना की उलझन को काफी कुछ सुलझा लिया है। रास्ते में वह बार-बार घुमा-फिरा कर इसी प्रकार की अनेक सांत्वनाएं कमला को दे रहा था। लेकिन कमला जिस प्रकार चुपचाप ट्रेन में आ बैठी थी, उसी तरह बैठी हुई थी। उसने एक भी शब्द नहीं कहा था।

वह हरेन्द्र की इस बात को नहीं भूली थी कि अरुण की इस बात पर कोई भी सहज में विश्वास नहीं करेगा। लेकिन इसके लिए उसके मन में कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। वास्तव में जो कुछ सत्य नहीं है, उस पर अगर कोई अविश्वास ही करे, तो उसके लिए किसको दोष दिया जा सकता है ? लेकिन उसे चिन्ता अवश्य थी। वह चिन्ता उसे सास के बारे में थी। जो कि सिल के समान उसकी छाती पर रखी हुई थी और जिससे उसका दम घुटा जा रहा था। सास ने एक बार अपने मुंह से यह अवश्य कहा था कि वह अपनी बहू के कलंक पर विश्वास नहीं करती, लेकिन क्या उनका यह विश्वास अन्त जैसे था, वैसा बना रहेगा ? इसी सम्बन्ध में उसे चिन्ता थी। वह देहात में ही पैदा होकर इतनी बड़ी हुई है। वहां के लोगों की आदतों से अच्छी तरह परिचित है। किन्तु इसके साथ ही यह इरादा भी मन-ही-मन बिलकुल पक्का कर रखा था कि वह अब तक बहुत भूलें कर चुकी है, भटक चुकी है, भ्रान्ति में पड़ चुकी है। अब अपने और अपने पति का यह सम्बन्ध भले ही टूट क्यों न जाए, लेकिन भगवान के अतिरिक्त अपने और अपने पति के बीच और किसी विचारक को वह कभी स्वीकार नहीं करेगी।

ट्रेन जगदीशपुर स्टेशन पर यथा समय पहुंच गयी। लेकिन वहां घोड़ा-गाड़ी मिलने में बड़ी कठिनाई हुई। बड़ी कोशिशों के बाद अरुण एक गाड़ी का प्रबन्ध कर पाया।

घोड़ा-गाड़ी जब जगदीशपुर गांव में सतीश राय के घर के सामने पहुंची, उस समय दिन बहुत बीत चुका था।

दुर्गा देवी दो-तीन मैले, फटे तकियों को एक के ऊपर एक रखकर उनके सहारे बैठी थीं और कटोरे में गर्म-गर्म दूध घूंट-घूंट करके पी रही थीं तथा थोड़ी ही दूर धरती पर बैठी एक विधवा पड़ोसिन खीलों में से धन बीन-बीन कर अलग कर रही थी। दुर्गा देवी को उस समय भी थोड़ी-बहुत हरारत थी। लेकिन टायफाइड का कोई भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहा था।

अरुण को देखते ही वह प्रसन्न होकर कह उठीं—"कौन, अरुण ! आ गए बच्चा ? आओ बैठो। वह दरवाजे के पास कौन खड़ा है ?"

अरुण बोला, "दीदी आई हैं।"

दुर्गा देवी—"दीदी ? कौन बहू ?"

जैसे ही कमला ने भीतर आकर सास के पांव छूने चाहे, दुर्गा देवी घबरा उठीं—"दूध का कटोरा मुंह के पास से हटाकर जल्दी से कह उठीं—'रहने दो, रहने दो' बहू। पैर छूने की जरूरत नहीं है। दिन भर के बाद छटांक भर दूध पी रही हूं। छूकर इसे भी बर्बाद मत करो।"

जो स्त्री खीलों में से धान अलग कर रही थी, वह धूप में से कमला की छाया बचाकर चार हाथ दूर जा बैठी। कमला चुपचाप स्तब्ध होकर जहां-की-तहां खड़ी रह गयी।

लेकिन अरुण एकदम जल-भुन गया। उसने कहा—"झूठी कहीं की। फिर तुमने कल क्यों कहा था कि उस अफवाह पर, उसके बेनामी चिट्ठी पर तुम विश्वास नहीं करतीं। तुमने क्यों कहा कि...?"

बुढ़िया बोली, "वाह ! जरा बातें तो सुनो। मैंने यह कब कहा था कि विश्वास नहीं करती ? अगर बुखार की बेहोशी में ऐसी कोई बात मेरे मुंह से निकल गयी हो तो वह भी कहना कोई कहना है भैया।"

अरुण रुआंसा होकर बोला—"तब तो मैं दीदी को यहां लेकर कभी न आता। मैं यह नहीं जानता था...।"

दुर्गा देवी ने दूध का कटोरा हटाकर अलग रख दिया। फिर बोलीं—"अच्छी बात है बच्चा, इस तरह बिगड़ क्यों रहे हो ? संन्यासी दादा आ जाएं वे लोग जो ठीक समझेंगे, होगा। तब तक बहू बाहर ही रहे। घर में सीधा-पानी सब कुछ है। पटला की मां निकाल देगी। दरवाजे पर चार रोटियां सेक कर तुमको भी खिलाए और आप भी खाए।"

अरुण चौगुना जल उठा। उसने कहा, "क्या ? हम तुम्हारे घर भीख मांग कर खाने आए हैं ? तुम ऐसी बात कहती हो। अच्छी बात है, तुम इसका मजा चखोगी।"

यह कहकर कमला का हाथ जोर से पकड़कर अरुण ने कहा, "चलो दीदी, चलें। अभी दरवाजे पर हमारी गाड़ी खड़ी है। अब मैं एक मिनट भी इस बुढ़िया का मुंह देखना नहीं चाहता हूं।"

कमला ने धीरे-धीरे अपना हाथ घुमाकर कहा—"चलो, चलती हूं भाई।"

इसके बाद सिर का आंचल हटाकर सास की आंखों से आंखें मिलाकर शान्त-सहज स्वर में बोली—"मां, मैं जाती हूं। लेकिन मैं इस घर की बहू हूं। तुम्हारी तरह ये मेरे भी ससुर का घर है। मैंने अभी तक ऐसा कोई पाप नहीं किया है। मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ कि दरवाजे पर रोटी बनाकर खाऊं।"

सास ने कहा—"मैं क्या जानूं। लोग...?"

कमला की उदास आंखें अचानक मशाल के समान जल उठीं। शायद वह कोई बड़ा उत्तर देने वाली थी, लेकिन उसे यह अवसर नहीं मिला। अरुण ने बड़ी सख्ती से उसका हाथ पकड़ लिया और उसे जबर्दस्ती खींचता हुआ घर से बाहर निकल गया।

25

कुछ दिन वृन्दावन में रहकर सतीश ने भलीभांति अनुभव कर लिया कि वैराग्य कल्पना में भले ही कितना ही सुन्दर मालूम पड़े, वास्तव में उसका उपयोग उपभोग इतना रुचिकर नहीं है। अर्थात् मुंह से तो "संसार-असार है" कह देना बिलकुल कठिन नहीं है। लेकिन संसार को छोड़कर संसार में रहना नितान्त असम्भव है। तूफान या आंधी के अवसर पर सागर के बीच नाव स्थिर नहीं रह सकती, इसी प्रकार क्षोभ भरे मन के भीतर शान्त भाव को स्थापित करना असम्भव ही है।

इसीलिए लखनऊ से वृन्दावन पहुंचकर वह अधिक दिन निश्चिन्त होकर रह नहीं सका। संसार की गृहस्थी और अतीत की स्मृतियां उसे चारों ओर से माया के बन्धन में बांधकर खींचने लगीं। सतीश मन-ही-मन सोचने लगा—'गुरुदेव कहते हैं—जगत मायामय है, मिथ्या है लेकिन मुझे गुरुदेव के इन शब्दों पर बहुत ही सन्देह होता है। क्योंकि समस्त इन्द्रियों के द्वारा रात-दिन जिस सत्य का अनुभव कर रहा हूं, उसे इतनी आसानी से मिथ्या किस तरह मान लूं ?'

गुरुदेव की आज्ञा मानकर, वह जो पागल के समान हिमालय पर्वत पर दौड़ा नहीं चला गया, इससे उसे कुछ सन्तोष ही हुआ। वह सोचने लगा, अब उसे क्या करना चाहिए ? क्या फिर लखनऊ जाना उचित होगा ? लेकिन आत्मानन्द स्वामी के वैराग्य पर भाषण, मुक्ति के सम्बन्ध में ही था—टिप्पणी और लोटा, कम्बल तथा त्रिशूल का फेंका जाना याद आते ही लखनऊ जाने का विचार उसके हृदय से एकदम दूर हो गया।

इसके बाद उसे जगदीशपुर का खयाल आया। वहां उसकी मां अवश्य है। लेकिन उनके साथ ही दूसरा विवाह करने का प्रस्ताव भी अच्छा पीछा करने को मौजूद है इसलिए उस स्थान पर भी उसे शान्ति नहीं मिलेगी।

अच्छा, कालीग्राम जाएं तो कैसा रहे ? लेकिन यह विचार पैदा होते ही उसे कमला के गायब होने की बात याद आ गयी। यह समाचार सतीश के कानों तक जिस रूप में पहुंचा था, उस पर उसे विश्वास नहीं हुआ था, यह तो कहा नहीं जा सकता। लेकिन इसमें भी सन्देह नहीं था कि उसे सम्पूर्ण रूप से अपवाद पर विश्वास हो भी नहीं पाया था। इसीलिए वास्तविक बात जानने के लिए उसका मन व्यथापूर्ण आग्रह

के साथ बराबर उसे उकसाने लगा। लेकिन कमला के बिना वह सूना घर उसके लिए एक दुःखद स्वप्न के समान ही नहीं था, बल्कि उसके साथ ही गांव का आन्दोलन, समाज की हलचल, और हंसी-व्यंग्य-ताने आदि की विषैली हवा में उसका दम घुट जाने की पूरी-पूरी सम्भावना भी थी।

सतीश ने सोचा—यह कैसा संकट आ पड़ा ? न तो मैं संसार त्याग कर संन्यासी होने के लिए तैयार हूं ? और न घर लौटने को ही जी चाहता है और न यहां बेकार बैठे रहने में ही शान्ति मिलने की सम्भावना दिखायी दे रही है। तो फिर अब मैं क्या करूं ?

सोचते-सोचते सतीश बेहाल हो गया। उससे आगे सोचा नहीं गया। उसका मस्तिष्क जैसे एकदम निकम्मा हो गया।

अन्त में उसने मन-ही-मन कहा—"दूर हों यह झंझट। चूल्हे में जाएं ये सारी चिन्ताएं। आगे की बात बाद में सोची जाएगी। मैंने तो इस समय यही निश्चित कर लिया है कि संन्यास लेने का पागलपन मुझसे नहीं हो सकेगा। इसलिए छुट्टियों के जो कुछ दिन शेष हैं, उन्हें इधर-उधर के दर्शनीय नगरों और स्थानों की सैर में ही क्यों न बिताया जाए ?'

सतीश ने निश्चय किया कि वह कल सवेरे की ट्रेन से ताजमहल देखने आगरा जाएगा।

कवि हृदय बादशाह शाहजहां के संगमरमर के बने हुए अमर काव्य ताजमहल को अनेक लोगों ने भावों, अनेक दृष्टिकोणों से देखा है। लेकिन सतीश को ताजमहल देखकर ऐसा लगा जैसे वह उसकी प्रियतमा की प्रेममूर्ति हो।

प्रियतमा ? कौन ? कमला ?...नहीं, वह यह कला नहीं है, जो कमला उसका स्नेह, प्रेम, यत्न, आदर, अनुराग, सब कुछ भूलकर लोक समाज में उसे उपहास का पात्र बनाकर, उसके भविष्य और वर्तमान को अन्धकार में डुबोकर जन्म भर के लिए उसको छोड़कर चली गयी। उसके सम्बन्ध में तो वह अब कुछ भी नहीं सोचना चाहता। सोच ही नहीं सकता। लेकिन देश-परदेश में जिस स्नेहमयी नारी की मूर्ति को लेकर उसकी निद्राहीन रातें अनजाने ही किसी सुखद स्वप्न के समान क्षण भर ही में बीत गयी हैं। जिसकी आंखों की मधुरिमा, अधरों का हास्य, तनुलता का लावण्य, हाथों का स्पर्श और सबसे बढ़कर जिसके अथाह प्रेम से भरे हृदय की स्मृति ने ताजा खिले फूल के समान उसके समूचे जीवन को पुष्पित और प्रफुल्लित कर रखा है, उसे वह इतनी शीघ्र भूल नहीं सका। इसीलिए तो उसकी स्मृति से परिपूर्ण हृदय को लेकर वैराग्य की शून्यता के बीच फांक पड़ने का उसका प्रयत्न मिथ्या हो गया। असफल हो गया।

सतीश को लगता था जैसे उन दिनों की कमला और आज की कमला दो भिन्न व्यक्ति हैं। यद्यपि ऐसा लगने का कोई उचित कारण भी नहीं था। यह सोचना बच्चों के खिलवाड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। फिर भी ऐसा ही भाव कभी-कभी उसके मन में ज्यादा उठा करता था। इस स्थान पर तर्क या युक्ति कुछ काम नहीं देती थी। उसका अन्तःकरण दृढ़ता से कह उठता था—नहीं, वह कमला और यह कमला एक नहीं है। दोनों में स्वर्ग और नरक जितना अन्तर है। वह थी नितान्त मेरी...और यह है...!

विचारधारा यहीं तक पहुंचकर रुक जाती थी। चिन्तन का सूत्र टूट जाता था। उसका मन आज कमला को अपनी कह कर दावा भी नहीं कर सकता था और उसे परायी वस्तु मानने के लिए भी तैयार नहीं होता था। इसी स्थान पर एक बहुत बड़ा अन्धकार, एक अज्ञात और अपरिचित तथा अनन्त अन्धकार उसकी आंखों के आगे आ जाता था। उस अन्धकार में जैसे छिपे हुए आंसू एकत्र थे।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन—सतीश की छुट्टी के दिन इसी तरह बीतते चले जा रहे थे। लेकिन सतीश ताजमहल को छोड़कर कहीं और नहीं जा सकता था। किसी अज्ञात मोह के आकर्षण से वह नित्य ताजमहल की ओर दौड़ा आता था। संगमरमर के उज्ज्वल स्वप्न के स्निग्ध, शीतल स्पर्श में अपने थके-हारे तन और आकुल मन को लिटाकर, लुटाकर वह चुपचाप पड़ा ताज की ओर ताकता रहता था। उसके सामने यमुना का श्यामल जल किसी आकुल पीड़ा से कल-कल नाद करता हुआ बहता रहता था। किनारों की कठोर तट भूमि में सिर पटकती हुई विरहिणी यमुना जैसे रुदन किया करती थी।

शाहजहां के प्रेम की स्मृति ताजमहल ने आज सतीश के हृदय के खंडहर में भी प्रेम की दीप-शिखा को जैसे फिर उकसा दिया। संगमरमर का भवन जैसे सजीव है। पाषाण की यह मौन भाषा जैसे कान लगाने पर सुनाई देती है। इसकी यह कलंकहीन धवलता जैसे हृदय के अन्धकार का नाश करने वाली है।

सतीश ने निश्चय कर लिया कि वह यहीं रहकर छुट्टियों के शेष दिन बिताएगा। इधर-उधर घूमते फिरना व्यर्थ है। देखूँ; यहां रहकर मन को शान्ति मिलती है या नहीं।

पूर्णिमा की रात थी। चन्द्रमा की चांदनी ताजमहल पर पड़ कर उसे और भी उज्जवल बना रही थी। चबूतरे के ऊपर कुर्ता उतार कर, उसे तकिए के स्थान पर सिर के नीचे रखकर लेटा हुआ, सतीश ताज की अपूर्व शोभा निहार रहा था। चांदनी और ताज परस्पर मिलकर जैसे एक होते चले जा रहे थे। लगता था क्षण भर बाद चांदनी और ताज का अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाएगा।

सहसा पास ही किसी की बांसुरी बज उठी। किन्तु स्वर में किसी ने उदासी और

विषाद के भाव कूट-कूट कर भर दिए थे। उस बांसुरी को जैसे कोई मुंह की सांस से नहीं, अन्दर के दीर्घ विश्वास से बजा रहा था। जैसे किसी को गवाकर इस समय आकाश में, पवन में, यमुना के जलोच्छ्वास में चांदनी के प्रकाश में, लाज की परछाई में बांसुरी उसे रह-रहकर करुण स्वर में पुकार रही हो। बांसुरी के उस रुदन को सुनकर शाहजहां की मलिका जैसे कितने ही युगों की निश्चिन्त समाधि निद्रा से जाग कर अभी आकुल होकर देखने लगेगी कि इतने दिनों के बाद उसकी प्राणाप्रेम मुमताजमहल की आत्मा फिर से तो उसका साथ छोड़कर कहीं नहीं चली गयी ?

बांसुरी के स्वर थम गए। उसके निराश स्वरों को सुनकर सतीश की आंखों में भी आंसू आ गए थे। एक लम्बी सांस लेकर धीरे-धीरे वह उठ बैठा। उसके मन में उत्सुकता पैदा हुई कि इस तरह से बांसुरी बजाने वाला उस्ताद कौन है ? जरा उसे देखना चाहिए।

उठकर देखा—पास ही यमुना की ओर मुंह किए एक आदमी चुपचाप बैठा है। वेशभूषा से लगा—वह भी बंगाली ही है।

सतीश अपने स्थान से उठकर उसके पास जा बैठा।

उस आदमी को अपनी ओर देखने पर सतीश ने कहा, "महाशय, कृपा करके एक बार और बांसुरी बजाइएगा ?"

उस आदमी ने कोई उत्तर नहीं दिया। बस जरा-सा हंसकर फिर बांसुरी बजाने लगा। एक बार फिर बांसुरी में निराशा भरी एक करुण रागिनी बज उठी। वह बांसुरी जैसे रोने के अतिरिक्त और कुछ जानती ही नहीं थी।

रोते-रोते बांसुरी फिर थम गयी। सतीश और वह आदमी कुछ देर तक अपने-अपने स्थान पर मौन बैठे रहे।

इसके बाद सतीश ने प्रकृतिस्थ होकर धीरे-धीरे कहा—"आपकी बांसुरी के भीतर रोने का स्वर और कितना भरा हुआ है ?"

उस आदमी ने वैसी ही करुण हँसी हँसकर कहा—"आपका मन रखने के लिए मेरी बांसुरी हँस भी सकती है। सुनिएगा...।"

इतना कहकर उसने फिर बांसुरी उठाकर बजाने के लिए मुंह से लगायी।

सतीश जल्दी से रोकते हुए बोला, "नहीं महाशय, आपके पास हँसी का स्वर ठीक तरह जम नहीं पाएगा। इस ताज का तो विरही के जमे हुए आंसुओं से निर्माण किया गया है।"

उस आदमी ने कहा—"इसीलिए तो मेरी बांसुरी भी वही राग अलाप रही है। इस दुःख भरे संसार के साथ रुदन के स्वर के अतिरिक्त और कोई स्वर मेल ही नहीं खाता।"

बातचीत सुनकर वह आदमी सतीश को बहुत ही भला मालूम हुआ। उसने कहा—"यदि आप कुछ और खयाल न करें तो मैं आपका परिचय जानना चाहता हूं। क्या कृपा करके बताइएगा ?"

उस आदमी ने कहा—"मेरा नाम क्षितीश चन्द्र चौधरी है। मकान कपिल गंगा में हैं। आपका नाम-धाम...?"

सतीश ने कहा—मेरा नाम सतीश चन्द्र राय है। बर्दवान जिले के जगदीशपुर गांव में घर है।"

यह सुनते ही क्षितीश के हाथ से छूट कर बांसुरी जोर से नीचे गिर गयी। अत्यन्त आश्चर्य के साथ वह अवाक् होकर सतीश के मुख की ओर ताकने लगा।

सतीश ने कहा—"देखिए, बांसुरी टूट तो नहीं गयी ?"

इतना कहकर उसने बांसुरी उठाकर क्षितीश के शिथिल हाथ में थमा दी।

इतने में स्वयं को संभालकर क्षितीश ने पूछा—"क्या जगदीशपुर में सतीश चन्द्र राय नाम के कोई और सज्जन भी रहते हैं ?"

सतीश ने कहा, "जी नहीं। हां लखनऊ में जहां मैं नौकर हूं, मेरे नाम के एक सज्जन अवश्य रहते हैं।"

अब क्षितीश के मन में कोई सन्देह नहीं रह गया। फिर भी बिलकुल निश्चिन्त होने के लिए उसने पूछा, "क्या आपकी ससुराल कालीग्राम में है ?"

भौंहें सिकोड़ कर संदिग्ध स्वर में सतीश ने उत्तर दिया, "हां। लेकिन आपको यह कैसे मालूम हुआ ?"

क्षितीश अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला, सतीश बाबू, आपके इस प्रश्न का उत्तर मैं बाद में दूंगा। इस समय भगवान की कृपा से ऐसे अनोखे ढंग से जब आपसे भेंट हो गयी है, तब मैं आपको छोड़ूंगा नहीं। पास ही मेरा डेरा है। आपको मेरे साथ चलना होगा।"

थोड़ी देर तक क्षितीश की ओर भौंचक्के की तरह देखते रहने के बाद सतीश ने कहा, "मुझे आपके डेरे पर चलना होगा ?...क्यों ?"

क्षितीश ने हंसकर कहा, "आपको इस क्यों का उत्तर मेरे डेरे पर चलने पर ही मिलेगा।"

सतीश—"आप कौन हैं ?"

क्षितीश—"एक जासूस।"

सतीश—"इसके मानी।"

क्षितीश—"धीरे-धीरे जान जाएंगे। अब उठिए। चलिए, देर मत कीजिए।"

इतना कहकर क्षितीश ने सतीश के दोनों हाथ पकड़ लिए और एक प्रकार से उसे जबर्दस्ती खींचकर अपने डेरे में ले आया।

क्षितीश की चिर संगिनी मूल्यवान बांसुरी ताजमहल के सफेद संगमरमर के चबूतरे पर चांदनी में एक काली रेखा के समान पड़ी रह गयी। आनन्द के आवेश में उसे बांसुरी का ध्यान ही नहीं रहा।

26

दो दिन से हरनाथ मैत्र एक दूसरे गांव में थे। किसी यजमान के यहां कोई शास्त्रोक्त अनुष्ठान कराने के लिए उनका दो दिन वहां रहना आवश्यक था। यजमान के यहां का सारा काम-काज आज समाप्त कराने के बाद दोपहर को वे अपने गांव की ओर लौट रहे थे। उनके पीछे-पीछे दो आदमी और आ रहे थे जिनके सिर पर दो भारी गठरियां थीं। जिनमें यजमान के यहां से मिला हुआ सामान बंधा था। एक गठरी में पीतल का एक नया कलसा भी चमक रहा था। सारांश यह है कि यजमान के यहां से पंडितजी को यथेष्ट लाभ हुआ था।

कड़ी धूप की जलन से मुक्ति पाने के लिए हरनाथ ने अपने मुंडे हुए सिर पर भीगा हुआ अंगोछा कई पर्त करके रख रखा था और एक सफेद कुर्ते की छाया में तेजी से अपने घर की ओर चले जा रहे थे। उनके बाएं हाथ में यजमान के दिए हुए धोती के दो जोड़े थे।

इन्हीं कुछ दिनों में हरनाथ का चेहरा जैसे सूख गया था। वह बूढ़े हो गए थे। कमर भी जैसे कुछ झुक गयी थी। उनकी दोनों आंखें भीतर की ओर धंस गयी थीं और उनके नीचे स्याही-सी जम गयी थी। उनके चेहरे को देखने से ही पता चल जाता था कि उनके हृदय के भीतर कैसी भीषण अग्नि धधक रही है।

अब यजमानी की उन्हें बिलकुल ही इच्छा नहीं है। कहीं-कहीं चले तो जाते हैं, तो यजमानों के बहुत कहने-सुनने और अपनी आवश्यकताओं से विवश होने पर ही। इसके साथ ही अपने दुःखी मन को बहलाना भी इसका एक उद्देश्य होता है।

चारों ओर कड़ी धूप फैली हुई थी। वह धूप जिसमें लकड़ी भी सूख कर फट जाती है। रास्ते की मिट्टी-धूप में जलकर आग के समान तप रही थी हरनाथ किसी ओर देखे बिना सीधे बढ़े चले जा रहे थे।

सहसा तभी दाहिनी ओर एक आवाज आई—"यह फितरत...यह मात।"

हरनाथ समझ गए, शशि मुकर्जी जी के चबूतरे पर हमेशा की तरह इस समय भी शतरंज खेलने का दैनिक अड्डा जमा हुआ है। कमला के गायब हो जाने के बाद से उन्होंने इस शशि मुकर्जी को बहुत अच्छी तरह पहचान लिया था। इसीलिए उसके प्रच्छन्न व्यंग्य से भरे चेहरे पर विनय प्रकट करने का महा आडम्बर

देखते ही हरनाथ के हृदय के भीतर घाव पर नमक छिड़क देने जैसी पीड़ा जाग उठती थी।

लेकिन काने शशि की जो एकमात्र आंख थी उसमें सांप जैसी तीक्ष्ण दृष्टि थी। उसने चील जैसे चीं-चीं करने वाले गले से हरनाथ को देखते ही पुकारा—"नहीं भाई, धूप बहुत तेज है। धरती जैसे जल रही है। दूर से चले आने के कारण प्यास लगी है। इस समय नहीं ठहरूंगा। सीधा घर जाऊंगा।"

शशि बगुले के समान एक-एक डग भरता हुआ हरनाथ के पास पहुंच गया और परेशानी प्रकट करते हुए बोला, "यह क्या दादा ? प्यास लगी है तो आओ चलो। मेरे यहां डाब का ठंडा जल पियो।"

हरनाथ बोले, "अरे भाई, घर तो पहुंच ही गया हूं। स्नान-पूजा आदि करना है अभी। सब कामों से छुट्टी पाकर की जल पीऊंगा।"

इतना कहकर उन्होंने फिर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया।

शशि ने अत्यन्त आग्रह भरे स्वर में कहा—"ठहरो दादा, भले ही जल मत पियो। कम-से-कम एक शुभ समाचार तो सुनते जाओ।"

.हरनाथ निराश भाव से करुण स्वर में बोले—"शुभ समाचार का नाम मत लो भाई। इस जीवन में अब मेरे लिए शुभ-अशुभ दोनों ही एक समान हैं।"

शशि ने मुंह की अंधेरी गुफा के मटमैले दांत चमकाकर हंसते हुए कहा—"हरनाथ दादा, इस तरह संसार से अब जाना उचित नहीं है। यदि मैं आपको वास्तव में एक शुभ समाचार सुनाऊंग, तो मुझे क्या खिलाएंगे ? बताइए।"

शशि का रंग-ढंग देखकर हरनाथ के मन में तत्काल एक संदेह बिजली के समान चमक उठा। दुष्ट शशि अकारण ही कुछ करने वाला आदमी नहीं है। अचानक ही उसके इतनी आत्मीयता दिखाने का कारण क्या है ? उद्विग्न भाव से उन्होंने कहा, "शशि तुम क्या चाहते हो ? क्या तुमको कमला का कोई समाचार मिला है ? इतने दिन से मैं मना रहा था, वही हुआ ? क्या कमला मर गयी ? बोलो, बोलो, इससे बढ़कर मेरे लिए और कोई शुभ समाचार हो ही नहीं सकता।"

शशि ने बनावटी सहानुभूति से यथा सम्भव चेहरे को बिगाड़कर कहा—"यह आप क्या कहते हैं हरनाथ दादा ? पिता होकर पुत्री की मृत्यु की कामना मत कीजिए। छिः !"

हरनाथ का सन्देह अब और अधिक बढ़ गया। उन्होंने उत्सुकता से उत्तेजित होकर कहा—"शशि जो कुछ कहना चाहते हो जल्दी कह डालो।"

शशि ने अपनी हंसी को थोड़ा और मधुर बनाते हुए कहा—"अरुण कमला को लेकर कलकत्ते से लौट आया है।"

हरनाथ की छाती में जैसे किसी ने बड़े जोर से हथौड़ा दे मारा। दोनों हाथों से सीना थामकर वज्र से आहत व्यक्ति के समान स्तम्भित और निर्जीव होकर वह जहां के तहां खड़े रह गए। उनकी आंखों के सामने दोपहर के सूर्य के समुज्वल प्रकाश को जैसे पलक झपकते अंधकार से ढंक गया।

जिस प्रकार कोई बिलाव अधमरे चूहे का तड़पना निष्ठुरता भरी आंखों से देखता है, ठीक उसी प्रकार शशि मुकर्जी हरनाथ मैत्र की ओर एकटक देखने लगा।

आश्चर्य का पहला धक्का लगने पर हरनाथ की ऐसी दशा हुई थी। लेकिन दूसरे ही पल उस आश्चर्य को दबाकर क्रोध की आग बड़े जोरों से धधक उठी। भीषण क्रोध तथा अपमान की उत्तेजना से हरनाथ का चेहरा एकदम लाल हो उठा। माथे की सारी नसें फूल उठीं। क्रोध की अधिकता से उनके हाथ-पांव कांपने लगे। उन्होंने जलती हुई आंखों से शशि की ओर देखते हुए पूरी शक्ति से चिल्लाकर कहा—"अरे महापापी, क्या यही तेरा शुभ समाचार है ? तेरे सिर पर गाज गिरे। तेरा सर्वनाश हो।"

इस प्रकार कहते-कहते एक तरह से दौड़ते हुए ही वह अपने घर की ओर चल दिया। कुछ दूर पर उन्हें शशि के अड्डे से कई आदमियों के साथ हंस उठने की आवाज सुनाई दी।

वास्तव में इतनी देर तक शशि के दल के लोग बड़ी उत्सुकता के साथ जैसे एक अत्यन्त उत्तेजक नाटक का विचित्र अभिनय देख रहे थे। हरनाथ के जाने के बाद खूब जोर से जी भर कर हंस लेने के बाद गांव के मुखिया बसु महाशय ने कहा—"धन की गरमी से अब तक हरनाथ के पैर जैसे धरती पर पड़ते ही नहीं थे। लेकिन सिर पर तो दर्प हरण करने वाले मधुसूदन हंस रहे हैं, यह तो उसे मालूम ही नहीं था। अच्छा शशि, अब हरनाथ जाकर क्या करेगा ? बताओ तो भला ? बेटी को घर में रखेगा या घर से निकाल बाहर करेगा ?"

हरनाथ के उस उग्र रूप को देखकर और उसके मुंह से निकले अभिशापों को सुनकर पापी शशि का हृदय भी भयभीत हो उठा था। किसी प्रकार उस भय को दबाकर शशि ने कहा—"लगता है, निकाल बाहर ही करेगा। लेकिन यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि बुड्ढा जिस प्रकार बारूद के पतीले की तरह पल भर में सुलग उठता है उसी प्रकार इसका क्रोध शान्त होने में भी देर नहीं लगती। फिर हजार हो, है तो बाप ही। बेटी को देखकर, उसका रोना-धोना सुनकर बाप का हृदय पसीज उठे, तो कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। खैर, चाहे जो भी हो। तुम तब तक यहां बैठकर एक बाजी और बिछाओ। मैं जाकर मालिकों को यह समाचार सुना आऊं।"

एक आदमी ने पूछा—"क्या कहोगे जाकर ?"

शशि बोस—"कहूंगा कि हरनाथ मैत्र लौट आए हैं। कमला का समाचार मैंने पहले ही जमींदार बाबू के कानों तक पहुंचवा दिया है। केवल हरनाथ के यहां न होने के कारण ही वे दो दिन से अपना क्रोध दबाए चुप बैठे थे।"

वहां जो लोग उपस्थित थे। सभी के चेहरों पर भारी सन्तुष्टि और सुख के लक्षण दिखाई दिए। हरनाथ के घर की दिन-पर-दिन होती हुई श्री वृद्धि को देखकर गांव के जो लोग मन-ही-मन ईर्ष्या-द्वेष रखते थे, आज उनके हृदय की ज़लन को बुझाने का शुभ सुयोग आ गया था।

27

हरनाथ एक उल्का की भांति, भयंकर तूफान के समान जब बड़ी तेजी से घर के भीतर घुसे तब उनकी पत्नी अरुण और कमला के सामने परोसी हुई थालियां लाकर रख रही थी।

हरनाथ पर सबसे पहले कमला की ही नजर पड़ी। वह जल्दी से पीढ़े पर से उठी और रोती हुई उनकी ओर दौड़ पड़ी और हरनाथ के पैरों को जोर से पकड़कर उनसे लिपट गयी।

हरनाथ की पत्नी भी दुःख और हर्ष के सम्मिलित आवेग से रो पड़ी और बोली—"भगवान की कृपा से तुम्हारी कमला लौट कर आ गयी।"

हरनाथ का विचित्र हाल हो गया। उन्होंने एक बार कमला की ओर, और एक बार अपनी पत्नी की ओर पागलों जैसी उद्भ्रान्त दृष्टि से देखा।

उसके बाद अरुण की ओर देख करके गरज उठे—"अरुण !"

उनकी कठोरता भरी पुकार को सुनकर बालक अरुण का सारा उत्साह न जाने कहां हवा हो गया ? उसने दबे हुए धीमे स्वर में कहा—"बप्पा ?"

हरनाथ की पत्नी अपने पति के चेहरे और उनकी आवाज को सुनते ही मन-ही-मन शंकित हो उठी। और मन-ही-मन भगवान का स्मरण करने लगी। हरनाथ मैत्र का क्रोध गांव भर में विख्यात है। गांव के बूढ़े से लेकर बच्चे तक उनके क्रोध की भयंकरता से भली-भांति परिचित हैं। क्रोध में आकर अकसर उन्होंने ऐसे काम कर डाले थे, जिसके लिए उन्हें बाद में कम पछताना नहीं पड़ा था। तात्पर्य यह है कि क्रोध आने पर उन्हें भला-बुरा कुछ भी सूझता नहीं था।

हरनाथ ने क्रोध और कठोरता भरे स्वर में पूछा, "अरुण, तुझे कमला कहां मिली थी ?"

अरुण ने धीरे से कहा, "क्षितीश बाबू के मकान में।"

हरनाथ ने आंखें निकालकर कहा– "क्षितीश बाबू ? क्षितीश बाबू कौन हैं ?"

क्रोध में भरे हुए पिता के साथ उस समय बात करने का साहस अरुण नहीं कर सका। उसने अत्यन्त दीन भाव से करुणा भरी दृष्टि से अपनी मां की ओर देखा।

तब हरनाथ की पत्नी ने पति की ओर बढ़ते हुए कहा, "अजी, यह बड़ी लम्बी कहानी है। कमला और अरुण दोनों के मुंह से मैं सारा हाल सुन चुकी हूं। सुनो...?

हरनाथ ने डपटकर कहा, "तुम चुप रहो। इन दोनों की जिन बातों पर तुमने विश्वास कर लिया है, उन पर तुम्हारी तरह गांव के और दस आदमी इतनी आसानी से विश्वास नहीं कर लेंगे।"

पत्नी ने कहा, "विश्वास नहीं करेंगे ? क्यों ?"

हरनाथ ने कहा, "क्यों नहीं करेंगे ? यह भी क्या खोलकर बताने की आवश्यकता है ? इस क्यों का उत्तर यही है कि वे लोग तुम्हारी बेटी को चरित्रहीन कहते हैं।"

अभी तक कमला धरती पर पड़ी देवी की प्रतिमा के समान हरनाथ के पैरों में पड़ी आंसुओं से धरती भिगो रही थी। लेकिन पिता के मुख से चरित्रहीन होने का अपवाद सुनते ही चोट खाई हुई नागिन के समान तीर की तरह तेजी से उठकर खड़ी हो गयी, और बोली, "पिताजी क्या तुम भी मुझे ऐसा ही समझते हो। लोगों की इस बात पर तुम विश्वास करते हो ?"

हरनाथ ने गम्भीर स्वर में केवल इतना ही कहा, "हूं।"

कमला की दोनों आंखों से जैसे चिनगारियां निकलने लगीं। उसने गर्व के साथ सिर उठाकर तीखे स्वर में कहा, "तुम भी पिताजी ? ...तुम भी...मेरे पिता होकर...इस बात पर विश्वास करते हो ?"

कमला की वह तेजस्विनी, प्रभावशालिनी और अभूतपूर्व मूर्ति देखकर हरनाथ चकित अवश्य हुए, लेकिन यह आश्चर्य उनके मन को तनिक भी विचलित नहीं कर सका। उनकी कठोरता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यही था कि उस दिन की वे दुःखदायी बातें, उनके हृदय पटल पर आज भी जलते हुए अक्षरों में अंकित थीं। जिस दिन वे योगेन्द्र मित्र के साथ कलकत्ता में हरेन्द्र के मेस में पहुंचे थे और उन्होंने खुदीराम के मुंह से यह सुना था कि कमला हरेन्द्र के साथ बम्बई रेल से पश्चिम की ओर गयी है। इसके अतिरिक्त क्षितीश...! यह कौन आदमी है ? उसके मकान में कमला क्यों थी ? इससे बढ़कर कमला की चरित्रहीन का प्रमाण और क्या हो सकता है ?

वह चिल्ला उठे–"हां, मैं भी विश्वास करता हूं। जो बात स्वयं जानकर आया हूं, उस पर विश्वास न करूं, तो और क्या करूं ? इतने दिनों के बाद तू फिर यहां क्यों आई ? तुझसे मरा नहीं गया ? तू क्यों...?"

दोनों कानों के छेदों में उंगलियां ठूंसकर, आंखें मूंद कर गहरी वेदना के कारण रुंधे स्वर में कमला कह उठी—"अब और नहीं सुन सकती पिताजी। बस...बस...बहुत हो गया। ...हाय भगवान ! तुम्हारे इस संसार में नारी की जाति इतनी असहाय है। ओह...!"

कमला को बेहोशी-सी आ गयी। वह धरती पर गिरने ही वाली थी कि मां ने झपट कर उसे संभाल लिया।

कमला की इस दशा को देखकर भी हरनाथ ने कोई ध्यान नहीं दिया। दूसरी ओर मुंह फेरकर दृढ़ता भरे स्वर में बोले—"मेरे घर में कलंकिनी के लिए कोई स्थान नहीं है। यहां अब एक घड़ी भी तेरा रहना नहीं हो सकता। चली जा, अभी चली जा...नहीं तो...?"

हरनाथ की पत्नी के आंसू भरे गले से कहा—"अजी, क्या तुम्हारा कलेजा पत्थर का है ? ऐसी बात जबान पर भी मत लाओ।"

हरनाथ ने वैसी दृढ़ता से तीखे स्वर में कहा—"देखो, जिस दोष के कारण योगेन्द्र मित्र ने अपनी इकलौते बेटे की ममता त्याग दी, उसी दोष से दूषित इस पापिन को मैं किस मुंह से घर में रख सकता हूं ?"

पत्नी ने कहा—"पिता ने त्याग दिया तो क्या हुआ ? समाज तो हरेन्द्र को अपने से अलग नहीं रखेगा। फिर वह मर्द-मानस है और कमला नारी की जाति है। इस विपदा में अगर तुम इसे आश्रय न दोगे तो इसे कौन समेट कर रखेगा ?"

हरनाथ ने कहा—"इसे आश्रय देने वाला बस एक ही है—यमराज ? अगर कमला की देह में सत्य की एक बूंद भी हो तो इसे इसी समय जाकर यमराज का आश्रय ले लेना चाहिए।"

कहते-कहते हरनाथ की आंखों से गर्म-गर्म आंसू टप-टप कर टपकने लगे। वे आंसू नहीं रक्त की बूंदें थीं।

कमला ने अचानक अपने को मां के आलिंगन से अलग करके पिता के मुख की ओर शान्त दृष्टि से एकटक देखते हुए स्थिर स्वर में कहा—"अच्छी बात है पिताजी, यही होगा। तुम सब ने मिलकर जिस आश्रय से मुझे वंचित किया है, देखूं कि यमराज आश्रय देते हैं या नहीं।"

इसके बाद घूमकर भरपूर नजरों से मां के चेहरे की ओर देखकर भरी आवाज में धीरे-धीरे उसने कहा—"मां, अपने दामाद से यदि तुम्हारी कभी भेंट हो तो उनसे मेरा यह अन्तिम निवेदन कह देना कि कलंकिनी को अपवाद लेकर मरने पर भी मेरी पति-भक्ति अभी किसी भी दिन सती सीता-सावित्री, से रत्ती भी भी कम नहीं हुई थी।"

कहते-कहते उसका गला जैसे बिल्कुल रुंध गया। आंखों में आंसू भर आए। लेकिन यथा शक्ति सारे उच्छ्वास को दबाकर, मां की डाली हुई सारी रुकावटों से बचकर, वह तेजी से घर के बाहरी द्वार की ओर बढ़ गयी।

लेकिन सहसा न जाने क्या देखकर वह चौंक उठी और रुककर खड़ी हो गई।

उसी पल सबको आश्चर्य में डालता हुआ हरेन्द्र घर के भीतर घुस आया और कमला के सामने खड़ा होकर कहने लगा—बहिन, मैं पहले ही जानता था कि ऐसा होगा। इसीलिए तुमको विदा करने के बाद कलकत्ते में निश्चिंत होकर मुझसे रहा नहीं गया।.तुम्हारी खोज में मैं पहले जगदीशपुर गया था। वहां से सारा हाल सुनकर यहां दौड़ चला आया हूं।"

हरनाथ पहले तो अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं कर सके। हरेन्द्र इस तरह साहस करके उनके घर में पैर रख सकता है, यह बात वे सोच भी नहीं सकते थे। इसकी कल्पना करना भी उनके लिए असम्भव था। एक तो यों ही दोपहर की कड़ी धूप से जलते-भुनते पैदल चलने से और भूख-प्यास के सताने से उनका शरीर शिथिल हो रहा था, अपने वश में नही था; उस पर यह विषम-उत्तेजना और भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों का आवेश भरा घात-प्रतिघात। इस अन्तिम धक्के से तो वे आपे से बाहर हो गए। हांफते-हांफते उन्होंने कहा—"नहीं, अब और सहन नहीं कर सकता। हे भगवान ! इन अग्नि परीक्षा से मुझे मुक्ति दो, प्रभु !"

यह कहकर वे धम्म से धरती पर बैठ गए और दोनों घुटनों के बीच मुंह छिपा लिया।

ठीक उसी समय दरवाजे पर से किसी ने गम्भीर स्वर में पुकारा—"हरनाथ घर में हो क्या ?"

हरनाथ की पत्थर की अचल मूर्ति के समान, जहां के तहां बैठे रहे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

हरेन्द्र ने कमला की ओर देखकर कहा—"मेरे पिताजी पुकार रहे हैं।"

28

क्षितीश के डेरे से बाहर निकल की सतीश जब सड़क पर आ खड़ा हुआ, काफी रात बीच चुकी थी। प्राणिहीन सन्नाटे के बीच उलझे हुए चिन्ता सूझ का सिरा खोज निकालने के अवसर से उसे पलभर में सतर्क और सचेत कर दिया। उसके उत्साह तथा प्राणहीन शरीर में जैसे नवीन प्राणों का संचार हो गया।

ताज के गुम्बद के ऊपर चन्द्रमा के प्रकाश की शुभ्र हंसी जैसे बार-बार, सहस्त्रों

बार यही कहने लगी कि पृथ्वी पर कोई भी वस्तु उपेक्षा की पात्र नहीं है। किसी भी वस्तु को तुच्छ नहीं समझना चाहिए। मनुष्य जिस वस्तु को तुच्छ समझता है, उसे अपनी हीनता की छाप देकर कलुषित तथा कलंकित रूप में देखता है।

अकारण उससे दूर हट जाने की इच्छा अज्ञानता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

कमला की कहानी याद करके—जिसे वह आदि से अन्त तक अभी और क्षितीश के मुंह से सुन चुका था—उसके मन का एक भाग आनन्द और सन्तोष से उमड़ने लगा था। उसी प्रकार दूसरा भाग कुंठा और ग्लानि से क्षुब्ध तथा आहत हो उठा। उसे अपनी मां का कथन याद आ गया। शास्त्रों ने सत्य ही कहा—भले ही कितना ही अशिक्षित और निरक्षर क्यों न हो, माता-पिता ही है। वह तो आरम्भ से ही कहती चली आ रही है कि उस बेनामी पत्र पर विश्वास करके उसने अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य किया है।

सतीश जहां ठहरा था, वहां जाने की उसकी इच्छा नहीं हुई। धीरे-धीरे चलता हुआ वह फिर उसी स्थान पर पहुंच गया, जहां क्षितीश से उसकी भेंट हुई थी। वह उसी चबूतरे पर जाकर बैठ गया।

कैसी सुन्दर रात है। कितना मनोहर स्थान है, दूर तक यमुना का श्यामल जल—उसके तटों पर बिखरी-चमकीली, उज्जवल बालू पर नचाती हुई चांदनी जैसे उसी के समान जागती हुई बैठी है।

सहसा सतीश के सिर के ऊपर से एक चमगादड़ चीत्कार करता हुआ उड़ता चला गया। उसकी चीत्कार की प्रतिध्वनि थोड़ी देर के बाद आकाश में गुम हो गयी। लेकिन गुम्बद के भीतर वह बहुत देर तक गूंजती रही।

सतीश सोचने लगा, इस चमगादड़ को तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इतना प्रकाश है, इतनी शोभा है लेकिन वह इसके आनन्द से इस प्रकार वंचित क्यों है ? अच्छा, यह स्वयं इस आनन्द से वंचित है या किसी अन्य की जो कोई इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कहता है शायद वह अपने मन की गढ़ी हुई बात ही कहता है।

घुमा-फिरा कर सतीश फिर अपने सम्बन्ध में ही सोचने लगा। कमला उसकी मां की बीमारी का हाल सुनते ही व्याकुल होकर समस्त भय-भावना को त्याग कर और मिथ्या लांछन की परवाह न करके उसकी सेवा करने के लिए दौड़ी चली गयी है। और वह ? वह तो कायर और कपूत है।

सतीश की आंखों के आगे कमला का चित्र उसके शाश्वत सौन्दर्य के साथ उभर उठा। रोगिणी मां की शय्या के पास पतिपरायणा उसकी सती-साध्वी पत्नी बैठी उनकी सेवा कर रही है। अनाहार और अनिद्रा के कारण उसकी देह दुर्बल हो गई है। यही

तो वास्तविक गृहस्थी है। इसी का नाम तो स्वर्ग है। इसीलिए तो मनुष्य का मन इस गृहस्थी को, इस स्वर्ग को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता—जा भी नहीं सकता।

प्रगाढ़ प्रेम-प्रीति और कृतज्ञता से उसका हृदय उमड़ा उठा और आंखों में आंसू झलकने लगे। उसे लगा, इस समय उसका सबसे प्रथम और महान कर्त्तव्य घर जाकर मां की सेवा करने में कमला की सहायता करना है। फिर वह अपने मन को कमला के निकट ले गया। कमला के दोनों कमल-कुसुम सरीखे कोमल हाथों को अपने हाथों में लेकर जैसे कहने लगा—"कमला क्या मैं तुम पर कभी अविश्वास कर सकता हूं ? क्या कभी तुम्हारे निर्मल चरित्र पर अविश्वास कर सकता हूं ?"

उसी समय वहां के चौकीदार ने पीछे से आकर ऊंचे स्वर में पुकारा—"कौन बैठा है ?"

सतीश ने उसे अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में समझा दिया कि वह एक यात्री है।

चौकीदार ने पूछा—"बाबूजी, क्या आप बांसुरी भी बजाते हैं ?"

सतीश ने देखा, क्षितीश की बांसुरी अभी तक वहां पड़ी है। उसने बांसुरी उठा ली।

चौकीदार कुछ व्यंग्य भी हंसी हंसता हुआ चला गया। उस हंसी का शायद तात्पर्य यह था कि इस संसार में तरह-तरह के सनकी भरे पड़े हैं।

उस बांसुरी को नीचे से ऊपर देखकर सतीश ने मन-ही-मन कहा—"यह वही बांसुरी है। लेकिन मेरे बजाने पर यह कभी भी उस प्रकार नहीं बज सकेगी। बल्कि न जाने कैसी बेसुरी तान अलापने लगेगी। वास्तव में कैसी अच्छी मुहूर्त में इस सज्जन से मेरी भेंट हुई है। इन्होंने मेरी कमला के प्राण बचाए, सतीत्व बचाया। इतना ही नहीं, मेरी चीज मुझे सौंप देने के लिए पैसा खर्च करके लखनऊ तक दौड़े गए। लेकिन मेरा दुर्भाग्य कि मैं वहां नहीं था।"

सहसा कमला के लिए सतीश का मन एकदम आकुल हो उठा। सोचा अब देर करने की आवश्यकता नहीं है। क्या जाने क्या-से-क्या हो जाए। आज रात के पिछले पहर की ट्रेन से ही रवाना हो जाऊंगा। लेकिन इस बांसुरी को कैसे लौटाऊं ? खैर, कुछ दिन मेरे ही पास रहे। मैं भी किसी दिन उनकी चीज उन्हें लौटा आऊंगा।

यह निश्चय करके सतीश उठा और तेजी के साथ अपने डेरे की ओर चल दिया।

रास्ते में उसे देखकर कुत्ते भौंकने लगे। एक कुत्ता भौंकता हुआ उसके पास आ गया। सतीश ने हाथ में पकड़ी बांसुरी उठाई तो डर कर भाग गया। सतीश ने मन-ही-मन हंसकर कहा—बहुत काम आई यह बांसुरी। शायद और भी किसी काम आ जाए।

सतीश जिस मेस में ठहरा हुआ था, उसका दरवाजा बन्द हो चुका था। बहुत पुकारने पर नौकर ने उठकर दरवाजा खोल दिया और कहा—"बाबू जी, आज बहुत रात कर दी आपने ?"

उसके हाथ में मिट्टी के तेल की एक जलती हुई डिब्बी थी और आंखों में नींद की खुमारी भरी थी।

सतीश ने कहा—"रघुआ, इस समय गाड़ी मिल सकेगी ? अगर ले आया तो इनाम दूंगा।"

"जो हुक्म," कहकर रघुआ गाड़ी की तलाश में चल दिया।

समान कुछ बहुत था ही नहीं। थाली, लोटा और कम्बल भी नहीं था। क्योंकि सतीश को यह आशा बिल्कुल नहीं थी कि हिमालय की किसी अंधेरी गुफा में बैठकर यह ध्यान मग्न हो सकेगा। और न मन में इतनी दृढ़ता ही थी।

मेस के मैनेजर को जगाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। क्योंकि वह अपने ग्राहकों से सदैव सावधान रहा करता था कि कहीं किसी दिन दाम चुकाए बिना ही न खिसक जाएगा, यह डर उन्हें हर समय लगा रहता था।

फिर सतीश तो उन्हें बिल्कुल ही विचित्र ढंग का जैसे कल्पनाओं में डूबा आदमी मालूम पड़ता था। रात को सोने के लिए जाने से पहले वे यह जान लेते थें कि कौन आया और कौन चला गया। कोई रसोई के बर्तन चुराकर न ले जाए, इस भय से सांझ होते ही दरवाजे की कुंडी वह भीतर से बन्द कर लिया करते थे। लेकिन सोते नहीं थे।

दरवाजा खोलकर घुसते ही सतीश ने उनकी भेंट हो गयी। वह कह उठे—"क्यों साहब, इतनी रात गए कहां थे।"

मैनेजर बाबू अवाक् होकर सतीश की ओर ताकने लगे। सतीश कोठरी खोलकर भीतर चला गया। दीपक जलाया और अपना थोड़ा-सा सामान तथा बिछौना आदि समेट कर बांधने का प्रयत्न करने लगा।

तभी रघुआ ने लौटकर कहा—"बाबूजी, गाड़ी तो नहीं मिली। एक टमटम ले आया हूं।"

सतीश ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"अच्छी बात है। उससे ठहरने के लिए कह दो।"

मैनेजर बाबू की आंखें धीमे-धीमे फैलने लगीं। मामला क्या है ? यह आदमी भागा तो नहीं जा रहा ? रंग-ढंग कुछ अच्छे दिखाई नहीं दे रहे। रघुआ ने कोठ़री में आकर सतीश के सामान की एक बड़ी-सी गठरी बांधकर सिर पर रख ली और उसे टमटम में रखने चला गया।

सतीश ने कोठरी से निकलकर कहा, "अच्छा तो मैं अब जाता हूं, मैनेजर बाबू। मेरा इरादा इसी ट्रेन से अपने घर जाने का है।"

अब मैनेजर बाबू से सहन न हो सका। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा—"मेरा किराया और भोजन खर्च आदि...?"

बस इतना कहकर तनिक इधर-उधर करके एकदम थूक गटक कर बोला—"घर से बुरे समाचार मिले हैं। इसलिए अचानक ही इस तरह जाना पड़ रहा है। आप कुछ ख्याल न करें।"

मैनेजर बाबू असहिष्णु होकर कह उठे—"यही नहीं होगा जनाब। मेरा हिसाब चुकाने के बाद ही आप यहां से जा सकेंगे। नहीं तो...!"

सतीश वास्तव में अपने आपे में नहीं था, उसे क्रोध आ गया। बोला—"नहीं तो क्या ? जनाब तो बहुत ही ओछी तबियत के आदमी दिखाई देते हैं।"

मैनेजर बाबू में एक शारीरिक दोष था। क्रोध की दशा मे वह प्रत्येक शब्द के पहले अक्षर–का अनेक बार उच्चारण करने लगते थे। वह बोले—"ओ-ओ-ओ-ओ-ओछी त-त-त-त-तबियत के आ-आ-तु-तु-तु-तु-तुम हो या म-म-म-म-मैं ? यह हि-हि-हिसाब चु-चु-चु-चु-चुकाए बि-बि-बि-बिना च-च-च-च-चले जा रहे हो ?"

सतीश ने कहा—"बिना हिसाब चुकाए कौन चला जा रहा है जी। रुपए देने भूल गया था। उसी के लिए तो मैं तुमसे क्षमा मांग रहा था।"

सतीश ने कहा—"आपका हिसाब कितना हुआ ? क्या देना होगा ?"

मैनेजर ने पूछा—"पांच रुपए साढ़े बारह आने।"

सतीश ने उसके हाथ में छः रुपए देकर कहा—"बाकी साढ़े तीन आना रघुआ को दे देना।"

मैनेजर बाबू ने अत्यन्त प्रसन्न होकर हाथ बढ़ाकर रुपए लिए और मन-ही-मन सतीश की प्रशंसा करने लगे—"वाह, आदमी बहुत अच्छा है। बड़ा शाह खर्च है। हिसाब की तफसील भी नहीं पूछी और मुंह मांगे दाम दे दिया।"

वास्तव में मैनेजर ने अनुमान से मनमाने दाम मांग लिए थे। यदि ठीक-ठीक हिसाब किया जाता तो शायद तीन रुपए से कभी अधिक नहीं निकलते।

सतीश सीधा टमटम पर जा बैठा। टमटम चल पड़ी।

टमटम कहने भर को टमटम थी। उसका घोड़ा एकदम मुर्दा हो रहा था। कोचवान ने घोड़े की पीठ पर कस कर दो-चार चाबुक जमाए और मुंह से भी विचित्र प्रकार का शब्द कहने लगा। टमटम किसी प्रकार स्टेशन की ओर बढ़ने लगी।

29

हरेन्द्र की आवाज सुनते ही योगेन्द्र के क्रोध का पारा इतना चढ़ गया कि वह बाहर खड़े रहकर हरनाथ के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं कर सके। उनका क्रोध और आश्चर्य इस सीमा तक बढ़ गया कि उनके घुटने तक कांपने लगे।

जब वह हरनाथ के घर के भी आंगन में जाकर खड़े हुए तो प्रलय की साक्षात् मूर्ति दिखाई दे रहे थे। उनकी आंखें क्रोध से लाल और बड़ी-बड़ी हो गयी थीं। माथे के ऊपर की लम्बी-मोटी नसें और भी फूल गयी थीं। सेही के कांटों के समान उनकी मूंछ के खिचड़ी बाल भी खड़े हो गए थे।

योगेन्द्र मित्र ने चिल्लाकर कहा—"पाजी, नालायक बदमाश, तू यहां क्या कर रहा है ?"

अपने पिता के क्रोध से हरेन्द्र भली-भांति परिचित था। उसने मन-ही-मन निश्चय कर रखा था कि उनके क्रोध का भीषण आघात किसी-न-किसी दिन उसे अवश्य ही सहन करना पड़ेगा। इसीलिए वह पिता को कोई उत्तर न देकर आड़ा खड़ा हो गया और सिर झुका कर धरती की ओर ताकने लगा। यह बात स्पष्ट दिखाई दे रही थी कि वह स्वयं को कितना संभाल रहा है। जेब में पड़े उसके दोनों हाथों का ढंग देखकर उसके आत्म-दमन का पूर्ण परिचय प्राप्त हो रहा था।

बेटे की चुप देखकर योगेन्द्र मित्र का क्रोध शान्त होने की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया। उन्होंने हरनाथ की ओर मुड़कर कहा—"इस गधे को तुमने अपने घर में क्यों घुसने दिया जी ?" इसे जूते मान कर अभी बाहर निकाल दो। पल भर की भी देर मत करो। अभी निकालो।"

हरेन्द्र ने पिता की ओर मुंह घुमा कर संयत स्वर में कहा—"पराए घर में घुसना अगर अपराध है तो अकेला मैं ही अपराधी नहीं हूं।"

अपनी बात का इस प्रकार इतना बड़ा उत्तर सुनने का जमींदार योगेनद्र मित्र को अभ्यास नहीं था। इसलिए पुत्र के इस उद्दंडता भरे उत्तर को सुनकर वे सन्नाटे में आ गए। साथ ही उन्हें यह भी खयाल आ गया कि पुत्र के द्वारा इस प्रकार अपमानित न होने का उपाय उसके हाथ में ही था।

उसी समय कमला ने पुकारा—"काका ?"

योगेन्द्र ने एक बार उसके चेहरे पर दृष्टि डालकर बड़ी तेजी से अपना मुंह घुमा लिया। इससे प्रकट हो गया कि वे इस चरित्रहीन के साथ बात भी नहीं करना चाहते। और यह उनका दृढ़ निश्चय है।

लेकिन कमला ने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। अत्यन्त सहज भाव से बिना रुके कहने लगी—"आप लोग भारी भूल कर रहे हैं जो सारी बातों को जाने बिना ही हरेन्द्र दादा को अपराधी समझ बैठे हैं। हम लोगों ने रत्ती भर भी अपराध नहीं किया इसीलिए हम किसी से डरते नहीं हैं। अगर धर्म के लिए, सत्य के लिए आप लोग पता लगाकर देखें तो स्पष्ट जान जाएंगे कि मनुष्य व्यर्थ ही सन्देह करके कितनी भारी और भयंकर भूल कर बैठते हैं। मनुष्य-मनुष्य का विचार नहीं कर सकता। इसीलिए कहती

हूं कि आप लोग हम लोगों के प्रति अविचार करके अपराधी न बनें। एक दिन ऐसा आएगा जिस दिन अवश्य ही झूठ का यह गढ़ ढह जाएगा। उस दिन आपके पछतावे की सीमा नहीं रहेगी।"

हरनाथ और अधिक नहीं सह सके। उन्होंने उठकर एकदम निर्मम बाघ की तरह झपट कर कमला की गर्दन पकड़ ली। और उसे घसीटते हुए घर से बाहर निकल आए। बोले—"हरामजादी, इतने ही दिनों में नाटकों में अभिनय करना भी सीख आयी। चूल्हे में जा। मेरे घर में तेरे लिए स्थान नहीं है।"

इसके बाद उन्होंने जोर से दरवाजा बन्द कर लिया। हरनाथ की ओर सभी का ध्यान बंट गया था। इसीलिए इसी बीच हरेन्द्र अब बाहर निकल गया, यह कोई भी नहीं देख पाया।

योगेन्द्र बाबू जैसे स्तब्ध और गम्भीर भाव से गुनगुना रहे थे, वैसे ही अपने घर लौटे गए। उस समय उन्हें ख़याल भी नहीं आया कि आज की यह क्षण भी की अनभिज्ञता एक दिन जीवन की सर्वधिक दुर्लभ वस्तु बन जाएगी।

कमला कुछ देर तक स्वयं को असहाय जानकर सिसक-सिसक कर रोती रही। लेकिन रोने से तो मनुष्य को विपत्ति से मुक्ति नहीं मिल जाती। इस आकस्मित निष्ठुर आघात से टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरे हुए मन को कमला समेटने लगी। उसे सबसे अधिक भयानक वस्तु मनुष्य की सांत्वना और सहानुभूति की बातें मालूम हुईं। इसलिए वह धीरे-धीरे उस स्थान से उठकर बाग के एक कोने में जहां बांसों का घना झुरमुट था, उसके भीतर घुस गयी। कमला इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि जिस व्यक्ति के प्राणों का मोह होगा वह सांप, बिच्छू आदि के भय से उस स्थान पर आने की कभी भी हिम्मत नहीं करेगा।

उस स्थान पर बैठ कर उसने अच्छी तरह निश्चय कर लेना चाहा कि अब वह क्या करेगी ? उसने दोनों हाथ जोड़कर पूरी एकाग्रता से मन-ही-मन भगवान को पुकार क़र कहा—"हे भगवान् ! सुनती हूं, आप शरणागत-वत्सल और दीनबन्धु हैं। जिसको कोई आश्रय देने वाला नहीं होता, आप उसे आश्रय देते हैं। इस समय आप ही मेरा मार्ग-दर्शन कीजिए। मैं असहाय, अबला और अबोध हूं। कुछ नहीं जानती।"

ठीक उसी प्रकार उसे हरनाथ के कठोर वचन याद आ गए। वास्तव में क्या यमराज के पास ही उसे अन्तिम आश्रय है ?

एक भयानक आतंक से उसके सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। हृदय की धड़कनें बढ़ गईं। आत्महत्या ? नहीं, नहीं, वह आत्महत्या कभी नहीं करेगी। सुना है आत्महत्या करने वाले की आत्मा को अनन्तकाल तक नरक की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। वह क्यों करेगी आत्महत्या ? उसने कौन-सा अपराध किया है ? कौन-सा

पाप किया है ? लेकिन इस बांस वन के बीच बैठकर तो सारा जीवन बिताना सम्भव नहीं है। कोई-न-कोई उपाय तो करना ही होगा। उसे एक आश्रय चाहिए।

गाल पर हाथ रखकर कमला फिर सोचने लगी। हाय ! यदि आज सतीश उसके पास होता तो निश्चय ही वह उसके साथ इस तरह अन्याय तथा अविचार न कर पाता।

नहीं कर पाता ? क्या यह विचार ठीक है ? अच्छा, इस प्रकार सांसारिक जीवन और घर-गृहस्थी को छोड़ कर वह हिमालय में क्यों चले गए ? शोक से अथवा दुःख से ?

कमला ने धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा—"मनुष्य को समझना, उसके आन्तरिक भावों को जानना कितना कठिन है ? वह जो कुछ सोच रही है, वह सब उसका केवल अनुमान ही तो है। अनुमान सत्य ही होगा, यह कौन कह सकता है ?"

उसने एक लम्बी सांस छोड़कर कहा—"बाप रे ! अब तो और सोचा नहीं जाता—कितनी देर में सांझ होगी—गांव के लोग कितनी देर बाद सो जाएंगे ? बस, तभी जिस ओर भी सूझ पड़ेगा, उचित जान पड़ेगा मैं उठकर उसी ओर चल पड़ूंगी।"

दोनों घुटनों के बीच में सिर रखे, कमला कुछ देर चुपचाप बैठी रही। अब आगे भविष्य के सम्बन्ध में मन सोचता नहीं चाहता। जो होना होगा वही होगा। मनुष्य जब अपने सम्बन्ध में सोचते-सोचते ऊब जाता है, खीझ उठता है, तब अपने आप ही उसका ध्यान दूसरों की ओर चला जाता है।

इसीलिए कमला अब हरेन्द्र के सम्बन्ध में सोचने लगी। काका तथा बाबू ने तो उसका परित्याग कर दिया है। लेकिन वह तो मर्द-मानस है। उसे क्या चिन्ता ? सभी बेटों को बाप की जायदाद नहीं मिलती। सभी के पिता जमींदार और धनवान नहीं होते। पुरुष की जाति कितनी स्वाधीन है, कितनी स्वतन्त्र है। और हम नारियां कैसे बन्धनों में जकड़ी हुई हैं। हमारे हाथ-पांव किस तरह बंधे हुए हैं ? हम कितनी असहाय हैं ? उफ् !

जिस समय कमला पुरुषों के सुख और सुविधा की तुलना अपने अर्थात् नारी जीवन दुःखों और कष्टों के साथ कर रही थी उसी समय उसने अचानक देखा—उसके घर के पास जो छोटा-सा तालाब था, उसके किनारे पर काना शशि खड़ा है। उसकी आंख की पैनी दृष्टि तालाब के भीतर एक छोर से दूसरे छोर तक बार-बार जैसी किसी को खोज रही है। यह दुष्ट किसकी खोज में आया है, यह समझने में कमला को तनिक भी देर नहीं लगी। शैतान का यह भाई यह देखने आया था कि कमला की लाश कितनी दूर में फूलकर पानी के ऊपर तैरने लगेगी। क्योंकि उसे पूरा-पूरा विश्वास था कि घर से निकाले जाने के बाद कमला अवश्य तालाब में डूबकर मर गई होगी।

कमला सांस रोके चुपचाप बैठी रही। क्योंकि शशि उससे अधिक दूरी पर नहीं था।

कुछ देर तक इधर-उधर ताकते रहने के बाद शशि ने कहा—"इतनी जल्दी नहीं दिखेगी। लेकिन कल सवेरे तक तो अवश्य ही तैरने लगेगी। हा, हा, हा...!"

उसकी इस वीभत्स, कुत्सित और पैशाचिक हंसी को सुनकर शायद यमराज भी कांप उठते। भय के मारे कमला का समूचा बदन थर-थर कांप उठा। उसने जल्दी से अपनी आंखे मूंद लीं।

देखते-ही-देखते सांझ हो गई। बांसों की झुरमुट के भीतर झींगुरों की झनकार आरम्भ हो गयी। मानो वे संध्या के आगमन की प्रसन्नता में मिलकर स्वागत-संगीत गा रहे हों। कमला चुपचाप वहां से निकल भागने के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगी।

शशि घर लौट गया। मैदान से गांव की ओर आने वाले रास्ते पर चलकर लौटती हुई गायों के गले की घंटियां क्रमशः सुनाई देने लगीं।

चारों ओर से आने वाली आवाजों ने मिलकर संध्याकाल के क्षीण और अस्पष्ट प्रकाश के साथ जैसे एक शान्त-मधुर माया जाल की रचना करके कमला की आंखों के ऊपर तन्द्रा का पतला पर्दा-सा डाल दिया।

अचानक कमला चौंक कर जाग उठी। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए अपने आप से कहा—"कहां, वह तो नहीं आए ? ओह, क्योंकि मैं सपना देख रही थी ? यह तो बांसों का वही झुरमुट है और मैं उसी प्रकार उसके भीतर बैठी हुई हूं।"

दुर्विचार आवेग से, "उसके निष्ठुर आघात से कमला का हृदय जैसे मथा जाने लगा। उसका दम घुटने लगा। उसकी दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।"

30

सतीश जिस ट्रेन पर सवार हुआ था। वह एक बहुत ही सुस्त पैसेन्जर ट्रेन थी। वह जितना चली थी उससे कहीं अधिक समय स्टेशनों पर खड़ी रहती थी। और चलते समय भी बम्बई मेल या पंजाब मेल की भांति किसी भी स्टेशन को अवज्ञा के साथ छोड़कर नहीं जाती थी। इस सुस्त चलने वाली ट्रेन के भीतर का उतावला मन पिंजड़े में पड़े पंछी के समान ही छटपटा रहा था।

दोपहर की कड़ी धूप में जब ट्रेन किसी स्टेशन पर पहुंचकर खड़ी हो जाती थी तो उसके भीतर टिक पाना कठिन हो जाता था। प्लेटफार्म पर भी तेज धूप फैली रहती थी।

इसी प्रकार चलते-चलते ट्रेन तीसरे पहर के लगभग मुगलसराय स्टेशन पर पहुंचकर खड़ी हो गयी। सतीश ने वहां कुछ जलपान किया और फिर प्लेटफार्म पर इधर-उधर टहलने लगा। क्योंकि उस समय तक धूप बहुत ही हलकी हो गयी थी।

तभी दूसरी ओर के प्लेटफार्म पर एक और गाड़ी आकर रुकी। उस गाड़ी से कितने ही यात्री उतर कर अंधी भेड़ों की तरह सतीश की गाड़ी में बैठने के लिए दौड़े पड़े। सतीश ने देखा, अनेक देहाती स्त्रियां इस भयानक गर्मी में भी लाल इमली के सुलभ, सस्ते, हरे, नीले, पीले, लाल रंग के ऊनी शाल और बेलदार चादरें ओढ़े हुए लज्जा की रक्षा कर रही हैं। लेकिन पसीने में नहाई जा रही हैं।

एक विधवा दौड़ती हुई आई और सेकैंड क्लास के एक खाली डिब्बे को देखकर उसी में चढ़ गयी। लेकिन एक पल बाद ही काली वर्दी पहने एक टिकट कलेक्टर आ गया और उसने उस बेचारी बुढ़िया को डांटकर उतार देने की कोशिश की। बेचारी विधवा भय के मारे व्याकुल हो उठी। बोली—"भैया, एक मैं बैठी रहूंगी। बैठी रहने दो न। उतर कर दूसरे डिब्बे में गई तो कहीं गाड़ी न छूट जाए ?"

वह स्त्री बंगालिन थी। बंगला में बात कर रही थी और टिकट कलेक्टर हिन्दी बोल रहा था। दोनों में से कोई भी किसी की बात अच्छी तरह समझ नहीं पा रहा था।

सतीश ने जाकर उस विधवा से कहा—"मैया, तुम दूसरे डिब्बे में चली जाओ। गाड़ी छूटने में अभी देर है। इस डिब्बे में बैठने पर दुगुना किराया देना पड़ेगा।"

सतीश ने बंगला में समझाया तो वह स्त्री समझ गयी और उस डिब्बे में उतर गयी।

उतरकर उसने सतीश से कहा—"बेटा, तुम मुझे अपने डिब्बे में बैठा लो। मुझे राह-घाट का कुछ पता नहीं है। बड़े संकट में पड़कर घर से अकेली निकली हूं।

"अच्छा तो आइए, "कहकर सतीश तेजी से अपने डिब्बे की ओर बढ़ने लगा।

लेकिन तभी गार्ड ने सीटी दे दी औरी हरी झंडी दिखाने लगा।

सतीश ने देखा, अब अपने डिब्बे तक पहुंचना कठिन है। उसने सामने वाले डिब्बे का दरवाजा खोलकर उस विधवा को उसमें चढ़ा दिया और फिर स्वयं भी उसी में आ बैठा।

विधवा की आयु चालीस वर्ष के लगभग होगी। किसी समय रंग एकदम गोरा रहा होगा लेकिन शायद दुःख और कष्ट में पड़ने के कारण अब वह फीका पड़ गया था। सिर के सारे बाल काले थे। एक भी सफ़ेद नहीं हुआ था। लेकिन सारे बाल छोटे-छोटे कटे हुए थे। माथे और नाक के ऊपर गोदने का नीला निशान था।

दौड़-धूप की उत्तेजना का उद्वेग कुछ शान्त हो जाने पर उस विधवा ने पूछा—"भैया, तुम कहां जाओगे ?"

सतीश ने कहा—"मैं वर्कशाप के पास उतरूंगा। उसके बाद जगदीशपुर जाऊंगा। स्टेशन से जगदीशपुर अधिक दूर नहीं है।

विधवा ने आश्चर्य और सन्तुष्टि के साथ कहा—"जगदीशपुर जाओगे ? ओह, वहां का खयाल आते ही मुझे बहुत दुःख होता है। भैया, उस गांव में मेरी दूर की रिश्ते की एक मौसी रहती है। उसका बेटा सयाना, योग्य और कमाऊ है। लेकिन नालायक बहू के कारण बेचारी का घर बर्बाद हो गया। बसा-बसाया घर उजड़ गया। सुना है बदजात बहू अपने बाप के घर गयी थी। वहां से गांव के जमींदार के बेटं के साथ मुंह काला करके निकल गयी। यह सुनकर मौसी का बेटा लोटा-कम्बल लेकिन न जाने कहां चला गया हाय, हाय ! मौसी का भाग्य फूट गया। कितना लायक बेटा था। सुनती हूं, पश्चिम में कहीं नौकर था। पांच सौ रुपए तनख्वाह थी, सब छोड़ छाड़कर चलता बना। मर्दों की बलिहारी। वह लड़का अपनी उस पत्नी को बहुत चाहता था। लेकिन उस हरामजादी ने तो उसके चाहने की कद्र नहीं की। यह लड़के की मूर्खता थी कि एक स्त्री के लिए दुःखी होकर सब कुछ छोड़कर चल दिया। बूढ़ी मां का भी रत्ती भर खयाल नहीं किया। सुना है, उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी। हजारों में एक थी। मैं कहती हूं—होगी सुन्दर चूल्हे में जाए ऐसी सुन्दरता। वह सोना किस काम का जिससे कान फट जाए। बंगाल में ऐसी सुन्दर लड़कियों की कमी थोड़े ही है ढेरों मिल जाती हैं। पांच सौ रुपए महीने की नौकरी भला कहीं रखी है ?"

वह विधवा इसी प्रकार अटांक-शटांक बकती चली जा रही थी। नकली दाढ़ी-मूछें लगाकर आदमी जिस प्रकार आईने में अपने विकृत रूप से देखकर अपी हंसी को नहीं रोक पाता, ठीक वही दशा उस समय सतीश की हो रही थी। इन मन-गढ़न्त कहानी को सुनकर हंसी के मारे उसका पेट फूला जा रहा था। इस दूर के रिश्ते की आत्मीया को सबसे बढ़कर दुःख तो पांच सौ रुपए महीने की नौकरी का है।

सतीश ने मन-ही-मन हंसकर कहा—भारत के नर-नारी, बूढ़े-बच्चे सब की गुलामी की प्रवृत्ति प्रबल हो गयी है। इस देश के लोगों को नौकरी इतनी प्रिय है कि वे उसके लिए जान देते हैं। यदि यह प्रवृत्ति प्रबल न होती, तो इस देश का इतना अन्तःपतन ही क्यों होता है ? यह देश पराधीन और गुलाम क्यों बन जाता ? इस देश का शिन्ड, वाणिज्य-व्यवसाय रसातल को क्यों चला जाता है ?

सतीश ने पूछा—"आप तो इतनी दूर काशी में रहती हैं, फिर ये सारी बातें आपको किस तरह मालूम हुईं ?"

विधवा ने कुछ हंसकर कहा—"भैया, विदेश में रहकर अपने लोगों की खैर-खबर जानने के लिए मन कितना व्याकुल रहा करता है, इस बात को तुम मर्द लोग भला क्या जानो ? इसके अतिरिक्त एक कारण और भी है। मुझे मालूम है, मेरी मौसी

आरम्भ से ही बहू को अच्छी नजर से नहीं देखती थी। वह उसके विरुद्ध ही रहती थी।

अपने बेटे का दूसरा विवाह करने की उसकी पहले ही बड़ी इच्छा थी। मेरी फुफेरी ननद की एक लड़की के साथ उस लड़के के विवाह की बातचीत भी चली थी। लेकिन अब उन बातों से क्या लाभ ? न वह राम हैं, न वह अयोध्या ही है। उस लड़की का विवाह दूसरी जगह पक्का हो गया है। शायद माघ के महीने में ही हो जाएगा।"

इन बातों को सुनकर सतीश को एक प्रकार के आनन्द का ही अनुभव हो रहा था। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि उसकी कमला इस समय घर में बैठी उसकी मां की सेवा कर रही है। अन्यथा शायद ऐसी बातें वह सहन न कर पाता और बिगड़ उठता।

वह विधवा अधिक देर तक बैठी न रह सकी। एक कोने में सिमट कर सो गयी।

रात को धीरे-धीरे ठंडक हो जाने पर दिन भर की परेशानी के बाद सतीश को भी नींद आ गयी। वह खूब सोया। क्योंकि पिछली रात वह जागता ही रहा था।

सवेरे गाड़ी जब मधुपुर जंक्शन पर पहुंच कर रुकी तो सतीश ने एक के बाद एक चाय के दो प्याले पीकर शरीर को गर्म कर लिया। विधवा ने बैद्यनाथ धाम के एक पंडे से कुछ निमत्यि और प्रसाद के पेड़े प्राप्त कर लिए थे। बदले में कुछ दक्षिणा भी देनी पड़ी थी। पंडे ने अनेक प्रकार से कहकर यह बात विधवा के मन में अच्छी तरह बैठा दी कि गाड़ी में बैठकर बाबा बैद्यनाथ का प्रसाद खाने से विधवा के लिए कोई दोष नहीं है।

ठीक चार बाजे बर्दवान पहुंचनी चाहिए थी। लेकिन न जाने किसी कारण से वह आसनसोल में ही दो घंटे लेट हो गयी। इसलिए बर्दवान पहुंचते-पहुंचते दिन बिल्कुल ही ढल गया।

वह विधवा कहीं उतर गयी। यथा समय सतीश भी वेलतली स्टेशन पर उतर कर एक कुली के सिर पर बोझ लादकर घर की ओर चल दिया।

रास्ता चलते हुए वह जितना भी घर की ओर बढ़ने लगा उतनी उसके मन में उथल-पुथल बढ़ने लगी। मां बीमार है—उसका क्या हाल होगा ? लेकिन कोई चिंता नहीं निश्चय ही मलेरिया होगा। दो-चार दिन में लोट-पोट कर अच्छी हो जाएंगी।

इसके बाद उसे कमला की याद आ गयी।

मां ने उसे घर में न रखा हो ? निकाल दिया हो ? नहीं, ऐसा भी कहीं हो सकता है, मुझे बताए बिना ? लेकिन उस समय मैं वहां था कहां ? ओह ! घन न आकर दूसरी जगह पाकर मैंने कैसी भारी भूल की है। हे हरि ! हे दुर्गा मैया ! ऐसा न हुआ हो।

सतीश जब गांव में घुसा, काफी रात हो गई थी। उस समय रास्ते में गांव के किसी आदमी से भेंट होना सम्भव नहीं था।

सतीश भगवान् का नाम लेते-लेते राम-कृष्ण मिशन की डिस्पेन्सरी के पास पहुंच गया। उसने डिस्पेंसरी के सामने रुककर देखा, डॉक्टर भूपेन्द्र बाबू नहीं हैं। कम्पाउन्डर एक टूटी-सी बेंच पर बैठा एक बंगला अखबार खोले पढ़ रहा है।

सतीश ने वहीं से चिल्लाकर पूछा—"अजी नितायी, डॉक्टर कहां हैं।"

नितायी ने कहा—"अभी-अभी एक रोगी को देखने गए हैं। आप कब आए ? कुछ जरूरत है क्या ? लौटेंगे तब भेज दूंगा।"

सतीश ने कहा, "नहीं, जरूरत तो कुछ नहीं है। मां कैसी हैं, तुम्हें कुछ मालूम है ?"

नितायी—"जी, उन्हें तो बराबर कुनैन मिक्सचर दिया जा रहा है।"

सतीश कुछ ठिठक कर जरा इधर-उधर करके आगे बढ़ा। घर के सामने पहुंचकर उसका कलेजा जोर-जोर से धड़कने लगा। कुली के कई बार जोर-जोर से पुकराने पर दुर्गा देवी ने आकर दरवाजा खोल दिया और मनुष्य जैसे भूत को देखकर उसकी ओर ताकने लगीं। इसी प्रकार वे पुत्र की ओर पलभर ताकती रहीं, फिर जोर से रो पड़ीं।

सतीश ने उनका रोना रोकर, उन्हें घेर के भीतर ले जाकर पहले कुली को मजदूरी देकर विदा किया। इसके बाद मां ने रोते-रोते जो कुछ बताया उससे उसने यह सारांश निकला कि वह काली नागिन, अर्थात् कमला आई थी और दुर्गा देवी के कुछ न कहने पर ही अकड़ दिखाकर बाप के घर चली गयी। उन्होंने उसे बहुत रोकना चाहा। लेकिन...।

सतीश ने भला या बुरा कुछ नहीं कहा। वह धीरे-धीरे घर से निकलकर कालीग्राम की ओर चल दिया।

वह दिन भर न तो नहाया था और न उसने कुछ खाया ही था। उसके पैरों के नीचे से धरती जैसे खिसकने लगी। तो भी वह अपनी ससुराल की ओर बढ़ता ही रहा।

मैदान में सन्नाटा छाया हुआ था। चलते-चलते सतीश थक गया। उसके पैरों ने जवाब दे दिया थ। एक ऊंची जगह पर आकर बैठ गया और कालीग्राम की लम्बी राह की ओर ताकने लगा। चाहे जैसे भी हो इतना रास्ता उसे पार करना ही होगा।

पल भर विश्राम कर लेने के बाद वह फिर चलने लगा। लेकिन अब उससे एक पग भी नहीं चला जा रहा था। पांव पत्थर से भी भारी हो रहे थे।

वह एक छोटे से नीम के पेड़ के नीचे आकर बैठ गया। चारों ओर चांदनी फैली हुई थी और सामने ही थोड़ी दूर पर कालीग्राम दिखाई पड़ रहा था। सतीश आंखें मूंद कुछ दूर बैठा रहा। उसके बाद जैसे उठना चाहा वैसे ही उसने देखा—कोई उस रास्ते से भयचकित दृष्टि उठाता हुआ तेजी से चला आ रहा है। कोई स्त्री मालूम हुई। उसे से थोड़ी दूर पर ही थी। सतीश रास्ते से हटकर बैठा था। शायद इसीलिए उस स्त्री ने उसे नहीं देखा।

सतीश जल्दी से उठकर खड़ा हो गया। उसके पैरों के नीचे कुछ सूखे पत्ते पड़े हुए थे। उन पत्तों की खड़खड़ाहट सुनते ही वह स्त्री जरा ठिठकी। सतीश चुपचाप उसी स्थान पर खड़ा रहा। किसी को न देख पाकर वह स्त्री आगे बढ़ने लगी।

अचानक जैसे किसी दैवी प्रेरणा से सतीश कह उठा–"कौन जा रहा है ? कमला।"

यह सुनकर उसी स्थान पर रास्ते में ही वह स्त्री तुरन्त बेहोश होकर गिर पड़ी।

वह सचमुच कमला ही थी।

सतीश झपटकर वहां पहुंचा और बेहोश कमला का सिर गोद में लेकर उसी स्थान पर बैठ गया। कमला की यह दशा देखकर सतीश की आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।

बाल्मीकि के अवतार क्रतिदास ओझा द्वारा रचित बंगला रामायण में सतीश ने सीता की अग्नि-परीक्षा की कथा कई बार पड़ी थी। उसे लगा–यह कमला की भी अग्नि परीक्षा है–"ना होते दहन, तनु पतन होई लो आगे" (अर्थात् जलने से पहले शरीर गिर पड़ा) सतीश के मन की चोर कोठरी के अन्धकार में एक बिना बुलाई दुविधा जैसे पलभर में उदय हुई थी, वैसे ही क्षणभर में न जाने कहां गायब हो गयी। सतीश के अन्तर्मन ने कहा–"यह अग्नि-परीक्षा नहीं, आज विलाप है।"

उमड़े हुए आंसुओं का पहला वेग संभाल लेने के बाद सतीश को यह चिन्ता हुई कि कमला की बेहाशी कैसे दूर करनी चाहिए। सतीश ने अपनी चादर को लपेटकर-तकिया बनाकर उस पर कमला का सिर धीरे से रख दिया। उसके बाद कहीं से जल लाने की चेप्टा के लिए वह उठने लगा। इसी समय बादल का एक टुकड़ा जो चन्द्रमा को छिपाए था हट गया और चन्द्रमा के प्रकाश में कमला के सुन्दर निर्मल मुख को देखकर सतीश फिर मन्त्र-मुग्ध की तरह वहीं बैठ गया।

यह वही कमला तो है जिसक प्रफुल्लित पावन-पुण्य शरीर के शुचि-सुन्दर मुख को विवाह से पहले तालाब के घाट पर देखकर सतीश का विरक्त मन संसार पर अनुरक्त हो उठा था। वही कमला है। आज भी वैसी निर्मल है। विवाह की रात को शुभ-दृष्टि के समय उसने कमला के उपवास के कारण मुरझाए मुख को जैसा देखा था, आज भी वह वैसा ही दिखाई दे रहा है। वह वैसा ही निर्मल और निष्कलंक है।

विवाह के दूसरे वर्ष जब कमला को गौना कराकर लाया था, तब कमला एक दिन चांदनी रात में इसी प्रकार खुली छत पर बिछौने पर लेटकर सो गयी थी। वह पत्नी के वश में नहीं है, यह वीरता मित्रों को दिखाने के लिए सतीश उस दिन कुछ अधिक रात गए घर लौटा था। मित्रों के पास बैठा गप्पें लड़ाता रहा। उस दिन घर आकर चांदनी के समुद्र में खिले कमला के कमल-मुख को देखकर सतीश का

स्वप्नावेश से भरा हृदय उसके दोनों कुंठित और संकुचित होठों को सोई हुई कमला

के सुवासित होठों की ओर धीरे-धीरे अनजाने ही खींच ले गया था।

सतीश ने देखा—आज फिर वही होने जा रहा है। लेकिन उसे रोक पाने की या स्वयं को संभालने की शक्ति आत्मानन्द के प्रिय शिष्य सतीश चन्द्र में रत्ती भर भी नहीं है। सोयी हुई कमला के दोनों भरे-भरे गुलाबी ठोढ़े के जबर्दस्त आकर्षण से वैरागी सतीश की गर्दन धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकने लगी। गेरुए में गुलाबी का मिश्रण दिखाई दिया, ममत्व की वीणा के सारे तार एक साथ अचानक बज उठे। इस एक घड़े के एक बूंद इत्र में जैसे हजारों चांदनी रातों की असंख्य जुही-चमेली की कलियां खिल उठीं।

ठीक उसी समय कमला का अचेतन शरीर थोड़ा-सा हिल उठा। स्वप्नों में खोए सतीश की चेतना लौट आई। उसने देखा, कमला ने आंखें खोल दी हैं। मूर्च्छित नागिन का नागपाश खुल गया है। उसके अग्नि से तप्त चुम्बन के चुम्बकीय आकर्षण से कमला की चेतना फिर लौट आई है।

सतीश ने धीरे से पुकारा—"कमला"

लेकिन कमला कुछ बोल नहीं पाई। लगता है उस समय कमला में बोलने की शक्ति थी भी नहीं। उसकी खुली हुई आंखों में आंसू भर आए और उसके बाद आंखों के कोनों से लगातार आंसू ढुलकने लगे।

वाणी को दबाकर रोना और रोने को दबाकर बोलना, दोनों संघर्ष करने लगे। उनके संघर्ष की व्यर्थ चेष्टा से सतीश के गले की सारी नसें व्यथा से झनझना उठीं। वह कुछ भी न कह पाने कारण मचलते आंसुओं से कमला को नहलाने लगा। इस प्रकार भावनाओं के पहले आवेग के कुछ शान्त होने पर सतीश ने टूटी-फूटी आवाज में कहा—"मत रोओ कमला। मैं क्षितीश बाबू के मुंह से सब कुछ सुन चुका हूं।"

हिरणी जैसे विशाल नेत्रों को फैलाकर कमला ने कहा—"सुन चुके हो ? ऐसी विपत्ति भगवान करे किसी बैरी को भी नसीब न हो !"

इतना कहकर वह धीरे-धीरे उठ और अपने कलकत्ता-प्रवास की कहानी सुनानी लगी। सतीश का मन अनजाने ही कमला की रिपोर्ट के साथ क्षितीश बाबू की रिपोर्ट अक्षरशः मिलान करता जा रहा था और उसें बराबर मिलते देखकर प्रसन्न हो रहा था। लेकिन जब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गयी तब उसने लज्जित होकर कहा—"रहने दो, बोलने में तुमको कष्ट हो रहा है। इस समय तुम थकी हुई हो। और यह सब बातें मैं सुन भी चुका हूं।"

लेकिन चाणक्य तर्जनी उठाकर सतीश से कह रहे थे—" विश्वासौ नैव कर्तव्यः स्त्रीषुः—अर्थात् स्त्रियों का कभी विश्वास मत करो। लेकिन संसार मिली हुई पत्नी के

मनोहर चेहरे के सामने वह चाणक्य की बात को किसी प्रकार भी नहीं मान सका। सतीश ने सौन्दर्य को ही सत्य समझकर स्वीकार कर लिया।"

लेकिन कमला ने उसकी बात से जैसे कुछ संकुचित होकर कहा, "तो तुम मुझसे घृणा नहीं करते ? मुझ पर तुम्हें विश्वास अविश्वास नहीं है ?" पिछली बात मुंह से निकालते हुए उसका कंठ कांप उठा। फिर आंसू छलक आए।

सतीश ने स्नेह और दृढ़ता भरे स्वर में कहा, "नहीं अविश्वास या सन्देह करता तो आगरे से सीधा तुम्हें खोजने के लिए कलीग्राम तक दौड़ा न चला आता।"

कमला सीधी होकर सहज भाव से बैठ गयी। अपमान, लांछन, धिक्कार तथा अनादर से उसका तन-मन शिथिल और जर्जर हो रहा था। सतीश के इन शब्दों ने मृत संजीवनी का काम किया। उसकी सारी थकान, सारा दुःख, सारा कष्ट पल भर में ही न जाने कहां चला गया। उसे लगा जैसे उसने अपना खोया हुआ अधिकार फिर प्राप्त कर लिया है।

उसने इसीलिए पहला प्रश्न किया—"आगरे से आ रहे हो ? तो अभी तक कुछ खाया-पिया नहीं ?"

सतीश ने कहा—"खा-पी लूंगा। तुमने कुछ खाया-पिया है ? लगता है आज दिन भर से तुमने भी कुछ खाया-पिया नहीं है...क्यों ?"

कमला ने उत्तर नहीं दिया। दोनों कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। उसके बाद सहसा सतीश ने बिना पूछे ही अपने लम्बे वियोग का दुःखद इतिहास सुनाना आरम्भ कर दिया। बिना नाम के पात्र का हाल, लम्बी यात्रा का वर्णन आगरे में अचानक क्षितीश की भेंट हो और उसके मुंह से सम्पूर्ण विवरण सुनने की बात—सतीश ने सब कुछ ब्यौरेवार सुना दिया। कुछ भी नहीं छिपाया।

उसने स्पष्ट बात दिया कि उस बिना नाम के पत्र में तुम्हारे सम्बन्ध में जो बुरी-बुरी बातें लिखी थीं, उन पर ठीक-ठीक विश्वास न होने पर भी मेरे मन में एक प्रकार का संदेह अवश्य पैदा हो गया था। लेकिन क्षितीश ने बताया कि वह जिस प्रकार अपनी मां के चरित्र को पवित्र और निष्कलंक समझता है, तुम्हारे चरित्र को भी ठीक वैसा ही समझता है तब उसकी इस बात ने, उसकी आंखों की संकोचहीन दृष्टि से और उसके स्वर की दृढ़ता ने मिल कर मेरे मन के कलुष को, तुम्हारे प्रति पैदा होने वाले सन्देह के धुंधले बादलों को उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया जिस प्रकार दक्षिणी हवा कुहासे को नष्ट कर डालती है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जिसक चरित्र के सम्बन्ध में किसी को रत्तीभर भी सन्देह होगा, उसके चरित्र के साथ वह अपनी माता के चरित्र की तुलना कभी नहीं कर सकता।

कमला—"तो तुम मुझ पर विश्वास करते हो ?"

सतीश–"अवश्य।"

कमला–"पहले के समान ही ?"

सतीश–"अवश्य।"

कमला के प्रमाण करके सतीश के पैरों की धूल अपने माथे में लगाते समय आंसुओं से उसके पैरों को भिगो दिया।

पल भर बाद स्वयं को संभाल कर, आंसू पोंछते हुए बोली–"तुम्हारी इस बात से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि मुझ पर अविश्वास नहीं करते। मेरे लिए इतना ही बहुत है। अब अगर मैं मर भी जाऊं तो भी मुझे दुःख नहीं होगा।"

सतीश ने कहा–"जाने दो इन बातों को। चलो, घर चलें।"

कमला का कलेजा धक् से हो गया। उसने कहा–"घर ? घर में क्या मां मुझे स्थान देंगी ?"

सतीश ने कहा–"यदि मुझे स्थान देंगी तो तुम्हें भी उनको स्थान अवश्य देना पड़ेगा। अच्छा, मैंने सुना था कि मां की बीमारी का समाचार पाकर तुम उनके पास गयी थीं वहां फिर क्या हुआ था।"

कमला ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी आंखों में आंसू भर आए। चांदनी के प्रकाश में सतीश ने उन्हें अच्छी तरह देख लिया।

सतीश ने कहा–"खैर, मैं समझ गया। उन्होंने तुम्हारे हाथों की सेवा स्वीकार नहीं की। अच्छा, वह सब ठीक हो जाएगा। असत्य बात यह है कि पास-पड़ोस की अचार-विचार करने के लिए तैयारी हो गयी थीं। खैर तुम बिल्कुल मत घबराओ। कुछ भी चिन्ता मत करो। मैं सब ठीक कर लूगा। अब चलो। चल सकोगी न ?"

कमला ने मुंह से तो कह दिया कि चल सकूंगी, लेकिन जब वह गांव की ओर चलने लगी तो पग-पग पर सतीश को ऐसा अनुभव होने लगा कि अब उससे चला नहीं जाता।

इतनी रात को कमला जगदीशपुर की ओर जा रही थी, इसी से सतीश ने अच्छी तरह जान लिया कि पिता के घर में उसे आश्रय नहीं मिला। सतीश ने एक बार यह भी सोचा कि दोनों लखनऊ चले जाएं। लेकिन इतनी रात को पश्चिम की ओर जाने वाली कोई भी ट्रेन वेलतली स्टेशन पर नहीं ठहरती थी। इसलिए दोनों गिरते-पड़ते जगदीशपुर की ओर ही चलने लगे।

धतूरे के पेड़ों के जंगल में जुगनू चमकते और छिप जाते थे। मानो आंख मिचौली खेल रहे हों। झींगुरों की झनकार निरन्तर सुनाई दे रही थी। हावा मे मौलश्री के फूलों की गन्ध भरी हुई थी और वह सुगन्धित हवा मन को मस्त करती हुई दूर तक फैली थी। ऐसे समय चांदनी रात में आंसुओं से नहाए हुए दोनों निर्दोष निष्कलंक प्राणी निःसंकोच और निर्भय होकर सड़क पर चले जा रहे थे।

उस समय कमला को अपने विवाह की बात याद आ रही थी। उस दिन भी ऐसी चांदनी खिली हुई थी। वह रात भी ऐसी ही हर्ष-उल्लास भरी रात थी। उस रात भी दिन भर के उपवास के बाद शरीर ऐसा ही हल्का मालूम हो रहा था। ऐसी ही आशंका के साथ आशा का आनन्द हृदय में भरा हुआ था।

सतीश ने मन मे भी विचार उठ रहे थे। उसने कहा—"कमला आज तुम्हारा भी उपवास है और मेरा भी उपवास। ब्याह का दिन याद है। यह दिन भी हम दोनों ने अन्न-जल के बिना यों ही बिताया था। आज हमारा फिर नए सिरे से विवाह है।"

कमला ने हँसकर कहा, "हां, मेरा भी तो नया ही जन्म हुआ है।"

अचानक दूर पर किसी के गाने की आवाज सुनाई दी। कोई प्राणपण से चिल्लाकर गाता चला जा रहा था—

"सजी, दीन-बन्धु हरि ! हरि !
बूढ़त परी विपत्ति की नदियां,
वेग उबारन आओ।"

कोई बैलगाड़ी पाने की आशा से सतीश और कमला दोनों खड़े हो गए।

वह आदमी जब पास आया तो सतीश ने उससे पूछा—"क्यों भाई चौधरी, इधर रास्ते में तुमने कोई बैलगाड़ी आती हुई तो नहीं देखी ?"

वह आदमी गाने में इतना मस्त हो रहा था कि केवल एक बार "ना" कहकर उसी तरह चीख-चीख कर गाता हुआ चला गया।

सतीश ने कमला से कहा—"देखती हो, गाने में कैसा पागल हो रहा है।"

कमला ने हंसकर कहा—"ऐसी चांदनी रात देखकर गाने की धुन सवार होना, कोई आश्चर्य की बात नहीं है।"

सतीश ने कहा—"कैसी धुन सवार है। एकदम कविता की टांग तोड़ रहा है। हेरो के साथ आओ की धुन कैसी मिलायी है।"

कमला को तुक़-बेतुक़ की कोई तमीज नहीं थी। फिर भी जब यह बेतुक़ापन सतीश ने स्पष्ट दिखा दिया तो वह हंस पड़ी। सतीश सोचने लगा, आगे चलूं या यहीं खड़े होकर किसी गाड़ी के आने की राह देखूं ? लेकिन वह कुछ निश्चय नहीं कर सका।

तभी कमला कह उठी—"वह सुनो। कोई फिर गाता हुआ आ रहा है। लेकिन इस बार गले की आवाज के साथ गाड़ीं के पहियों की आवाज भी स्पष्ट सुनायी दे रही है।"

सतीश कान लगाकर सुनने लगा। सचमुच ही कोई गाड़ी आ रही थी गाड़ीवान गा रहा था—

"आओ जी, जाओ जी, जाओ हो रसिया
मेरे घर अब कभी न आना,
नहीं तो पड़ेगा झाड़ू खाना
सच कहती हूं ताना-नाना,
हैगा मेरा नाम बतसिया।"

बीसवीं सदी के रसिया की ऐसी निरादरपूर्ण अभ्यर्थना का वर्णन सुनकर सतीश निश्चय नहीं कर पाया कि वह रोए या हंसे।

उसी समय एक गाड़ी घूमकर उसके पास पहुंच गयी। उस समय गाड़ीवान गा रहा था—

"छैल-छबीले फिरते बाहर
हांड़ी चढ़े न घर के भीतर
आंख लड़ाते घूमें घर-घर
मांग संवारे हो मन बसिया।"

तानसेन के उस भाई को रोककर, बड़ी अनुनय-विनय करने के बाद, अन्त में एक रुपया भाड़ा तय करके सतीश कमला के साथ गाड़ी में आ बैठा।

रास्ते में घीसू हलवाई की दुकान के सामने थोड़ी देर सतीश ने गाड़ी रुकवाई। खाने-पीने की कुछ चीजें खरीद कर उसने फिर गाड़ी चलाने की आज्ञा दे दी।

गाड़ीवान "बहुत अच्छा", कहकर बेचारे बैलों की पूंछ मरोड़ता हुआ जगदीशपुर की ओर चल दिया।

31

अकारण बाम्बार लांछना सहकर हरेन्द्र का मन बहुत दिनों के विद्रोह करने पर उतारून हो रहा था। लेकिन आज उसके पिता ने सब लोगों के सामने उसका जो अपमान किया, उससे तो जैसे बारूद के ढेर में आग की चिंगारी पड़ गयी। उसकी प्रत्येक नस ने जैसे बिजली से भरे तार के समान उसे तड़पाकर बेचैन कर दिया। उसके समूचे शरीर में जैसे आग-सी लग गयी और रोम-रोम से चिंगारियां-सी जलने लगीं। लेकिन जन्म से चले आ रहे संस्कारों के कारण वह पिता की किसी भी बात का उत्तर न दे सका। होंठ-से-होंठ दबाकर उत्तेजना के मारे कांपता हुआ वह वहां से चला दिया।

वह अब तक सारे अन्याय, अविचार और अपमान सहता चला आ रहा था, लेकिन उससे अब नहीं सहा गया। उसका सारा आवेग वज्र के समान किसी के ऊपर

गिर कर, सब कुछ तोड़-फोड़ कर, तहस-नहस कर डालने के लिए उसे जैसे पागल बना दे रहा था। इसीलिए जब उसका क्रोध और खीझ कमला के ऊपर जा पड़ा, तब वह स्वयं को कोई कुत्सित अनर्थ कर डालने से बचाने क लिए बिना कुछ सोचे-विचारे तेजी के साथ वहां से निकल कर चल दिया।

सहसा उसे शशि मुकर्जी की याद आ गयी। यह झूठ बोलने वाला शैतान ही तो सारे अनर्थ की जड़ है। उससे कैफियत तलब करने के लिए हरेन्द्र क्रोध के उसी आवेग से अपने घर की कचहरी की ओर तेजी से चला गया।

वहां पहुंचकर उससे सुना—तबियत ठीक न होने के कारण शशि घर चला गया है। इसी के साथ एक कर्मचारी ने हरेन्द्र को बताया कि तबियत खराब होने का मात्र बहाना है। वास्तव में वह भला चंगा है। रात की गाड़ी से मजिस्ट्रेट साहब कालीग्राम का मुआयना करने के लिए आ रहे हैं इसीलिए जमींदार के कर्मचारियों को आज कुछ अधिक मेहनत और दौड़-धूप करनी पड़ेगी। लेकिन शशि हमेशा मेहनत से जी चुराता है। खड़े-खड़े दुम हिलाना खूब जानता है। दूसरों के ऊपर हुक्म चलाने में बड़ा उस्ताद है। लेकिन काम के समय उसका पता नहीं चलता। इसीलिए पहले से ही तबियत खराब होने का बहाना करके हजरत खिसक गए हैं।

बात पूरी सुने बिना ही हरेन्द्र वहां से शशि के घर की ओर चल दिया।

वहां पहुंचकर उसने दो-तीन बार शशि को पुकारा। एक खिड़की, जिसके ऊपर फूलों की एक बेल फैली हुई थी, जरा-सी खुलकर चटपट बन्द हो गयी। किसी ने उत्तर नहीं दिया। लेकिन ने खड़ाडओं की खट-खट स्पष्ट सुन ली। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि शशि इस समय अपने घर में ही है।

इसलिए उसने फिर पुकारा—"अरे शशि, घर में ही हो ? क्या जागते हुए सो रहे हो ?"

बहुत चीखने-पुकार करने पर एक नंग-धड़ंग लड़का आमरस के टुकड़े को चाटता हुआ बाहर निकला।

हरेन्द्र ने पूछा—"अरे पटला, तेरा बाप कहां है ?"

लड़के ने आमरस की ओर ही देखते हुए धीरे-धीरे शान्त भाव से कहा—"बप्पा ? ऐं...? बप्पा...घर...नहीं...नहीं...कहीं गए हैं।"

"क्यों रे सूअर, तूने झूठ बोलना अभी से सीख लिया," कहकर हरेन्द्र ने जैसे ही हाथ बढ़ाकर उसके कान ऐंठने की कोशिश की, वह फुर्ती से घर में घुस गया और दरवाजा बंद कर लिया।

हरेन्द्र ने दरवाजे में एक जोर की लातमार कर कहा—"कब तक छिपकर रहोगे बच्चा ?"

यह कहकर हरेन्द्र कुछ दूर खड़े आम के एक पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। वह कुछ देर तक खड़ा रहा, फिर बैठ गया।

वह काफी देर वहां बैठा रहा। पेड़ की छाया सिर के ऊपर से हट कर पूरब की ओर चली गयी। फिर धीरे-धीरे खिसकते-खिसकते एकदम फैलने लगी। सूर्य भगवान अस्त हो गए। लेकिन शशि फिर भी घर से नहीं निकला। हरेन्द्र खीझ कर उठ खड़ा हुआ। जाते समय उसने एक और लात शशि के दरवाजे पर मारी और तेजी से बड़ी सड़क की ओर चल दिया।

हरेन्द्र जब तिमुहानी के पास पहुंचा तो उसे जैसे होश आया। क्रोध कम होने के साथ ही उसकी भूख फिर जोरों से भड़क उठी। वह ठिठक कर खड़ा हो गया। सोचने लगा, सीधे स्टेशन पर जाकर ट्रेन में सवार हो जाऊं या उससे पहले बाजार जाकर खाने-पीने की कुछ व्यवस्था कर लूं।

इसका निर्णय करने के लिए हरेन्द्र ने अपना मनी बैग खोल ही रहा था कि किसी ने पीछे से पुकारा—"हरेन्द्र दादा !"

हरेन्द्र चौंक पड़ा। पीछे फिर कर देखा, अरुण आ रहा है।

हरेन्द्र ने कहा—"क्या है अरुण ?"

अरुण ने कहा, "हरेन्द्र दादा, तुमने इधर दीदी को तो नहीं देखा ? उन्हीं को खोज रहा हूं।"

हरेन्द्र ने पूछा—"क्यों, क्या वह घर में नहीं है ?"

अरुण ने उतरे हुए चेहरे से कहा, "नहीं, घर में नहीं है। बाबू ने उन्हें घर से निकाल दिया। हम लोगों में से किसी को खोजने तक के लिए नहीं जाने दिया। वे जब घर से बाहर चले गए, तब मैं दीदी को खोजने के लिए निकला हूं। लेकिन वह तो कहीं दिखाई ही नहीं दे रही। जाते समय बाबू ने दीदी से कहा था—"चूल्हे में जा। दीदी किसी की बड़ी बात सहन नहीं कर सकतीं। उन्होंने क्या सचमुच...?

अरुण से और आगे नहीं बोला गया। उसकी आंखों में आंसू भर आए। गला रुंध गया! उसने अपना मुंह फेर लिया।

हरेन्द्र बीच रास्ते में ही धड़ाम् से धरती पर बैठ गया। उसकी चिन्ता के मारे सूझ जैसे उलझ कर गुत्थी बन गए। उसकी जैसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह केवल सूनी-सूनी नजरों से अरुण के मुख के ऊपर संवेदना का मलहम लगाने की व्यर्थ चेष्टा करने लगा।

कुछ देर स्तब्ध भाव से खड़े रहकर, स्वयं को संभाल कर अरुण ने कहा, "दीदी, मुहल्ले में पास-पड़ोस के किसी घर में नहीं जाएंगी। इसलिए मैंने मुहल्ले में किसी के घर में जाकर उन्हें नहीं खोजा। हां, बाग के भीतर, काली जी का मन्दिर में और गांव

भर के झाड़-झंखाड़ और जंगल आदि सभी जगह खोज आया हूं। वह कहीं भी नहीं है।"

हरेन्द्र ने कहा, "देखो, बिना किसी अपराध के कितना कठोर दण्ड दिया गया है।"

इतना कहकर हरेन्द्र चिंता के गहरे सागर में डूब गया। दो-एक मिनट के बाद उसने कहा, "स्टेशन की ओर तो नहीं गयी ? चलो, जरा स्टेशन की ओर चलकर भी पता लगाना चाहिए।"

अरुण ने कहा—"बाबू अभी-अभी स्टेशन की ओर ही गए हैं। इसलिए मैं नहीं जाऊंगा। मुझे देख लेंगे तो नाराज होंगे।"

"क्यों, स्टेशन क्या करने गए हैं ?"

अरुण—"ठीक स्टेशन पर नहीं गए हैं। रेलवे लाइन के उस पार उनका कोई यजमान रहता है। कुछ दान-पुण्य का संकल्प कराना है। इसी के लिए आदमी आकर बुला ले गया है। मैं उधर जाऊंगा ही नहीं। तुम्हारा भी उधर जाना...।

इतना कहकर अरुण रुक गया।

हरेन्द्र ने भौहें सिकोड़ कर जैसे कुछ सोचकर कहा—"मेरे लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। तू चल, वह वहां खड़े नहीं होंगे। तुझे भी डरने की क्या बात है ?"

अरुण धीरे-धीरे हरेन्द्र के पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ दूर जाकर उसने हरेन्द्र से कहा—"हरेन्द्र दादा, लगता है तुमने अभी तक कुछ खाया-पिया नहीं है।"

हरेन्द्र ने कहा—"नहीं। और तूने—तुम लोगों ने कुछ खाया-पिया है।"

अरुण ने कहा—"ऊं हूं। हम लोगों ने किसी ने भी कुछ नहीं खाया।"

"अच्छा चल। बाजार से लेकर कुछ खा लेंगे। आज हाट का दिन भी है। फल भी मिलेंगे, और खाने का सामान भी ताजा मिलेगा ?"

अरुण—"और तुम ?"

हरेन्द्र—"स्टेशन से लौटकर देखा जाएगा।"

इतना कहकर वे दोनों स्टेशन की ओर चल बढ़ने लगे।

वे दोनों जब बाजार में पहुंचे, उस समय सांझ हो चुकी थी। एक स्थान पर बहुत से आदमी ताड़ी पीकर खूब जोर-जोर से ढोल पीट रहे थे। उन्हीं में से एक आदमी कइयों की तरह नाच रहा था। फेंट बांधे, दाढ़ी-मूछों के ऊपर कपड़ा बांधे मटक-मटक कर गाना गा रहा था...

"मेरा मस्त कहरवा जाल बुने रे
दिन को मारे मछली, रात को बुने जाल

कैसा फन्दा डाला, मेरे जी का जंजाल
मोरा मस्त कहरवां जाल बुने रे।"

नशे वालों की भीड़ देखकर हरेन्द्र ने अरुण को वहां खड़े होने से रोका। ताड़ी की बदबू नाक में जाने से वे दोनों नाक पर कपड़ा लगाकर निरन्तर थूकते हुए आगे बढ़ने लगे।

सड़के पर बीच-बीच में मजिस्ट्रेट साहस के आगमन के उपलक्ष में नारियल के पत्तों के फाटक बनाए जा रहे थे। केले के पेड़ काटकर उनके खम्भों पर रोशनी करने की व्यवस्था की जा रही थी। हरेन्द्र का ध्यान उस ओर नहीं था। वह अरुण को कुछ खिलाने के इरादे से ताजे फलों की खोज में आंख फाड़-फाड़ कर इधर-उधर देखता जा रहा था।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर फिर एक स्थान पर बहुत से आदमियों की भीड़ दिखाई दी। वहां एकदम मेला-सा लगा हुआ था और शोरगुल भी हो रहा था। आज हाट में अचानक इतनी अधिक भीड़ क्यों जमा है ? यह जानने के लिए अरुण फिर भीड़ के भीतर घुस गया। उसके पीछे-पीछे हरेन्द्र भी चल दिया।

लोगों की भीड़ को चीर कर कुछ दूर आगे बढ़ने पर हरेन्द्र ने देखा—एक स्त्री सिर में पट्टी बांधे रोती-चिल्लाती हुई, किसी को लगातार गालियां दे रही थी।

"चलो अरुण, क्या देखोगे ?" कहकर अरुण को पकड़कर हरेन्द्र भीड़ से निकलने ही वाला था कि तभी उसे सुना, कोई नशे से लड़खड़ाते स्वर में कह रहा था—"खबरदार, क्या तू यह समझता है कि तुझे मर कर यमराज के सामने नहीं जाना पड़ेगा ? ब्राह्मण की देह में हाथ लगाना चाहता है ? तुझे शाप का भी भय नहीं है ? खबरदार !"

हरेन्द्र को यह आवाज पहचानी-सी मालूम हुई। उसने जल्दी से बढ़कर देखा। वह आदमी और कोई नहीं, वही सारे झगड़े की जड़ उसके पिता का नौकर शशि मुकर्जी था। शशि की आवाज सुनकर ही सिर में पट्टी बांधे बैठी हुई स्त्री, रोती-चिल्लाती गालियां दे रही थी।

सहसा वह एकदम उठकर खड़ी हो गयी ओर नागिन जिस तरह फन फैलाकर डसने को दौड़ती है, उसी प्रकार कमर पर हाथ रखकर फुंफकारती हुई, शशि के मुंह के पास दूसरा हाथ मटकाती हुई चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी—"वाह, यह ब्राह्मण है ? इसके श्राप के भय से तो संसार कांप उठेगा। और क्या ? बांध चौकीदार, बांध ले हरामजादे को ? इसने छोकरी का एकदम खून ही कर डाला है जी ? तुमने देखा नहीं है।"

"खून" का नाम सुनते ही भीड़ को ठेल कर बाघ की तरह छलांग लगाते हुए हरेन्द्र ने जाकर शशि की गर्दन दबोच ली।

गर्दन दबोचकर हरेन्द्र ने उसे एक ओर का धक्का देना चाहा। लेकिन उसे एकदम निर्जीव और पत्ते जैसा हल्का पाकर उसका आधे से अधिक क्रोध जाता रहा।

भीड़ के भीतर अस्फुट-स्वर हो उठा—"छोटे बाबू आ गए।"

चौकीदार को अब तक अपराधी को गिरफ्तार न कर पाने के लिए डांट कर हरेन्द्र ने एक बार और शशि को झकझोर कर चिल्लाते हुए कहा—"तुम लोग इतने आदमी यहां खड़े हो, लेकिन इस बेजान मुर्दे को गिरफ्तार नहीं कर पा रहे ? लो, मैं इसे पकड़े हूं, बांध लो इसे।"

जो लोग मैजिस्ट्रेट साहब के आगमन के उत्सव में स्वगत-द्वार आदि बनाने आए थे, वे भी शोरगुल सुनकर वहां आकर इकट्ठे हो गए। उनके हाथ में द्वार बांधने के लिए रस्सी के टुकड़े थे। उन्हीं में से एक आदमी ने अपने हाथ की रस्सी आगे बढ़ा दी। चौकीदार ने छोटे बाबू को देखा तो उसका साहस बढ़ गया। उसने खूब कसकर शशि को बांध दिया।

हरेन्द्र ने शशि को तो चौकीदार के सुपुर्द कर दिया और फिर अरुण से कुछ कहने के लिए पीछे घूम कर देखने लगा।

उसी समय शशि ने स्पष्ट स्वर में कहा—"वाह, तेज तो देखो साहब का। यदि बाप ने घर से निकल न दिया होता तो और भी धरती पर पांव न पड़ते।"

शशि के ये शब्द हरेन्द्र के कानों तक पहुंचने भी नहीं पाए थे कि इसी बीच सिर पर पट्टी बांधे हुए अधेड़ औरत हाथ जोड़कर हरेन्द्र बाबू के पैरों के पास बैठकर कहने लगी—"बचाओ, छोटे बाबू, बचाओ। इस अधर्मी, पाजी ब्राह्मण ने मेरी बहिन का खून कर डाला है। मैं बोली तो मेरा भी सिर फाड़ डाला। यह देखो। तुम मालिक हो, जमींदार हो। मैं तुम्हारे आगे फरीयाद करती हूं। तुम्हीं न्याय करो।"

हरेन्द्र ने कहा—"खून कर डाला है ? तुम्हारी बहन का ? कहा है उसकी लाश ?"

"वह है भैया, उस कोठरी में। जरा चल कर देख तो लो कि इस कमीने हत्यारे ने कैसा गजब कर डाला है, "यह कहकर वह स्त्री आगे-आगे चल दी।

हरेन्द्र ने उस स्त्री के पीछे जाते-जाते अरुण से कहा—"अरुण, पुलिस में लाश का चालान होने से पहले तुम जरा दौड़कर डॉक्टर बाबू को खबर दे आओ। जिससे वह आकर एक बार इसकी जांच कर लें।"

अरुण भी यही चाहता था। लाश देखने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। क्योंकि वह भूतों से बहुत ज्यादा डरता था। हरेन्द्र की बात सुन कर उसमें जैसे जान पड़ गयी। वह एकदम दौड़ता हुआ वहां से गांव की ओर चल दिया।

जो अधेड़ औरत हरेन्द्र को लाश दिखाने के लिए ले गयी थी, वह थी मांती की बहिन कांती। अर्थात् मातंगिनी की बहन कात्यानी। इसी मातंगिनी के साथ घनिष्ठता या अवैध सम्बन्ध होने के कारण ही एक दिन हरनाथ मैत्र ने शशि मुकर्जी का समाज से बहिष्कार कर देना चाहा था। हरनाथ के आन्दोलन का फल यह हुआ था कि शशि मुकर्जी की प्रेमिका कैवर्त कन्या मातंगिनी गांव छोड़कर गांव से दूर बस्ती के इस छोर पर रहने के लिए विवश हो गयी थी।

जमींदार की कड़ी आज्ञा के कारण मातंगिनी को जब दूसरे घर में गांव के बाहर जाकर रहना पड़ा तो उसी के साथ उसकी बहिन कात्यानी की मोदी की दूकान पुरानी जगह से उठकर यहीं चली आई। इससे कात्यानी को लाभ भी हुआ। आस-पास के तीन-चार गांवों के आदमी उसके खरीददार हो गए। इसके अतिरिक्त स्टेशन के रास्ते पर होने के कारण छोटे-बड़े लोग उसकी दूकान पर आते थे। और जरूरत की चीजें लगभग दूने दाम पर खरीदकर ले जाते थे। इससे कात्यावानी की आमदनी पहले से बहुत बढ़ गयी। लेकिन इसका सारा श्रेय शशि अपनी कार्यवाही को देता था। वह कहता—"उसी के कारण कात्यानी की दूकान जगह उठकर आयी है सीधी-सादी दोनों देहाती स्त्रियां इस बात का बिल्कुल प्रतिवाद नहीं करती थीं। इस बात को सुनते-सुनते उन्हें एक तरह से यही विश्वास हो गया। वे दोनों सोचतीं—ठीक तो है, शशि के कारण ही तो यह सब हुआ है। नहीं तो ऐसे मौके की जगह पर दूकान का होना सर्वथा असंभव ही था।

यह जगह शशि के लिए कुछ दूर अवश्य पड़ती थी, लेकिन उसका आना-जाना बन्द नहीं था।

मातंगिनी भी भक्त तथा उपासिका और शशि था उसका इष्ट देव ? अपने इष्ट देव के सारे उपद्रव सहकर उसकी सेवा करते जाना "कर्ता-भर्ता समादरात्" के मर्म की बात है। लेकिन धर्म की यह सुस्पष्ट आज्ञा होने पर भी इधर कुछ दिनों से मातंगिनी की भावना बदल गई थी। अब वह पहले की तरह शशि की सेवा नहीं करती थी। लेकिन इसके लिए मातंगिनी को विशेष दोष नहीं दिया जा सकता।

कई महीने पहले मातंगिनी अपनी कलकत्ता में रहने वाली मरणासन्न मौसी का तार पाकर उसकी सेवा करने के लिए कलकत्ता गयी थी। कात्यवानी दूकान की हानि होने के विचार से नहीं जा सकी थी। वहां मातंगिनी चूड़ामणि योग में स्नान करके और मौसी को स्वर्ग भेजकर, उत्तराधिकारी होने के नाते मौसी के कुछ सोने और चांदी

के गहने, सात-आठ गिन्नियां और डेढ़ दो सौ के लगभग रुपए आंचल में बांधकर अपने गांव लौट आयी।

गांव आ जाने के बाद जिस दिन शशि को अपना माल दिखाया, उसी दिन से शशि उस माल को हथियाने के लिए जाल फेंकने लगा। अन्त में बहुत कुछ कह-सुनकर, फुसलाकर, सूद पर देकर रुपए बढ़ा देने का बहाना करके शशि ने वह रकम हथिया ही ली। उसने उन रुपयों से अपने नाम कई बीघा जमीन योगेन्द्र मित्र की एक देनदार प्रजा से थोड़े से ही मूल्य पर खरीद ली। उसने यह दांव मार दी। लेकिन मातंगिनी को जरा-सी भी खबर नहीं होने दी। वह बेचारी जब सूद के लिए शशि से तकाजा करती तो शशि उसे सूद-पर-सूद वसूल करके देने की बात कहकर बहला देता था। लेकिन यह सब जबानी जमा खर्च भर था।

इस मामले पर अन्तिम निर्णय कर डालने के लिए मातंगिनी और कात्यवानी में खूब विचार विमर्श हुआ। कई युक्तियां थीं। लेकिन वे कुछ न कर सकीं। शशि से स्पष्ट उत्तर पाने के लिए अनेक बार सोचने पर भी दोनो बहिनों में से कोई भी शशि के आगे कुछ नहीं कर पाती थीं। जमींदार का नौकर ठहरा। एक बार कलम घुमा कर झूठा को सच और सच को झूठ कर सकता है। यही सब सात-पांच सोच कर बात दबी ही रहती थी। इसके अतिरिक्त कात्यायनी कहती थी—"मौसी चाहती थी इसलिए अपना सब कुछ मातंगिन को दे गयी। लेकिन भाग्य में नहीं लिखा, तो भोग कैसे सके ? मुझे तो मौसी कुछ दे नहीं गयी, लेकिन इस दूकान की बदौलत राज भोग रही हूं। रुखी-सूखी दो रोटियां खाकर पड़ी रहती हूं। मुझे किसी की जरूरत नहीं है।"

इससे मांती और भी चिढ़ जाती थी। वह किसी का भी ताना नहीं सह सकती थी। दोनों बहिनों में झगड़ा होने लगता था और मुंह अंधेरा करके सिर पटकती हुई दोनों अपनी-अपनी कोठरी में जाकर भीतर से कुंडी बन्द कर लिया करती थीं।

आज भी इसी तरह बहिन के साथ शशि से तकाजा करने की बात पर झगड़ा करके मातंगिनी अपनी कोठरी में चली गई। उसी समय शशि ने आकर किवाड़ों में धक्का दिया। मातंगिनी ने किवाड़ खोल दिए। शशि को देखते ही मुंह फेरकर लालटेन के सामने बैठकर वह सुपारी काटने लगी।

मातंगिनी का रंग सांवला था। चेहरा एक भारी कछुए के समान था। उसका शरीर एक भारी कछुआ था, मुंह मंझोला कछुआ था और फूले-फूले हाथ-पांव कछुए के बच्चे के जान पड़ते थे। नाम और रूप मिलाकर एक गज कच्छप व्यापार था। उसके कानों में फूलदार बालियां, नाक मैं लौंग, फूल मार्का झील थी। गले में तुलसी की कंठी थी, जिससे बीच-बीच में बहुत ही छोटे आकार के सोने के ताबीज थे। हाथ में हरे रंग की रेशमी चूड़ियां थीं।

घर में बस इतना ही समान था—एक तख्त, एक जल चौकी, एक नारियल की हुक्की, एक अलगनी पर पालागाठ, तीन पाड़, माथ पाड़, फूल पाड़, साड़िगों के साथ बैंगनी रंग की एक खजूर-कढ़ी धोती भी थी। दीवार पर कुछ सस्ती तस्वीरें लगी हुई थीं।

शशि जिस समय मातंगिनी के घर में पहुंचा, उस समय सांझ होने को थी। हरनाथ मैत्र के घर के पास वाले तालाब के किनारे से जब वह लौटा था—तब से उसके मन की अवस्था अस्वाभाविक हो रही थी। उसने समझ लिया था कि कमला तालाब में डूब गयी है। इस बात से उसे प्रसन्न होना चाहिए था। क्योंकि कमला हरनाथ की बेटी थी और हरनाथ ने उसे समाज से बहिष्कृत करने का आन्दोलन खड़ा किया था। कमला की मृत्यु शशि के उसी अपमान का बदला है। लेकिन उसे बेचैनी केवल इसलिए हो रही थी कि उसे अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए कोई दूसरा आदमी नहीं मिल पा रहा था। वह बहुत पहले ही मातंगिनी के पास अपनी प्रसन्नता का प्रदर्शन करने के लिए पहुंच जाता। लेकिन योगेन्द्र मित्र का बदमाश लड़का दरवाजे पर धरना दिए बैठा रहा। इसलिए बेकार ही इतनी देर हो गयी। हरेन्द्र के वहां से हटते ही शशि सीधे माती के घर पहुंच गया और बगल में छिपी हुई शराब की बोलत निकालकर, बोलत-वासिनी की सेवा करने लगा।

तीन-चार प्याले पी लेने के पर भी जब नशा नहीं जमा तो शशि मातंगिनी को एक प्याला प्रसाद देकर स्वयं गांजा मलने बैठ गया। मातंगिनी का मन उस समय प्रसन्न नहीं था। उसने शशि की आंख बचाकर सारा प्रसाद मोरी में गिरा दिया।

शशि ने चिलम तैयार की, उस पर आग रखकर साफी लपेटी और कस-कस कर तीन-चार दम लगाए। कोठरी में धुंआधार करके चिलम उलट दी और आप-ही-आप हंसने लगा। मातंगिनी ने घूमकर एक बार तीखी दृष्टि से शशि को सिर से पांव तक देखकर कहा—"यह पागल की तरह आप-ही-आप क्यों हंसा जा रहा है ? वाह !"

शशि ने दोनों आंखें ऊपर चढ़ाकर सारे शरीर को कुछ हिलाकर कहा—"प्रसन्नता होने पर हंसी आती है और हंसी आने पर प्रसन्नता होती है। इसी को कहते हैं हंसी-खुशी।"

मातंगिनी ने कहा—"हंसी-खुशी तो खूब देखता हूं। अब यह बताओ, मेरे रुपयों का क्या हुआ।"

शशि ने कहा—"अरे, क्या रुपयों की बात कह दी है ? मैं तुझे ऐसा समाचार सुना सकता हूं, जिसका मूल्य दस लाख रुपए है। रुपए की बात क्या कहती है ? आज क्या हुआ ? जानती है। नहीं जानती ? अच्छा सुन—उसी पुरोहित साले की लड़की कमला डूबकर मर गयी। किसी ने भी जगह नहीं दी। न सास ने, न मां-बाप

ने। जाती कहां ? तालाब में डूबकर मर गयी। मैं अभी-अभी अपनी आंखों से देखकर आ रहा हूं।"

यद्यपि शशि ने कमला को डूबते हुए नहीं देखा था फिर भी उसने जोर देकर कहा—"मैं अपनी आंखों से देख आया हूं..." शशि के समान जो आदमी पक्के खिलाड़ी होते हैं, उन्हें अपनी चाल और अपनी बुद्धि पर अगाध विश्वास होता है। स्वयं को एक प्रकार के दिव्य-दृष्टि से युक्त समझते हैं। अपने ऊपर अविश्वास करना वे लोग जानते ही नहीं हैं। इस सम्बन्ध में शशि शैतान का चाचा है। अपने मन के अनुसार कल्पना को यह कौशल से अनेक बार सत्या बना चुका था। इसीलिए उसने एक प्रकार से निश्चय कर रखा था कि कमला मर गयी है, एकदम ही मर गयी है। वह डूबने के बाद ही मर गयी होगी और उसकी लाश पानी के ऊपर निकल आई होगी। इसीलिए उसने कहा कि—"मैं अपनी आंखों से देख आया हूं।"

मातंगिनी ने कहा—"हूं, डूबकर मर गयी। उसने आत्महत्या कर ली है। चुड़ैल बनेगी। तू रुपयों का तकाजा करेगी तो तेरी गर्दन मरोड़ डालेगी, हूं। ब्राह्मण की बात कभी झूठी नहीं होती है।"

मातंगिनी चिढ़कर बोली—"गर्दन मेरी मरोड़ेगी या तुम्हारी ? तुम्हीं ने तो ब्राह्मण की बेटी के नाम अकारण कलंक लगाकर यह अनर्थ कराया है। राम-राम, बेचारी की बेकार ही जान गयी। स्त्री थी, ब्राह्मण थी। छिः !"

शशि ने एक तिरछा तीक्ष्ण कटाक्ष छोड़ कर कहा, "मांती, तू नशे में हो गई है क्या ?"

मातंगिनी ने झनक कर कहा—नशे में वही होगा जो बोतल-की-बोतल खींच रहा है। तुम्हारी शराब इस मोरी में पड़ी है। जी चाहे तो सूंघ कर देख लो। छिः-छिः इतना घोर अन्याय भगवान से सहा जाएगा ? छिः ! आदमी के पीछे इस तरह पड़ता है ! छिः-छिः ! तुमको ब्राह्मण के शाप का भी भय नहीं है ?"

शशि धीरे-धीरे उत्तेजित होता जा रहा था। उसने नशे में लाल आंखों को भयानक ढंग से नचाकर विद्रोह के स्वर में कहा—"ब्राह्मण ? ...हूं...पुरोहित भी कोई ब्राह्मण है ? मुझसे बढ़कर ब्राह्मण कौन होगा ? मैं मुकर्जी वंश का शशि मुकर्जी हूं। वह साला मैत्र मुझे बिरादरी से निकालना चाहता था।"

मातंगिनी ने कहा—"जाओ, जाओ...बहुत प्रशंसा मत करो, मैं सच बात कहूंगी। उससे चाहे कोई खुश हो, चाहे कोई बिगड़े। कहावत है—सबसे बढ़कर 'पापी हत्यारा'। वह भी है विश्वासघाती से हारा। तुम ब्राह्मण हो ? तुम तो महा पापी हो। जिसने अपना लोक-परलोक बिगाड़ कर इतने दिन तुम्हारी सेवा की, उसी का सर्वस्व ब्याज का लोभ दिखाकर, फुसलाकर ले लिया। एक स्त्री के रुपए उधार लिए। उसके बाद

एक भले आदमी की लड़की को झूठा कलंक लगाकर, उसकी जान तक ले ली। तुम भी ब्राह्मण हो ? तुम भी मनुष्य हो ?"

शशि ने बिगड़ कर कहा—"देख मांती, क्रोध मत दिला। मैंने झूठा कलंक लगाया है ? मैंने अपनी आंखों से देखा है..."

मांती ने कहा—"और क्या ? जान-बूझकर जो झूठ बोलता है, वह नरक का कीड़ा होता है। तुमने जान बूझकर कमला को झूठा कलंक नहीं लगाया ? मेरी मौसी जब बीमार थी, तब तुमने जो चिट्ठी मुझे कलकत्ता भेजी थी, उसमें क्या लिखा था। याद नहीं है ? तुमने उस छोकरी को झूठा कलंक नहीं लगाया ? तुम झूठे नहीं हो ?"

शशि क्रोध में भरकर गिरगिट की तरह उठकर गुर्राने लगा।

मांती ने कहा—"गिरगिट की तरह खड़े होकर गुर्रा क्यों रहे हो ? क्या आंखें निकाल लोगे ?"

आंखें निकालने की बात सुनकर काने शशि का क्रोध सीमा को पार कर गया। उसने तड़ाक् से मांती के मुंह पर एक थप्पड़ मारा और कर्कश कंठ से चीख उठा—"तो ले हरामजादी ! जितना बड़ा मुंह नहीं, उतनी बड़ी बात करती है ? केवट होकर ब्राह्मण का अपमान करने का तेरा साहस ?"

मांती भी उठ खड़ी हुई और हाथ मटकाती हुई बोली—"खबरदार ब्राह्मण, निकल जा मेरे घर से। मुझ पर हाथ चलाने वाला तू कौन है ? मेरा सर्वस्व हड़प कर, अब कहता है केवट ! लज्जा नहीं लग रही। कहावत है—"न रोटी न कपड़ा, सेत मेत का भतरा—दूर हो जा मेरे घर से।"

शशि बोला, "देख मांती, तू बहुत बढ़ रही है। जमींदार तुझे गांव से निकाल बाहर कर दे रहा था। मैंने ही कह-सुनकर तुझे यहां जगह दिलवायी थी। इसी में तू पड़ी हुई है। अब मुझ पर ही गुर्राती है। ठहर जा, अभी तेरा सिर मुड़वा कर, गधे पर चढ़ाकर गांव भर में घुमाकर निकलवा देने प्रबन्ध करता हूं। ठहर जा, कल की जमींदार बाबू से कहूंगा। तूने समझ क्या रखा है ? मुझसे बैर...?"

सिर मुड़ाने की बात सुनकर मांती कढ़ाई का बैगन हो गयी। उसने कहा—"जमींदार ? जा न जमींदार के पास...मैं भी वहां जा सकती हूं। जाकर सारा सच्चा हाल बता दूंगी—तेरा भंडाफोड़ कर दूंगी। भीतर जाकर जमींदार की जोरू से कहूंगी। तू तुझे जानता नहीं ?"

शशि ने कहा—"जा, जा न। रंडी की बात पर कौन विश्वास करेगा ? जा न, जाकर मजा देख न।"

मातंगिनी पर जैसे भूत सवार हो गया था। उसने कहा—"विश्वास करते हैं या नहीं, सौ मैं देख लूंगी। तेरे हाथ की लिखी वह कलकत्ते वाली चिट्ठी लेकर जाऊंगी।

जाकर जमींदार बाबू और उनकी घरवाली को दिखाऊंगी। तब तो विश्वास करेंगे ? तू

समझता होगा, मैंने वह चिट्ठी फाड़कर फेंक दी होगी। मैंने उसे फेंका नहीं, वह मेरे पास रखी है।''

अब तो एकदम शशि ने नर्म होकर कहा—''मांती, तू तो नाराज हो गयीं ?''

मांती ने झनककर कहा—''रहने दे अपना दुलार। कांती की बहन मांती अब तेरी बातों में नहीं आ सकती।''

शशि ने कहा—''वह चिट्ठी कहां रखी है तूने ? मुझे दिखा तो भला।''

मांती ने कहा—''हूं, दिखाऊंगी क्यों नहीं ? नहीं दिखाऊंगी। देखूं तू मेरा क्या लेता है ? मैं तेरा जहर का दांत तोड़ूंगी। तूने मेरी रकम हज़्म कर ली है। मेरा सर्वस्व लूट लिया है। अब जाकर कहूंगी। जुआड़ी, चोर, ठग, बईमान।''

शशि क्रोध से फूलते हुए बोला—''नहीं देगी ?''

मांती ने मुंह घुमाकर कहा—''नहीं, नहीं दूंगी।''

शशि—''नहीं देगी ?''

मांती—''नहीं,''

शशि—''नहीं देगी ?''

मातंगिनी की जिद्द बढ़ गयी। उसने बार-बार तीनों बार 'नहीं' ही कहा। शराब और गांजे ने शशि के दिमाग़ पर पूरी तरह कब्जा कर रखा था। दिमाग़ एकदम गर्म हो हो रहा था। उसके ऊपर मातंगिनी की कठोर बातों ने आग में घी का कमा किया। नौकरी जाने और अपनी करनी का दण्ड पाने की सम्भावना से वह होश-हवाश खो बैठा। अपना धीरज खो बैठा। उसे इतना धीरज नहीं हुआ कि और किसी समय चालाकी करके मांती से चिट्ठी लेने की कोशिश करता।

बदमाश शशि ने फौरन झपट कर मांटी को गिरा दिया। वह उसकी छाती पर दोनों घुटनों को टेक कर बैठ गया और दोनों हाथों से उसका गला घोंटने लगा। मातंगिनी के आर्तनाद और गो-गो की आवाज को सुनकर कात्यायिनी दूकान से उठकर जब भीतर आयी, तब तक मातंगिनी शान्त हो चुकी थी। उसी सांस बन्द हो चुकी थी।

''छोड़, छोड़ पाजी ने खून कर डाला, खून।'' कहकर कात्यायिनी ने चीखते हुए मुहल्ले भर को सिर पर उठा लिया।

यह देखकर शशि ने मांती को तो छोड़ दिया और शराब की बोतल उठाकर कात्यायिनी ने सिर पर दे मारी जिससे वह भी घायल हो गयी।

कात्यायिनी ने बाहर आकर चीख-चीख कर गालियां देते हुए लोगों को इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया। मौका देखकर शशि खिसका जा रहा था। लेकिन एक तो

हाट का दिन था दूसरे मजिस्ट्रेट साहब आने वाले थे, उनके स्वागत के लिए हाट-वाट,

दूकान-पाट सबको सजाया जा रहा था। जिसके कारण अनेक बेकार घूमने वाले लोग सांझ हो जाने पर भी वहां मौजूद थे और हाकिमों के दर्शनों की राह देख रहे थे। इसलिए शशि की भाग निकलने की इच्छा मन ही मन में ही रह गयी। वह भाग नहीं सका। और जमींदार का नौकर होने पर भी गिरफ्तारी से नहीं बच सका। आखिर कर्म भी तो कोई चीज है।

33

मैजिस्ट्रेट साहब जिस ट्रेन से कालीग्राम आने वाले थे, वे उस गाड़ी से नहीं आए। योगेन्द्र मित्र ने स्टेशन पर जाकर देखा। उनके स्थान पर एक टेलीग्राम आया था। उस तार में जो कुछ लिखा था, उसका सार यह था कि अचानक अस्वस्थ हो जाने के कारण साहब गांव देखने नहीं जा सके। इसका उन्हें खेद है। लेकिन आशा करते हैं कि दो-चार दिन में ही वह अच्छे हो जाएंगे और कालीग्राम में पधार सकेंगे।

सारी तैयारी बेकार हो जाने से और दोबारा दूना खर्च होने की संभावना से योगेन्द्र मित्र मन-ही-मन बहुत खीझे। उन्होंने मैजिस्ट्रेट साहब के लिए जो हाथी भेजा था, उसे लौट ले जाने कर आज्ञा दी और स्वयं टमटम हांक कर गांव की ओर चल पड़े।

कुछ दूर जाते ही चांदनी के उजाले में अचानक हरनाथ मैत्र को देखकर उन्होंने टमटम रोक दी।

योगेन्द्र मित्र ने कहा—"प्रणाम मैत्र महाशय, इस समय इतनी रात मे कहां गए थे ?"

हरनाथ ने कहा, "रेलवे लाइन के उस पर डोमाई चंडी तला गांव में एक काम था। एक यजमान के यहां से अंग प्रायश्चित्त कराने का बुलावा आया था। वह बहुत दिनों से बीमार था। जाकर सुना, वह पहले ही मर गया। इसीलिए लौटा आ रहा हूं।"

योगेन्द्र ने कहा—"अच्छा आइए, मेरी गाड़ी पर बैठ जाइए।"

मैत्र महाशय कुछ संकोच के साथ टमटम पर आ बैठे।

टमटम कुछ दूर पक्की सड़क पर चलकर गांव की कच्ची सड़क पर चलने लगी। उस समय भी बाजार से लौटती हुई दो-एक बैलगाड़ियां वायु विकार ग्रस्त रोगी के समान आर्तनाद करती, कराहती हुई, ढेर सारी धूल उड़ाती, खांचों में गिरती-पड़ती, दूसरे गांव की ओर चली जा रही थीं।

योगेन्द्र मित्र स्वयं गाड़ी हांक रहे थे। अचानक सिगरेट पीने की तीव्र इच्छा हो

गयी। अब वह घोड़ों की रास, चाबुक, सिगार, माचिस, क्या-क्या पकड़ते। हाथ-तो दो ही ठहरे। उन्होंने विवश होकर टमटम रोक दी। उस के बाद बड़ी कठिनाई से मैदान पर खुली हवा के झोंकों से दियासलाई का बुझना बचाकर, उन्होंने सिगार सुलगाया।

उसी समय "रोको, रोको" की आवाज सुनकर वह चौंक पड़े। देखा, सामने से डॉक्टर साहब की पालकी आ रही थी।

डॉक्टर बाबू पाली से उतर कर टमटम के पास आ गए। रास और चाबुक दोनों को एक साथ नाक के बराबर ऊंचा करके योगेन्द्र मित्र ने कहा..."गुडबॉय, डॉक्टर बाबू।"

डॉक्टर बाबू कालीग्राम में अभी नए-नए ही आए थे। जाति के ब्राह्मण थे। इसलिए आयु में योगेन्द्र मित्र से बहुत छोटे होने पर भी उन्होंने गुडबॉय भी नहीं कहा। वह बोले, "जरा डोमाई चंडी तला जा रहा हूं। एक रोगी को देखना है।"

योगेन्द्र ने कहा—"वहां जाने का कष्ट क्यों उठाइएगा ? वह रोगी तो समाप्त हो गया। यह मैत्र महाशय वहीं से आ रहे हैं।"

हरनाथ ने कहा—"डोमाई चंडी तला के चौधरी परिवार में ही तो आप जा रहे हैं ? उस रोगी का स्वर्गवास हो गया।"

घर की ओर लौटें या चौधरी बाबू की ड्योढ़ी तक जाकर सहानुभूति प्रकट कर आएं, इसी सोच-विचार में मिनट भर यह या वह की अवस्था में खड़े-खड़े डॉक्टर बाबू टमटम के घोड़े की पूंछ देखते रहे। अचानक उनके दिमाग के भीतर तीसरा मार्ग खुल गया। बोले—"ठीक है, मैं तो आपको बताना ही भूल गया था कि आपके जमींदारी सरिश्ते के नौकर शशि मुकर्जी पर बड़ा संकट आ पड़ा है। वह पुलिस के चंगुल में फंस गया है।"

योगेन्द्र बाबू ने विस्मित होकर पूछा—"कैसे ? वह तो बीमारी का नाम लेकर छुट्टी ले गया था। मेरा नौकर पुलिस के चंगुल में कैसे जा सकता है ?"

तब डॉक्टर साहब ने अपनी फीस के हर्जे का शोक भूलकर बड़ी समझदारी के साथ आदि से अन्त तक पूरी घटना सुना दी।

उन्होंने जो कुछ बताया, उसका सारांश यह है—

घर से चौधरी बाबू के यहां रोगी को देखने जाने के लिए डॉक्टर साहब जब घर से निकलकर बाजार के पास पहुंचे थे कि उसी समय हरनाथ मैत्र का लड़का अरुण दौड़ता-हांफता उनके सामने पहुंच गया और एक सीरियस केस बताकर उन्हें बाजार के भीतर ले गया। उन्होंने भी सीरियस केस सुनकर यह नहीं पूछा कि उनकी फीस के रुपए कौन देगा ? डॉक्टर का ऐसे समय में जो कर्त्तव्य होता है उन्होंने वही किया।

वह वहां जिसे देखने गए थे, वह एक स्त्री थी। पहले तो वह मुर्दा ही जान पड़ती थी। लेकिन बाद में पता चला कि वह मरी नहीं है। बहुत कोशिश करने पर उसे होश आया। एक स्त्री, जो शायद उसी स्त्री की बहिन थी, वहां मौजूद थी, उसने बताया कि शशि मुकर्जी ने शराब के नशे में बोतल मारकर उसका सिर फाड़ डाला है। खैर, उसके सिर की चोट वैसी भारी नहीं है। पहली स्त्री का गला घोंट कर शशि उसे मार डाल रहा था। यह देख कर दूसरी स्त्री उसे बचाने गयी थी। उसका यही अपराध था।

डॉक्टर साहब ने दारोगा साहब को खबर दी थी। उन्होंने आकर दोनों औरतों का बयान लिख लिया है। डॉक्टर बाबू इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। क्योंकि घटना के समय वह इस गांव में आए ही नहीं थे। बयान में जो सुना है वही कह रहे हैं। इसलिए मैत्र महाशय कुछ खयाल न करें। बयान से यह प्रकट हुआ है कि शशि मुकर्जी के पहली स्त्री के साथ अनुचित सम्बन्ध था और यह बात धीरे-धीरे फैल जाने पर मैत्र महाशय ने शशि को समाज से अलग करने की चेष्टा की थी। शशि इसीलिए इनसे नाराज था। इसीलिए जब महाशय की बेटी कमला कलकत्ता में खो गयी तब उसने बदला लेने के लिए झूठे कलंक की कहानी गढ़ ली। आज इसी बात को लेकर उस स्त्री के साथ शशि का झगड़ा हो गया। उस स्त्री ने कहा कि वह शशि के इस दुष्कर्म का भंडाफोड़ कर देगी। इसीलिए नशे की झोंक में क्रोध के मारे शशि ने उसका गला घोंट दिया। वह स्त्री कहती है कि चूड़ामणि योग के समय वह अपनी मौसी के साथ कलकत्ता गयी थी। तभी शशि ने उसे एक चिट्ठी लिखी थी, जिसमें उसने लिखा था कि मैंने हरनाथ मैत्र से बदला लेने के लिए यह अनोखा उपाय ढूंढ़ निकाला है। उसने इस बात को उस पत्र में खूब विस्तार के साथ लिखा था। क्योंकि उसे उस स्त्री की ओर से कोई रुकावट नहीं थी। वह स्त्री उस चिट्ठी को फाड़कर फेंक सकती थी, लेकिन ईश्वर की इच्छा कुछ और होगी। इसलिए उसे अपनी मौसी से जो बक्स मिला, उसमें नीचे जो कागज न मिलने पर उस स्त्री ने वह चिट्ठी ही उसके नीचे बिछा दी और उसके ऊपर गहने रख दिए। वह चिट्ठी बरामद हो गयी है।

डॉक्टर बाबू की विस्तृत रिपोर्ट समाप्त होने पर संचित भौंहों को और भी सिकोड़ कर क्रोध से होठ चबाते हुए जमीदार योगेन्द्र मित्र कह उठे—"हरामजादे की इतनी मजाल ? बाघ की खोह में गीदड़ का डेरा। साले को जेल में न सड़वा दूं, पाजी का घर खुदवा खुदवा कर उस गधों से हल न चलवा दिया, तो मेरा नाम योगेन्द्र नहीं। ओह इतना बड़ा शैतान है।"

हरनाथ मैत्र का चेहरा भी सुर्ख पड़ गया था। आंखें भर आई थीं। माथे की नसें फूल गयी थीं। दुःख और सुख की खींचतान ने उनकी विचित्र दशा बना दी थी। उन्होंने टूटी-फूटी आवाज में केवल इतना ही कहा, "पिशाच।"

इसके अतिरिक्त और कोई शब्द उनके मुंह से नहीं निकला।

योगेन्द्र मित्र ने डॉक्टर से पीछे आने के लिए कहकर टमटम हांक दी।

34

कमला और सतीश जिस समय धीरे-धीरे गांव की ओर बढ़े चले जा रहे थे, उस समय गाड़ी के बैलों की धीमी चाल उन्हें बिलकुल बुरी नहीं लग रही थी। वह गाड़ी बैलगाड़ी न होकर अगर कार हो तो कमला को आप बीती कहने का और सतीश को उसे सुनने का सुयोग कभी न मिलता। कमला तो बहुत कुछ कहना चाहती थी। उसने अपने पति को अपने जीवन का नवीन इतिहास विस्तार से और स्पष्ट रूप से सुनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

आदि से अन्त तक पूरा वृतान्त सुनने के बाद सतीश ने मन-ही-मन कहा—"क्षितीश ने जो कुछ बताया था, यह उसकी अक्षरशः प्रतिलिपि है।"

किन्तु प्रतिलिपि होते हुए क्षितीश को बताए हुए विवरण से इसमें अन्तर अवश्य था। एक ही विषय पुरुष के हाथ से लिखे जाने पर और ढंग का होता है और स्त्री के हाथ से लिखे जाने पर उसकी शक्ल-सूरत भिन्न हो जाती है। कमला के वर्णन की पंक्तियां टेढ़ी-मेढ़ी और अक्षर छोटे-बड़े थे। इस कच्चे हाथ के वर्णन में कौशल का रत्तीभर भी अंश नहीं था। इसलिए क्षितीश के वर्णन की अपेक्षा कमला के वर्णन ने सतीश के हृदय पर अधिक गहरा प्रभाव डाला।

कमला की सभी बातें सत्य हैं, इस सम्बन्ध में उसके मन में अब कोई सन्देह नहीं रहा। उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि भले ही कोई कुछ भी कहे, वह प्राण रहते सीता-वनवास की पुनरावृत्ति नहीं होने देगा।

सतीश के व्यवहार, उसकी बातचीत, उसके कंठ स्वर और उसकी भाव-भंगिमा से कमला समझ गयी कि उसने फिर से पति का विश्वास प्राप्त कर लिया है। तब उसे लगा कि वह उस गंगा स्नान के दिन-रात की थकान से जिस प्रकार सो गई थी, वह आज जागी है इस बीच में जो भी घटना घटी हैं, वे एक दुःस्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी।

35

यह तो हुई उनके मन की स्थिति, लेकिन मनुष्य के पास मन के अतिरिक्त तन भी तो है। जिसके सुख-दुःख की मनुष्य किसी दशा में अपेक्षा नहीं कर सकता। इस

एक दिन की घटना पर ही पाठक ध्यान न देकर बड़ी आसानी से अनुमान लगा सकते हैं कि कमला और सतीश के शरीर को थकान और भूख-प्यास ने कितना निढाल कर रखा होगा। गाड़ी ज्यों-ज्यों घर के निकट पहुंचने लगी, उन दोनों को भूख और नींद उतनी ही अधिक सताने लगी।

लेकिन खाना-पीना या सोना, भगवान ने उस दिन भाग्य में नहीं लिखा था। उस रात वे दोनों अपने घर तो अवश्य पहुंच गए थे, क्योंकि बैलगाड़ी में और भले ही कितने भी दोष हों, एक सबसे बड़ा गुण यह है कि वह कभी भी दूसरी गाड़ी से नहीं लड़ती और यदि कभी ऐसी दुर्घटना हो भी जाए तो उसका परिणाम उतना भयंकर नहीं निकलता।

उस रात अपने घर पहुंचकर भी कमला और सतीश को आश्रय नहीं मिला। बहुत बक-झक के बाद दुर्गा देवी ने अपना अन्तिम निर्णय कह सुनाया कि वह कमला के हाथ का कभी पानी भी नहीं पिएंगी--बनाई हुई रसोई के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। इसलिए सतीश को अपनी पत्नी का अवश्य ही परित्याग कर देना पड़ेगा। उसे घर से निकाल देना पड़ेगा। वह बहू के साथ किसी तरह भी घर में नहीं रह सकेगी। तात्पर्य यह है कि सतीश दोनों में से एक को छोड़ दे--चाहे अपनी पत्नी को या फिर अपनी मां को।

कमला के चरित्र को किसी कलंक ने स्पर्श तक नहीं किया है, दुर्गा देवी इस बात पर किसी भी तरह विश्वास नहीं कर सकीं। क्योंकि सतीश का अपनी पत्नी के प्रति पक्षपात देख-सुनकर उनके मन में इस धारणा ने गहरी जड़ें जमा ली थीं कि बहू ने उनके लड़के पर जादू कर दिया है। सतीश ने बहुत अनुनय-विनय की। क्रोध दिखाया, धमकाया भी। लेकिन जब देखा कि उसकी मां कमला की निर्दोषता पर किसी भी प्रकार विश्वास करने के लिए तैयार नहीं है, तब उसके मुंह से एकाएक यह बात निकल गई कि कमला चाहे सती या असती मैं उसका किसी तरह भी त्याग नहीं करूंगा।

यह सुनकर दुर्गा देवी कुछ देर के लिए सन्नाटे में आ गयीं। उसके बाद बहुत ही धीमे स्वर में बोलीं--"भगवान ने यदि मेरे भाग्य में यही लिखा है तो यही हो। मैं बेटे को छोड़ दूंगी लेकिन धर्म को नहीं छोड़ सकती।"

इतनी देर तक कमला चित्र लिखित-सी एक ओर खड़ी रही थी। अब तक उसने मुंह से एक शब्द भी नहीं निकाला था। जब उसके पिता ने उसे चोटी से पकड़ कर घर के बाहर निकाल दिया, तब यदि सास उसे अपने घर में स्थान न दे तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है और न इसमें दुःख की ही कोई बात है।

सतीशचन्द्र जब मां को प्रणाम करके उठा तो उसने कहा, "चलो कमला, चलें।"

कमला ने पूछा—"कहां ?"

उत्तर मिला—"देश छोड़ कर चाहे जहां चले चलेंगे। वहां सुख से रहेंगे।"

कमला ने कहा—"देश छोड़ कर, समाज छोड़ कर, मां को छोड़ कर चलने से पहले अपने मन को ठोक-बजाकर देख लो कि जो काम करने जा रहे हो, उसे अन्त तक निभा सकोगे या नहीं ?"

सतीश ने कहा—"मैं अपने मन को स्थिर कर चुका हूं। तुम्हें साथ लेकर इसी समय इस गांव से चल दूंगा। अन्त में जो भी होना होगा सो होगा। उसके लिए अभी से चिन्ता करने की मुझे इस समय फुर्सत नहीं है।"

इसके बाद सतीश अपने पूर्वजों के घर से निकल कर, कमला का हाथ पकड़ कर उसी अन्धकार में निरुद्देश्य भाव से चल दिया।

36

अज्ञात पथ का पथिक बनना पुरुष के लिए स्वाभाविक हो सकता है, लेकिन स्त्री के लिए कभी नहीं हो सकता है। स्त्री यदि एक घर से निकलती है तो दूसरे घर में प्रवेश करने के लिए ही। इसीलिए कमला ने सतीश की इस उद्देश्यहीन यात्रा की एक मंजिल की ओर निर्देश कर दिया। निश्चित हुआ कि दोनों कलकत्ता होकर लखनऊ लौट जाएंगे, जहां सतीश नौकरी कर रहा था। दो दिन बाद लखनऊ पहुंचने में कोई हानि नहीं है। क्योंकि सतीश की छुट्टियां अभी समाप्त नहीं हुई थीं। इसके अतिरिक्त कमला के माता-पिता को यह सूचना दिए बिना कि वह जीवित है और अपने पति के आश्रय में है, देश छोड़कर चले जाना सतीश को उचित नहीं दिखायी दिया।

रास्ते में पति-पत्नी ने यह समाचार कमला के मायके पहुंचा देंगे। हरेन्द्र से भेंट करके उसी के द्वारा यह समाचार कमला के माय्के पहुंचा देंगे। हरेन्द्र को खोज निकालने में सतीश को बिल्कुल कष्ट नहीं होगा। कमला हरेन्द्र के डेरे का पता जानती है।

सतीश और कमला रात की ट्रेन से बेलतली स्टेशन से सवार होकर यथा समय कलकत्ता पहुंच गए। इसके बाद किराए की घोड़ागाड़ी में बैठ कर सीधे बहू बाजार में हरेन्द्र के डेरे पर पहुंच गए।

सतीश गाड़ी से उतर कर हरेन्द्र से मिलने गया लेकिन पांच मिनट में ही लौट आया। उसने लौटकर कमला को बताया कि हरेन्द्र अब इस डेरे में नहीं रहता। कुछ दिन पहले हरेन्द्र के पिता आए थे और हरेन्द्र का सारा सामान उठा कर ले गए।

कमला ने पूछा—"क्या मेस का कोई भी आदमी यह नहीं जानता कि अब हरेन्द्र दादा कहां रहते हैं ?"

सतीश फिर अन्दर चला गया और हरेन्द्र का वर्तमान पता पूछ आया। कमला ने उस रास्ते का नाम और घर का नम्बर सुनकर कहा—"यह तो क्षितीश बाबू का ही घर है।"

सतीश ने सुझाव दिया—"चलो, वहीं चला जाए।"

कमला ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। सच तो यह है कि कमला ने कलकत्ता होकर लखनऊ जाने का प्रस्ताव इसी आशा से किया था कि सम्भव है वहां चलने पर एक बार क्षितीश बाबू से और भेंट हो जाए।

37

क्षितीश के डेरे पर पहुंचते ही सतीश की सबसे पहले जिससे भेंट हुई वह था कमला का भाई अरुण—सतीश के मुंह से यह सुनते ही कि कमला गाड़ी में बैठी है, अरुण प्रसन्नता से पागल हो उठा। वह दौड़ता हुआ वहीं अपनी बहिन के पास पहुंच गया अनेक ऐसी बातें असम्भव और असंलग्न ढंग से ही सांस में कह गया, जिन्हें पागल का प्रलाप कहनार अनुचित नहीं होगा।

उसकी उन तमाम बातों के भीतर से सतीश और कमला ने यह निष्कर्ष निकाला कि सारा बखेड़ा समाप्त हो चुका है। शशि के सारे षडयन्त्र का भंडाफोड़ को चुका है। गांव भर में कमला का कहीं पता न पाकर हरनाथ मैत्र, योगेन्द्र मित्र, हरेन्द्र और अरुण पिछली रात को यहां पहुंचे हैं। हरनाथ कमला ने उन्हीं की भूल से इतना कष्ट पाया और घर से निकल जाने पर विवश हुई, यह मालूम होते ही हरनाथ और योगेन्द्र बाबू दोनों ही बहुत दुःखी हुए और पश्चात्ताप करने लगे। अन्त में इस समय अपना कुछ भी कर्तव्य निश्चित न कर पाने पर उन्होंने हरेन्द्र तथा अरुण की सलाह के अनुसार चलना स्वीकार कर लिया। वे ही दोनों बूढ़ों को लेकर यहां आए।

इन लोगों ने निश्चय कर लिया कि यदि कमला ने आत्महत्या नहीं की होगी तो वह अवश्य ही क्षितीश के घर जाएगी। क्योंकि क्षितीश के घर के अतिरिक्त और उसे कहीं भी आश्रय पाने की कोई सम्भावना नहीं है। मनुष्य जब जल में गिर कर डूबने लगता है, मृत्यु का भय उसे घेर लेता है, तो वह हाथ के पास जो भी पाता है, उसी को पंकड़ लेने की चेष्टा करता है।

इसके बाद अरुण—दीदी आ गई—दीदी आ गई—कहकर चिल्लाता हुआ कमला

का हाथ पकड़ कर उसे खींचता हुआ क्षितीश के उसी कमरे में पहुंच गया, जहां अन्य अब लोग गाल पर हाथ रखे सोच में डूबे बैठे हुए थे।

हास्य और सहन के साथ कमला के साथ गुरुजनों का मिलन हो गया। भाग्य की विडम्बना से एक बिखरता हुआ परिवार, भगवान की कृपा से फिर जैसा था वैसा ही हो गया। जिसका जहां स्थान था वह वहीं जा बैठा। बाहर रह गया केवल क्षितीश। वह उस मिलन--महोत्सव के स्थान से खिसक गया। सब लोग प्रसन्नता में डूबे हुए थे, इसलिए बहुत देर तक क्षितीश की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

अन्त में योगेन्द्र मित्र ने हरेन्द्र को भेज कर क्षितीश को बुलवा लिया।

क्षितीश ने आने पर उसे सम्बोधित करते हुए योगेन्द्र मित्र ने शिष्टाचार की रक्षा करते हुए कहा--"देखिए क्षितीश बाबू, इस दुर्घटना के लिए हम "ओल्ड फूल" ही पूरी तरह से उत्तरदायी हैं।"

क्षितीश ने हंसकर उत्तर दिया--"मेरी समझ से तो आप लोगों की अपेक्षा हम "यंग फूल" ही अधिक दोषी हैं। यदि मैं कमला को अपने घर न लाकर अस्पताल पहुंच देता तो इतना बवंडर नहीं उठता। यह छोटी-मोटी ट्रेजडी कभी नहीं होती।"

इस बात में इतनी सच्चाई थी कि कोई भद्रता के नाते भी इसकाप्रतिवाद न कर सका।

क्षितीश को अप्रतिभ होकर चुप हो जाते देख कर हरेन्द्र ने कहा--"जो कुछ भी हुआ उसके लिए न तो तुम दोष हो, न मैं। उसका समस्त उत्तरदायित्व और दोष हमारे इस अभागे समाज का है।"

सतीश ने कहा--"दोष समाज का नहीं, हमारे स्वभाव का है। हम नारी जाति पर विश्वास ही नहीं करते।"

सतीश के कथन को सुनकर बूढ़ों ने क्या सोचा, सो उन्होंने कुछ प्रकट नहीं किया। बल्कि.इस आलोचना को समाप्त कर देने के लिए योगेन्द्र मित्र से सतीश से पूछा--"भैया, अब क्या करोगे ? कहां जाने का निश्चय किया है ?"

सतीश ने उत्तर दिया--"आज रात की गाड़ी से लखनऊ चला जाऊंगा।"

योगेन्द्र--"अपनी मां को यह सुख का समाचार देने नहीं जाओगे ?"

सतीश--"आप लोग उन्हें सूचना दे दीजिएगा। मेरे कहने पर वह विश्वास नहीं करेंगी।"

योगेन्द्र--"क्या कमला भी अपनी मां से एक बार भेंट करने नहीं जाएगी ?"

कमला ने कहा--"अभी नहीं जाऊंगी। इस समय गांव में जा पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। तन और मन इतनी बुरी तरह थक गए हैं कि मुझे अब कुछ दिन

विश्राम करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। और यह विश्राम मुझे देश में नहीं परदेश में ही मिल सकेगा।"

यह सुनकर कमला के गुरुजनों को कुछ खटका मालूम हुआ। उन्होंने सोचा, हमारे अन्याय के कारण कमला कुछ कुंठित हो गई है। लेकिन उन्होंने कमला की इच्छा के विरुद्ध जोर देकर उससे कुछ कराने का अधिकार अपने हाथ से खो दिया है—वे पहले ही यह बात समझ चुके थे। इसलिए कमला की इस बात पर प्रतिवाद न करके चुप हो गए।

एक पल बाद हरनाथ ने कहा, "अच्छी बात है, तो फिर दो दिन और यहीं रह जाओ कमला। मैं तुम्हारी मां को यहीं ले आता हूं। उससे मिलकर विदा होकर तुम लखनऊ चली जाना।"

कमला ने हंसकर पिता से कहा—"क्षितीश बाबू ने यहां बहुत दिन रह चुकी हूं। अब और एक दिन भी मेरा यहां रहना उचित नहीं है। सुना है—देवालय या धर्मशाला में भी अतिथि को दो रात से अधिक आश्रय नहीं मिलता।"

जब सब लोगों ने समझ लिया कि कमला को रोकने की चेष्टा करना बेकार है। तब उसी रात को कमला और सतीश का जाना निश्चित रहा। अरुण ने जिद्द पकड़ ली कि वह भी बहिन के साथ लखनऊ जाएगा। इसमें किसी को विशेष आपत्ति नहीं हुई।

अन्त में यह निश्चित हुआ कि कमला और अरुण को ट्रेन में सवार करने के बाद हरनाथ, योगेन्द्र और हरेन्द्र भी रात की ट्रेन से ही अपने घर जाएंगे।

उस दिन क्षितीश ने अपने मेहमानों के लिए दोहपर के भोजन की जो व्यवस्था की, वह असारधारण थी। यदि उसे विवाह—शादी भोज कहा जाए तब भी अत्युक्ति नहीं होगी।

भोजन के उपरान्त कमला, हरनाथ मैत्र और योगेन्द्र मित्र तीनों सोने चले गए। क्षितीश और सतीश शतरंज खेलने बैठ गए। हरेन्द्र और अरुण खेल देखने लगे। बहुत अच्छा खिलाड़ी होते हुए भी क्षितीश बाजी हारता चला गया। अन्त में बिसाट उलट कर वह खड़ा हो गया, और बोला—"मरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। इसलिए खेलने में मन ही नहीं रहा।"

बिल्कुल शाम हो आई थी। सतीश ने क्षितीश को बांसुरी बजाने का अनुरोध किया। लेकिन क्षितीश उसके अनुरोध की रक्षा करने के लिए किसी प्रकार भी राजी नहीं हुआ। क्योंकि वह जानता था कि इस समय उसकी बांसुरी एकदम बेसुरी बजेगी। उसके प्रत्येक छिद्र से उसके आंसू ही बहेंगे।

रात के नौ बजे सब लोग मिलकर हावड़ा स्टेशन चले गए। सतीश कमला और

अरुण को लखनऊ जाने वाली गाड़ी में सवार करा दिया। उसके आधे घंटे बाद दूसरी गाड़ी योगेन्द्र, हरेन्द्र और हरनाथ भी अपने गांव की चल दिए। प्लेटफार्म पर क्षितीश ही अकेला खड़ा रह गया। क्योंकि सूने घर में लौटने की उसी इच्छा ही नहीं हो रही थी।

सहसा क्षितीश को ऐसा लगा जैसे इस विराट पृथ्वी पर वह अकेला ही है। इस विचार के आते ही उसे एक प्रकार का भय मालूम पड़ने लगा। शेष रात किसी प्रकार बिताकर, दूसरे दिन सवेरे ही ह अपनी कार में बैठकर कलकत्ता शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर लगाने लगा। जैसे वह अपने आप से भागने का निरन्तर प्रयास कर रहा हो।

धीरे-धीरे उसे ऐसा लगने लगा कि कोई काम यदि उसके हाथ में नही लिया, तो वह पागल हो जाएगा। इस तरह से रहने पर उसके मन की अशान्ति निरन्तर बढ़ती चली गयी। लेकिन कौन-सा काम हाथ में ले, बहुत सोचने पर भी उसकी समझ में नहीं आया।

सहसा तभी एक स्थान पर उसके कानों में ये शब्द टकराए–

"महात्मा गांधी की जय;

भारत माता की जय;

जननी-जन्म भूमि की जय।"

उसने घूमकर देखा–स्कूल और कॉलेजों के लड़के दल बांध कर तिरंगा राष्ट्रीय झंडा हाथ में लिए यह जय-घोष करते हुए कतार बांधे चले जा रहें हैं। इस जय ध्वनि को सुनते ही उसके समूचे शरीर में जैसे बिजली दौड़ गई। वह कार में बैठा-बैठा ही उछल पड़ा।

उसने अपने आप से कहा–"थैंक गॉड (धन्यावाद भगवान) मुझे अपने योग्य काम मिल गया। इस माता को मेरी आवश्यकता हैं।"

कहने की आवश्यकता नहीं, उसने ऐसा ही किया। उसे इसमें परम शन्ति का अनुभव हुआ। आज वह देश का एक विख्यात नेता और एक वीर सैनिक है.।

●●●

घर बैठे ही अपनी मनपसंद पुस्तकें मंगवाएं

पुस्तक	मूल्य
❖ कर्ज से छुटकारा कैसे प्राप्त करें	50.00
❖ उपाय ही उपाय (यंत्र मंत्र तंत्र एवं टोटकों द्वारा)	50.00
❖ अंक ज्योतिष और आपका व्यवसाय (डा० मान)	100.00
❖ चमत्कारी अंक ज्योतिष (डा० मान)	75.00
❖ अंक ज्योतिष (कीरो)	50.00
❖ रत्नों के चमत्कार (पराशर) नया संशोधित	50.00
❖ रत्न पहनिए भाग्य बदलिए	50.00
❖ स्वप्न फल ज्योतिष	50.00
❖ प्रश्नफल ज्योतिष (नया टाइटल)	50.00
❖ शकुन विचार फल (राम चन्द्र चौधरी)	50.00
❖ ज्योतिष द्वारा सुख-शान्ति की प्राप्ति	50.00
❖ लक्ष्मी प्राप्ति के प्रयोग एवं साधना	50.00
❖ चारों वेदों की 108-108 प्रमुख सूक्तियां	50.00
❖ संपूर्ण हिप्नोटिज्म (नया टाइटल)	50.00
❖ क्यों (बड़े साईज में)	50.00
❖ मोटापा घटाए चुस्ती बढ़ाए	50.00
❖ कद लम्बा कैसे करें	50.00
❖ जूडो कराटे एवं मार्शल आर्टस	50.00
❖ बॉडी बिल्डर कैसे बनें	50.00
❖ लेडीज़ हैल्थ एण्ड ब्यूटी गाईड	50.00
❖ अचार, चटनी, मुरब्बा बनाईए	50.00
❖ धन कमाने के 400 तरीके	60.00
❖ चाणक्य नीति (मराठी में)	50.00
❖ चाणक्य नीति (हिन्दी में) 192 पेज	50.00
❖ चाणक्य नीति (भाषा टीका सहित)	50.00
❖ विदुर नीति (नया टाइटल)	50.00
❖ मनु स्मृति (नया टाइटल)	50.00
❖ योगासन व्यायाम एवं सौंदर्य	50.00
❖ योगासन व्यायाम एवं प्राणायाम	60.00
❖ योग भगाये रोग	60.00

प्रकाशक : 0181-2212696, 3251696

महामाया पब्लिकेशन्स

नज़दीक चौक अड्डा टांडा, जालन्धर शहर-8

घर बैठे ही अपनी मनपसंद पुस्तकें मंगवाएं

पुस्तक		मूल्य
❖ दादी मां के अनमोल खजाना		100.00
❖ ब्यूटी पार्लर कोर्स (रंगीन फोटो सहित)		85.00
❖ ब्यूटी गाईड (23×36/16) (रंगीन चित्रों सहित)		50.00
❖ कुकरी बुक (रसोई शिक्षा) (रंगीन चित्रों सहित)		110.00
❖ रसोई शिक्षा (चित्रों सहित)	50.00	(सजिल्द) 150.00
❖ सिलाई कटाई शिक्षा (छोटी)	50.00	(बड़ी) 110.00
❖ हारमोनियम कैसियो गाईड (छोटी)	50.00	(बड़ी) 100.00
❖ गर्भावस्था से शिशुपालन तक		80.00
❖ कब होगा आपका भाग्योदय (डा० मान) नई		110.00
❖ कर्ज से छुटकारा के उपाय एवं टोटके		50.00
❖ लेटेस्ट जनरल नालेज-2008 (नया टाईटल)		50.00
❖ परफैक्ट एन.ई.आर. गाईड (N.E.R.)		50.00
❖ क्लर्कस गाइड		60.00
❖ राष्ट्रीय गीत (देश भक्ति गीत)		50.00
❖ अष्टावक्र महागीता		100.00
ज्योतिष एवं अन्य मेल		
❖ कालसर्प योग उपाय एवं टोटके		50.00
❖ मंगली योग एवं दोष निवारण के उपाय एवं टोटके		60.00
❖ शनि के साढ़े सातीं के उपाय एवं टोटके		60.00
❖ राहु-केतु से बचाव के अचूक उपाय		60.00
❖ मंगल-शुक्र अनिष्ट से बचाव के उपाय		60.00
❖ बृहस्पति-सूर्य पीड़ा से मुक्ति		60.00
❖ सम्पूर्ण फलित ज्योतिष एवं उपाय		50.00
❖ अष्टवर्ग से भविष्य जानिए		50.00
❖ ज्योतिष एवं हस्त रेखा से किस्मत बनाए		50.00
❖ खराब ग्रहों के अचूक उपाय एवं टोटके		60.00
❖ आइए ज्योतिष सीखें		50.00
❖ आपके हस्ताक्षर, अंक, रंग सब बोलते हैं (त्रिलोक चन्द्र)		50.00
❖ आपकी हस्त-मस्तक व पाद रेखाएँ बोलती है (त्रिलोक चन्द्र)		100.00

प्रकाशक :
0181-2212696, 3251696
महामाया पब्लिकेशन्स
नज़दीक चौक अड्डा टांडा, जालन्धर शहर-8
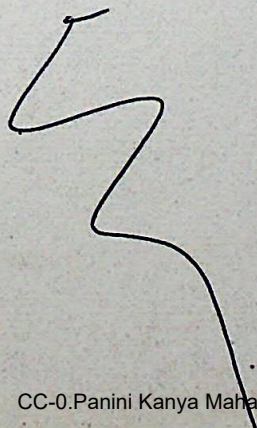
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय
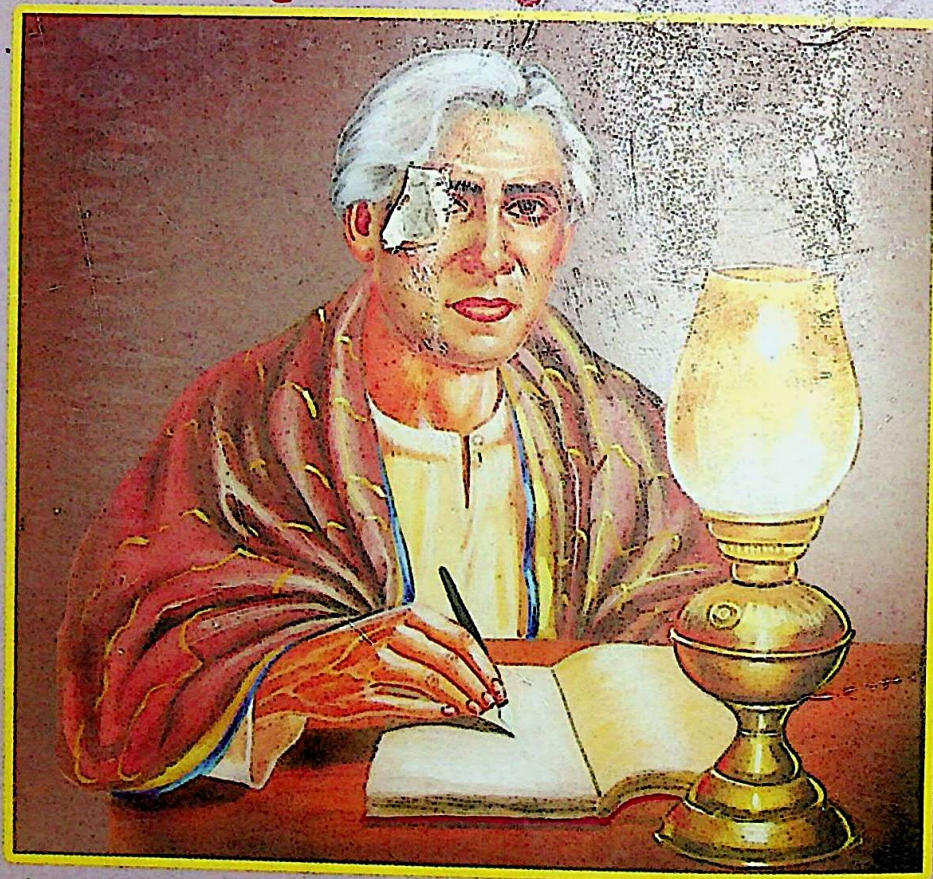
महान कथा शिल्पी शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने इस उपन्यास में समकालीन नारी समाज का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। यह उपन्यास समाज द्वारा नारी के तिरस्कार की एक मार्मिक गाथा है।

महामाया पब्लिकेशन्स
जालन्धर